UGC-CARE List-Social Sciences

ISSN 0974-0074

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

National Peer Reviewed Journal of Social Sciences

वर्ष 23 अंक 1

जनवरी-जून, 2021

समाज विज्ञान विकास संस्थान

बरेली (उ.प्र.)

इस अंक में

1. आलोचनात्मक अपराधशास्त्र : एक आलोचनात्मक मूल्यनिर्धारण 1-7

प्रोफेसर श्यामधर सिंह

2. भारत में बागवानी फसलों की वृद्धि दर की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 8-17

डॉ. सुनील कुमार चौधरी

3. धर्मशाला में बौद्ध अर्थव्यवस्था के माडल की खोज : एक मानव विज्ञान परिप्रेक्ष्य 18-27

राज कुमार सिंह

डॉ. मीताश्री श्रीवास्तव

4. सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों एवं सरकारी सहायता प्राप्त कॉलेजों के बी.एड. विद्यार्थियों की व्यवसायिक अभिवृत्ति का अध्ययन। 28-34

डॉ. सुहासिनी श्रीवास्तव

5. भारतीय राष्ट्रवाद और आनंद कुमारस्वामी : एक अनुशीलन 35-44

डॉ. विपुल तिवारी

6. लोकतंत्र में जनमत निर्माण पर सोशल मीडिया का प्रभाव : एक अध्ययन 45-50

डॉ रचना गंगवार

7. आधुनिक तकनीक के दौर में मीडिया संस्थानों की भूमिका : एक अध्ययन 51-56

प्रोफेसर त्रिशु शर्मा

डॉ. विशाल शर्मा

8. ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य में शिव : एक अनुशीलन 57-65

डॉ. मोहन लाल चढ़ार

9. गांधी और प्लेटो : राजनीतिक दर्शन में समानताएं और असमानताएं 66-73

डॉ. आभा चौहान खिमता

10. वैश्विक शांति की स्थापना में बौद्ध दर्शन का महत्त्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 74-82

कोमल तूनवाल

11. विस्थापन का ग्रामीण कृषकों पर प्रभाव 83-88

चांदनी मरकाम

12. शिक्षा मंत्रालय के ऑनलाइन शिक्षण प्रयास में मीडिया शिक्षा की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 89-96

राकेश यादव

13. पारिवारिक एकता के सामाजिक मूलाधार : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 97-106

डॉ. मनीष कुमार मनसुख भाई जनसारी

14.	**दलित छात्रों में शिक्षा एवं सामाजिक गतिशीलता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन**	**107–116**
	डॉ. प्रतिभा राज	
	राहुल पाण्डेय	
15.	**लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित गतिविधियों का जीवन कौशल शिक्षा के सन्दर्भ में अध्ययन**	**117–122**
	डॉ. स्वाति मेलकानी	
16.	**1767 से 1857 तक छोटा नागपूर क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासनिक प्रसार**	**123–130**
	डॉ. योगेश कुमार	
17.	**छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक सरिता खारुन : ग्राम खोरपा से नव अन्वेषित प्रतिमाओं के विशेष संदर्भ में**	**131–136**
	डॉ. नितेश कुमार मिश्र	
	ढालसिंह देवांगन	
18.	**विवाहित कार्यशील महिलाएं एवम् उनकी खाली समय की गतिविधियाँ**	**137–143**
	प्रियंका सरोज	
19.	**महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन**	**144–149**
	रिंकी आर्या	
20.	**रोजगार के क्षेत्र में दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल केंद्रों की भूमिका का विश्लेषण**	**150–155**
	सुश्री तनुजा	
21.	**प्रथम विश्व युद्ध और हरियाणा**	**156–161**
	सुश्री स्वीटी	
22.	**पाँचाल जनपद से प्राप्त एवं संग्रहालय में संरक्षित मुद्रांक : एक अध्ययन**	**162–166**
	सरोज कुमारी	
	डॉ. सुरभि श्रीवास्तव	
23.	**मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम, 2010 : एक अनुभवात्मक विश्लेषणात्मक अध्ययन**	**167–172**
	डॉ. शीतल	
24.	**जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव पश्चिमी राजस्थान के विशेष संदर्भ में**	**173–179**
	डॉ. गौरव कुमार जैन	
	शारदा चौधरी	
25.	**राजा राममोहनराय एवं ब्रह्मसमाज की स्थापना की पृष्ठभूमि**	**180–184**
	सुश्री मंजू	

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

आलोचनात्मक अपराधशास्त्र : एक आलोचनात्मक मूल्यनिर्धारण

❑ डॉ. श्यामधर सिंह

प्रस्तुत शोध-प्रपत्र आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के आलोचनात्मक मूल्य निर्धारण तक ही परिसीमित है। किसी विशिष्ट विषय के विस्तारित परिज्ञान से उसकी अन्तर्वस्तु को विधिवत् समझने-समझाने में पर्याप्त सहायता मिलती है। किसी विषय में नवीन प्रवृत्तियों का व्यक्ताव्यक्त रूप से प्रतिफलन अनिवार्य है। इससे विषय की विषय-वस्तु की रूपरेखा तैयार करने एवं उसके निर्धारण में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। कथ्य है कि आलोचनात्मक अपराधशास्त्र, अपराधास्त्र का कोई नूतन सम्प्रदाय व सिद्धान्त नहीं है। यह एक आमूल परिवर्तनवादी आन्दोलन व परिप्रेक्ष्य है जो परम्परावादी अपराधशास्त्र की कटु आलोचना करता है। वस्तुतः परम्परागत या अकादमिक अपराधशास्त्र के विरोध में एक नवीन अपराधशास्त्र (न्यू क्रिमिनोलॉजी) तथा उग्रवादी अपराधशास्त्र (रेडिकल क्रिमिनोलॉजी) का श्रीगणेश अमेरिका में सन् 1970 ई. में हुआ। आपराधिक व्यवहार की कारणता की नये सिरे से व्याख्या करने का यह नवीन परिप्रेक्ष्य किन्हीं नूतन उपलब्ध तथ्यों पर आधारित न होकर केवल नवीन तर्कों पर आधारित है। वस्तुतः यह परिप्रेक्ष्य रेडिकल परिप्रेक्ष्य तथा मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य की भित्ति पर आधारित है। अमेरिका में आलोचनात्मक अपराधशास्त्र का उद्गम आधुनिक काल में समाजशास्त्रीय एवं अपराधशास्त्रीय क्षितिज में होने वाली बुद्धिजीवी हलचल का ही एक परिणाम है और इन दोनों के बौद्धिक स्रोत अमेरिकीय समाज में घटित सामाजिक-ऐतिहासिक परिवर्तन हैं। इन परिवर्तनों के उत्तरदायी कारणों में तीन कारण प्रमुख माने जाते हैं - वियतानाम युद्ध, विरोधी संस्कृति का विकास एवं राजनीतिक विरोध। कुल मिलाकर आलोचनात्मक अपराधशास्त्र अपराध का अध्ययन पूँजीवाद के सामाजिक और ऐतिहासिक उत्पाद के रूप में करता है, जिसमें अपराधी भी वर्ग असमानता एवं राज्य उत्पीड़न से आहत होते हैं। अनुसंधान-पदों में, यह पुलिस उत्तरदायित्व की समस्याओं, कारागारों के दमनात्मक स्वभाव और आपराधिक न्याय-प्रणाली की वर्ग अभिनति की समस्याओं से सम्बन्धित है।

आलोचनात्मक अपराधशास्त्र, जिसे सामान्यतः 'क्रिटिकल क्रिमिनोलॉजी' कहा जाता है, के विषय में कुछ लिखने के पूर्व हम यह कहना चाहेंगे कि आलोचनात्मक अपराधशास्त्र, अपराधशास्त्र का कोई नवीन सम्प्रदाय व सिद्धान्त नहीं है। यह एक आमूल परिवर्तनवादी आन्दोलन है, परिप्रेक्ष्य है जो परम्परावादी अपराधशास्त्र का विरोध करता है। अपराधशास्त्र के इतिहास में आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के विकास का काम 1970 दशाब्दी के मध्य से ही प्रारम्भ हो गया था - बदलाव के स्पष्ट चिन्ह इस काल में दिखाई पड़ने लगे थे। यह वही काल है जब अपराधशास्त्रीय चिन्तनधारा में कतिपय नवीन चिन्ताएँ स्पष्टतः दिखाई देने लगी थीं। कतिपय उग्र विचारकों ने परम्परावादी अपराधशास्त्र के स्थान पर नवीन अपराधशास्त्र (New Criminology) तथा उग्र या अतिवादी अपराधशास्त्र (Radical Criminology) के नाम से अपराधिक एवं दाण्डिक प्रघटनाओं के बारे में नये सिरे से सोचना शुरू किया और बाद के कुछ चिन्तकों ने इसके लिए 'आलोचनात्मक अपराधशास्त्र' या 'क्रिटिकल क्रिमिनोलॉजी' पद अधिक बेहतर समझा।

स्पष्टतः आलोचनात्मक अपराधशास्त्र राजनीति करने वाले व्यक्तियों के चिन्तन का परिणाम है। यह चिन्तन मार्क्सवादी सामाजिक संघर्ष के सिद्धान्त पर आधृत है जिसका प्रधान उद्देश्य औद्योगीकरण एवं पूँजीवादी सामाजिक संरचना से उत्पन्न सामाजिक असमानता और शोषण को समाप्त करना रहा है। वे इस सन्दर्भ में पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प थे। उनके संघर्ष का सिद्धान्त यह बताता है कि पूँजीवादी व्यवस्था को कैसे मिटाया जाये और एक नई व्यवस्था को कैसे स्थापित किया जाये। मार्क्सवादी सामाजिक संघर्ष के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को आधार मानकर आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों ने अपराध को पूँजीवादी व्यवस्था से सम्बन्धित सामाजिक एवं ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का उत्पाद माना है। पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति और व्यावसायिक वर्ग (Bourgeois) शोषक वर्ग बन जाते हैं और मजदूर वर्ग (Proletariat) बन जाते हैं। ये दोनों वर्ग एक-दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। बुर्जुआजी और मजदूर वर्ग अपने वर्गीय हितों के लिए सर्प एवं नेवले की भाँति टकराने लगते हैं। फलस्वरूप अपराधिक कृत्य खुलकर घटित होने लगते हैं।

मार्क्स की भाँति 'क्रिटिकल' अपराधशास्त्री अपराध एवं अपराधियों की परम्परागत व्याख्या को अप्रयाप्त मानकर उनकी नयी व्याख्या करना

❑ प्राक्तन प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

एक ऐतिहासिक आवश्यकता मानते हैं। उनका कहना है कि मानव समाज मनुष्य के परिश्रम का परिणाम है और इतिहास को मनुष्य का प्रयास ही बदलेगा। ऐतिहासिक आवश्यकता मनुष्य के प्रयासों का तार्किक परिणाम है। 'क्रिटिकल' अपराधशास्त्री अपराध की कारणता के सभी व्यक्तिपरक (Individualistic) एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्याओं की अनुदार आलोचना करते हैं। इस सन्दर्भ में वे प्रत्यक्षवादी अपराधशास्त्र की व्यवहारवादी व्याख्या तथा अपराध की कारणता के नामकरण सिद्धान्त (Labelling Theory) की व्याख्या की संकीर्णता की भी कटु आलोचना करते हैं। उनकी दृष्टि में अब समस्या यह नहीं है कि हम उन वैषयिक रूप से निर्धारित विशेषताओं को पहचानें जो अपराधी को अनापराधी से पृथक् करते हैं, परन्तु इसका उत्तर ढूँढ़ें कि विद्यमान सामाजिक प्रक्रियाओं में कुछ व्यक्तियों को ''अपराधी'' की ''लेबल'' से क्यों कलंकित किया जाता है? आईएन टायलर (Ian Taylor)] पाल वाल्टन (Paul Walton) एवं जॉक यंग (Jock Young) ने अपनी पुस्तक दि न्यू क्रिमिनोलॉजी (1973) में उपर्युक्त प्रश्नों को बहुत ही सुन्दर ढंग से उठाया है।[1]

नामकरण : आलोचनात्मक अपराधशास्त्र दो अर्थों-परम्परावादी अपराधशास्त्र से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देता है। आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों की दृष्टि में परम्परावादी अपराधशास्त्र अपराध की कारणता के सन्दर्भ में अपसिद्धान्तों के अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका है। अपराध की कारणता के सिद्धान्त की शाश्वत खोज की चिन्ता शास्त्रीय, नवशास्त्रीय, शारीरिक संरचना, भौगोलिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजशास्त्रीय सिद्धान्तों से सम्बन्धित सामाजिक संरचना तथा अपराधीकरण की प्रक्रियाओं से सम्बद्ध सिद्धान्तों के बँधे घाटों से बह रही है। ये सभी सिद्धान्त एवं उप-सिद्धान्त एक-दूसरे से सर्वथा अलग हैं, एक की प्रवृत्ति का दूसरे की प्रवृत्ति से कोई तालमेल नहीं है। आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के आविर्भाव के साथ ही परम्परावादी अपराधशास्त्रीय चिन्तना के बँधे हुए घाट टूट गये और अपराधशास्त्रीय चिन्तना की एक नयी धारा फूट निकली। अपराधशास्त्र मनुष्य एवं उसके परिवेश के साथ पहली बार जुड़ा।

आलोचनात्मक अपराधशास्त्र से जो दूसरा अर्थ ध्वनित होता है, वह है तर्कणापरक या युक्तिमूलक दृष्टिकोण। अपराध एवं दण्ड की प्रकृति के प्रति, अपराध एवं अपराधियों के प्रति, दण्ड के प्रकारों के प्रति, न्यायिक एवं पुलिस व्यवस्था के प्रति, अपराधियों के उपचार एवं नीति के प्रति आलोचनात्मक किन्तु तर्कणापरक एक नवीन दृष्टिकोण का आर्विभाव हुआ है। आलोचनात्मक अपराधशास्त्र अपराधशास्त्रीय चिन्तनधारा में एक नवीन अध्याय की शुरूआत करता है। वस्तुतः यह एक नवीन परिप्रेक्ष्य है, एक नवीन आंदोलन व आक्रोश है जो सममकालीन अपराधशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं सिद्धान्तकारों का खुलकर विरोध करता है। समकालीन अपराधशास्त्र के प्रति इसके आक्रामक रूख के कारण आलोचनात्मक अपराधशास्त्र अपने लिए धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक मानता है। एतदर्थ तर्कसंगतता का पल्ला पकड़ना इसके लिए बहुत आवश्यक है। अतः यह कहना ही पड़ेगा कि आलोचनात्मक अपराधशास्त्र का यह बोध एक वास्तविक है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के सम्बर्द्धन एवं विकास की परिस्थितियाँ : परम्परागत अपराधशास्त्र के विरोध में एक नवीन अपराधशास्त्र (New Criminology) तथा उग्रवादी अपराधशास्त्र (Redical Criminology) का आरम्भ अमेरिका में सन् 1970 ई. में हुआ। आपराधिक व्यवहार की नये सिरे से व्याख्या करने का यह नूतन परिप्रेक्ष्य किन्हीं नवीन उपलब्ध तथ्यों पर आधारित न होकर केवल नवीन तर्कों पर आधृत है। वस्तुतः यह परिप्रेक्ष्य रेडिकल परिप्रेक्ष्य तथा मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य की भित्ति पर आधारित है। जॉन गैलीहर (John Gallihar) एवं मैक कार्टने (Mc Cartney) के अनुसार अमेरिका में आलोचनात्मक अपराधशास्त्र का उद्गम आधुनिक काल में समाजशास्त्रीय क्षितिज में होने वाली बुद्धिजीवी हलचल का ही एक भाग है और इन दोनों के बौद्धिक स्रोत अमेरिकीय समाज में घटित सामाजिक-ऐतिहासिक परिवर्तन है।[2] इन परिवर्तनों के उत्तरदायी कारणों में लेखक ने तीन कारणों को प्रमुख माना है। ये हैं- वियतनाम युद्ध, विरोधी संस्कृति का विकास एवं राजनीतिक विरोध।

वियतनाम युद्ध अमेरिका जैसे देश के लिए प्रत्येक दृष्टि से अनुपयुक्त था। इतने बड़े देश में वियतनाम जैसे छोटे देश पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए अपनी वृहदाकार सैन्य शक्ति का प्रयोग कर वहाँ के जन-सामान्य जीवन

को अस्त-व्यस्त कर दिया। वियतनाम पर अमेरिकीय सरकार द्वारा किये गये इस आक्रमण को इतिहास कभी भूल नहीं सकता। इतिहासकारों का कहना है कि वियतनाम कई सालों तक धू-धू कर जलता रहा। विश्व मूक-दर्शक के रूप में सब कुछ स्वाहा होते देखता रहा। किन्तु अमेरिकीय विजयश्री के साथ वियतनामी दर्द ने सरकार के उद्देश्यों व राजनीतिक नेताओं की घोषणाओं के प्रति लोगों में दोषदर्शिता की भावना विकसित की। इस विकसित भावना के तहत सरकार को लोग हेर-फेर और हिंसात्मक बल प्रयोगक एवं छलावा देने वाले निकाय के रूप में समझने लगे। सरकार को वे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे और नये सन्दर्भ में कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए।

पुनः अमेरिकीय समाज में परम्परागत अमेरिकीय संस्कृति के विरोध में एक नयी संस्कृति जिसे 'मारीजुआना संस्कृति' कहा जा सकता है, का विकास हुआ। 'मारीजुआना संस्कृति' में मारीजुआना आदि संवेदनमंदक वस्तुओं व नशीली वस्तुओं के प्रयोग के कारण परम्परागत मूल्यों, विश्वासों, विचारों एवं अभिवृत्तियों में एक नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। समाज जिस व्यवहार को विचलनकारी, आदर्शशून्य व आपराधिक एवं व्याधिकीय मानता है मारीजुआना संस्कृति के सदस्य उसे सामान्य एवं अव्याधिकीय मानते हैं।

पुनश्च, अमेरिकीय समाज में इधर राजनीतिक विरोध करने की एक ऐसी प्रतिवादी दृष्टि विकसित हुई है जिससे उत्तेजित वाद-विवादों (Heated Discussions) तथा गलियों में रक्तमय मुकाबलों (Bloody Confrontations) के विभत्स रूप दृष्टिगोचर होते हैं। जब राज्य इस राजनीतिक विरोध को दबाने के लिए पुलिस सत्ता का उपयोग करता है, तब लोग यह समझाने लगते हैं कि कानून को अपराधियों को दण्डित करने के लिए उपयोग करने के बजाय लोगों के सामाजिक राजनीतिक विश्वासों, विचारों एवं दृष्टिकोणों को दबाने के लिए उपयोग किया जा रहा है। लोग कहते हैं हमें ऐसी 'राजनीतिक सरकार' की आवश्यकता नहीं है, हमें अपने 'हाल' पर छोड़ दीजिए, हम 'लँडूरे' ही भले, पर राजनीतिक सत्ता हथियाने वाले लोग बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए पीछे पड़ गये हैं। सरकार का कहना है कि वह हर व्यक्ति को शासित करके रहेगी, उन्हें अपनी अधीनता स्वीकार कराकर रहेगी, क्या जबर्दस्ती है! जुल्म है!

ऐसी अवस्था में होते हुए भी अमेरिकीय परम्परागत अपराधशास्त्री सुषप्तावस्था में हैं। किन्तु उग्रवादी अपराधशास्त्रियों का कहना है कि अब मानव जाग गया है, उसने अपने को पहचान लिया है। अब वह किसी भी व्यवस्था व सिद्धान्त, विशेषतः बाध्यात्मक, के हाथों की कठपुतली नहीं रह सकता है। अब वैचारिक क्रान्ति एवं निर्बाध्यता का युग प्रारम्भ हो गया है। इसी वैचारिक धारा से परम्परागत अपराधशास्त्र एवं अपराधशास्त्रियों के प्रतिरोध का जन्म हुआ है। इसी से आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की लहर उठी है। अपराध, अपराधी एवं अपराधशास्त्र की चिनगारियाँ जैसी चीज आलोचनात्मक अपराधशास्त्र में दिखाई पड़ती है, वैसी परम्परागत अपराधशास्त्र में नहीं।

आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की अन्तर्वस्तु : आलोचनात्मक अपराधशास्त्र परम्परागत अपराधशास्त्र में अन्तर्विष्ट व्यवहार के मतों, सम्प्रदायों एवं सिद्धान्तों की अनुदार आलोचना करके अपने नवीन परिप्रेक्ष्य द्वारा अपराधिक व्यवहार की नवीन व्याख्या करता है। संक्षेप में इसमें निम्नलिखित विषयों की चर्चा की जाती है[3] :-

1. आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के अध्येताओं की दृष्टि में परम्परागत अपराधशास्त्र द्वारा प्रस्तुत अपराधिक व्यवहार की कारणिक व्याख्या युक्तियुक्त नहीं है। आलोचनात्मक अपराधशास्त्री जहाँ एक ओर पूर्वशास्त्रीय, शास्त्रीय एवं नवशास्त्रीय सिद्धान्तकारों की अपराधिक व्यवहार की कारण के सिद्धान्तों की कटु आलोचना करते हैं, वहीं दूसरी ओर शारीरिक संरचना से सम्बन्धित सिद्धान्तों (यथा- कपालाकृति विज्ञान से सम्बन्धित सिद्धान्त, लोम्ब्रोसियन सिद्धान्त, हट्टन तथा शेल्डन द्वारा प्रतिपादित शारीरिक गठन के सिद्धान्त, अन्तःस्रावाग्रन्थीय सिद्धान्त, आनुवंशिक सिद्धान्त एवं भौगोलिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों (यथा सामाजिक संरचना से सम्बन्धित एवं अपराधीकरण से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय सिद्धान्त) को अयुक्तियुक्त मानते हैं। आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों की दृष्टि में ये सभी परम्परागत सिद्धान्त एक-दूसरे से सर्वथा अलग हैं, एक सिद्धान्त की प्रवृत्ति का दूसरे सिद्धान्त की प्रवृत्ति से कोई तालमेल नहीं है। ऐसा लगता है कि मानों एक सिद्धान्त में एक प्रवृत्ति क्रियाशील है तो दूसरे सिद्धान्त में दूसरी। इस प्रकार इन सिद्धान्तों में कोई प्रवृति निरूपित नहीं की जा सकी है। इस कारण अपराधिक व्यवहार के बुनियादी

कारण ओझल हो गये हैं। आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों की दृष्टि में अपराधिक व्यवहार की सम्यक् व्याख्या किसी एकल सिद्धान्त के आधार पर नहीं, बल्कि सभी की सम्मिलित विवेचना के द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

2. आलोचनात्मक अपराधशास्त्री अपराध नियन्त्रण से सम्बन्धित सभी परम्परागत संस्थाओं, निकायों एवं अभिकरणों यथा, दण्ड न्यायालय, पुलिस व्यवस्था, कारागार व्यवस्था तथा सुधारात्मक व्यवस्था के दोषपूर्ण क्रियाकलापों की प्रबल शब्दों में आलोचना करते हैं। जहाँ तक इनमें परिव्याप्त दोषों का प्रश्न है, वे तर्क देते हैं कि लोग इन संस्थाओं की परम्परागत कार्यप्रणाली को सदियों से क्रूर, अनीतिपूर्ण अनुचित, अन्यायी तो मानते ही रहे हैं, साथ ही साथ वे इन्हें भ्रष्टाचार, पूर्वाग्रह, व्यक्तिगत मूर्खता, अस्पष्ट नीतियों, धनाभाव, नीरस, उदास आदि के कारण अव्यवस्था, अशास्त्रीयता एवं असामंजस्य का केन्द्र मानते हैं। आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों की मान्यता है कि वर्तमान कानून सम्बन्धी अभिकरणों की कार्यवाहियों का प्रयोग सत्ताधारी लोगों द्वारा समाज में अपनी पूर्ववत् प्रस्थिति बनाये रखने के सन्दर्भ में स्व-हितार्थ किया जाता है न कि बहुजन हिताय व बहुजन सुखाय के लिए। इन वैधानिक अभिकरणों के क्रियाकलाप स्व-हितों एवं स्व-स्वार्थों की भित्ति पर आधारित होते हैं। अतः यह अवलोकन करने योग्य है कि किस प्रकार उच्चस्थ सामाजिक वर्ग द्वारा निम्नस्थ सामाजिक वर्ग पर नियंत्रण पाने के लिए अपराधिक कानून बनाये जाते हैं एवं लागू किये जाते हैं।

3. आलोचनात्मक अपराधशास्त्री कानून की न्यायपूर्णता को ही चुनौती देते हैं। वे इस स्थापना को कि अपराधिक कानून व्यापक रूप से समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों को ही अभिव्यक्त करते हैं, को अस्वीकार करते हैं। रिचर्ड क्वीने का मत है कि हम माइकेल (Michael) और एलडर (Adler) के इस तर्कवाक्य का खण्डन करते हैं कि किसी समुदाय में अधिकांश लोग इस बात पर सम्भवतः सहमत होंगे कि उनके समुदाय में अपराधिक कानून द्वारा निर्धारित अधिकांश व्यवहार सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होते हैं। आलोचनात्मक अपराधशास्त्री इस तर्कवाक्य का भी जोरदार खण्डन करते हैं कि अपराधिक कानून उस सरकार द्वारा जिसे प्रायः सभी लोग वैध व प्रामाणिक मानते हैं प्रचलित व जारी किये गये समाज के सामूहिक नैतिक न्याय वाक्य हैं। इसके स्थान पर हमें समाज को एक वह भूभागी व क्षेत्रीय समूह समझना चाहिए जो उस शासन पद्धति के अन्तर्गत कार्य करता है जिसे एक विजित प्रदेश की तरह शासितों ने स्थापित किया हो। किन्तु, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आलोचनात्मक अपराधशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि हत्या, लूटमार एवं बलात्कार आदि अपराध अचानक महत्वशाली व सम्मान्य बन गये हैं, उनका कहना है कि कानून में पायी जाने वाली सम्पत्ति और व्यक्ति की पवित्रता तथा कट्टरवादी नैतिकता के प्रति प्रसिद्ध धारणाएँ इतनी एक समान नहीं थीं जितना हमारा अपराधशास्त्र उन्हें मानता है।

4. आलोचनात्मक अपराधशास्त्री अपराधिक व्यवहार सम्बन्धी सरकारी दत्त-सामग्री (Data) को पूर्णतया अविश्वसनीय एवं अप्रमाणिक मानते हैं। उनका कहना है कि अपराधिक व्यवहार की दी हुई दर सामान्यतया पुलिस द्वारा निर्मित दर होती है तथा उसकी वास्तविक दर अज्ञात रहती है तथा सम्भवतः अज्ञेय होती है। अतएव पुलिस द्वारा प्रदत्त दत्त-सामग्री के आधार पर अपराधिक व्यवहार के कारणों से सम्बन्धित किसी सिद्धान्त का निर्माण करना युक्तियुक्त नहीं है। एतदर्थ हमारे लिए समाजशास्त्रीय अनुसंधानों एवं सर्वेक्षणों पर अधिक निर्भर करना ही श्रेयष्कर होगा।[4]

इस सन्दर्भ में रिचर्ड क्वीने जैसे आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों का तर्क है कि अपराध की 'वास्तविक दर' प्रमुख वाद बिन्दु नहीं है। निर्णायक प्रश्न यह है कि समाज ओर उसके अभिकरण अपराध की जिस मात्रा को प्रतिवेदित करते हैं उस मात्रा को क्यों प्रतिवेदित करते हैं। हमें उस व्यवस्थित तोड़-मरोड़ को खोजना चाहिए जो सामाजिक नियंत्रण की यान्त्रिकी का अंग है।

5. आलोचनात्मक अपराधशास्त्री इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि सदियों से समाज के उच्चस्थ वर्गीय सत्ताधारी व्यक्ति कानूनी ताकतों द्वारा निम्नस्थ, विपन्न व कमजोर वर्गों के सदस्यों को नियंत्रित करते रहे हैं। वे 'सत्ता' का भोग करने के लिए कानूनी शस्त्र का प्रयोग मुख्यतः अपने निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं -

1. व्यवहार सम्बन्धी नैतिक मानदण्डों को सम्पूर्ण समाज पर लागू करते हैं,
2. स्व-हितार्थ अपनी सम्पदा को विपन्नों की लूटमार से येन-केन- प्रकारेण सुरक्षित रखने का यथासंभव प्रयास करते हैं,
3. अपराधिक व्यवहार की परिभाषा अपनी आँखों पर 'सत्ता' के 'मोह' की पट्टी बांध कर तथा समाज के

निम्नस्थ वर्ग के सदस्यों की आँखों पर सत्ता की 'लालच' का पर्दा डालकर करते हैं तथा अपने मोह-पाश में उन्हें इस प्रकार फँसाते हैं कि उनके विरोध में उनकी आवाजें कभी प्रतिध्वनित न हो सकें। वे समाज के निचले वर्ग के सदस्यों को सत्ता के 'मोतियाबिन्द' से इस प्रकार आहत कर देते हैं कि चाहते हुए भी वे सामुदायिक, सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को देखने में सक्षम नहीं होते। आश्चर्य तब होता है जबकि विपन्न वर्गों के सदस्यों को सत्ताधारी व्यक्ति अपने कैदखाने में रखकर तथा स्वयं उच्चस्थ कुर्सियों पर बैठकर मानवतावादी दर्शन और न जाने कितने ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की दुहाई देते हैं, उपदेश झाड़ते हैं, आपराधिकता के संसार में न तो जीते हैं और न उसकी भयावहता को जानते हैं। अगर खुद उनको आपराधिक संसार में एक दिन रहना पड़े तो आटे, दाल का भाव मालूम पड़ जाये और दिमागी गुब्बारे की सारी हवा निकल जाये। वास्तविकता तो यह है कि वे सत्ताधारी व्यक्ति सदियों से गुलछर्रा उड़ाते रहे हैं तथा कानून की पकड़ से अपने को सुरक्षित बनाये रखने में सक्षम रहे हैं।

4. आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों का यह भी तर्क है कि सदियों से कानून केवल विपन्न वर्ग के सदस्यों को ही दबोचता रहा है, उन पर क्रूरता व निष्ठुरता से कुठाराघात इस प्रकार करता है कि वे जीवन-पर्यन्त आपराधिक भावना से ग्रसित होकर केवल 'गोबर का चोत' बनकर रह जाते हैं। इतना दर्द सहन करने पर भी बेचारा विपन्न वर्ग यथार्थ को जानते हुए भी संकोच के कारण कुछ कह नहीं पाता और यदि उनके 'जेहन' में एक क्षण के लिए सत्ताधारी वर्ग के विरोध में कुछ बातें कौंधती हैं तो फिर दूसरे क्षण आकाशी बिजली की भाँति गायब हो जाती हैं। आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों के अनुसार विपन्न वर्ग के सदस्य इस 'विराट' सत्य को देख ही नहीं पाते हैं।

आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की समीक्षा : नवोदित आलोचनात्मक अपराधशास्त्र परम्परागत अपराधशास्त्र की अनुदार आलोचना तो अवश्य करता है, किन्तु आलोचनात्मक अपराधशास्त्र का अपना कोई बुनियादी आधार नहीं है। इसका न तो कोई सुस्पष्ट निश्चित क्षेत्र है और न ही कोई यथार्थ प्रकृति। इसके पास निश्चित और व्यवस्थित सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं एवं अध्ययन पद्धतियों का पूर्णतया अभाव है। यह आपराधिक व्यवहार की व्याख्या नये सिद्धान्तों के आधार पर तो करना अवश्य चाहता है, किन्तु ऐसे मौलिक सिद्धान्तों की रचना करने में वह कोसों दूर है। यह केवल एक परिप्रेक्ष्य के रूप में उभरकर 'चार्वाक' दर्शन की भाँति कुछ बड़बड़ाता रहता है। इसके पास आलोचनात्मक दृष्टि के अतिरिक्त कोई ऐसी ठोस तथ्यात्मक अवधारणाएँ नहीं हैं, जिनके आधार पर यह नवीन अपराधशास्त्रीय सिद्धान्तों की रचना कर सके। तथ्यों और अवधारणाओं के ऊपर सिद्धान्तों का निर्माण करने वाले अपराधशास्त्रियों की आलोचना कर आलोचनात्मक अपराधास्त्री अब तथ्यहीन एवं अवधारणाहीन सामग्री पर सिद्धान्तों की रचना करने का दुस्साहस करते हैं। अतः आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की स्थापनाएँ तथ्यहीन आधारों पर आधृत है। विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की परिसीमाओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में रखकर प्रस्तुत कर सकते हैं -

1. आलोचनात्मक अपराधास्त्र की यह मान्यता कि परम्परागत अपराधशास्त्र के सारे के सारे सिद्धान्त बेकार हैं एवं उनके आधार पर आपराधिक व्यवहार की कारणता का सम्यक् विवेचन नहीं किया जा सकता, तथ्याश्रित नहीं है। सही बात यह है कि परम्परागत अपराधशास्त्र में जिन सिद्धान्तों की रचना की गयी है वे सहसा नहीं बना दिये गये हैं, बल्कि वे उनके अनुसंधानिक साधना एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण एवं कारण-कार्य सम्बन्ध सूत्र पर आधारित परिणाम हैं।

2. आलोचनात्मक अपराधास्त्रियों का यह तर्क है कि 'अपराधिक कानूनों का प्रयोग समाज के निम्नस्थ स्तरीय व विपन्न व्यक्तियों के विरुद्ध किया जाता है' न तो तर्कसंगत है और न ही किसी प्रामाणिक साक्ष्य पर आधृत है। वास्तव में आपराधिक कानूनों की सृष्टि पर समाज के विपन्न व्यक्तियों को न्याय दिलाने का कार्य किया जाता है।

3. आलोचनात्मक अपराधियों के इस कथन में भी कोई दम नहीं है कि सत्ताधारी अभिजात वर्ग के सदस्य आपराधिक कानूनों का प्रयोग अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए करते हैं। न्यायालय के क्रियाकलापों को यदि तटस्थ पर्यवेक्षक के रूप में देखा जाये तो सुस्पष्ट होगा कि गरीबों और विपन्नों को न्याय दिलाने में न्यायालयी व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विचार की कसौटी पर चाहे जिस युग की न्यायालयी व्यवस्था को

कसिये, गरीब और केवल विपन्न मिलेंगे जिसके महान गुरुत्वाकर्षण के चारो ओर पुलिसतंत्र एवं न्यायालयीय सौरमण्डल के उपग्रहों की भाँति चक्कर काटता हुआ पाया जायेगा।

4. आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों की यह दलील भी अतथ्याश्रित है कि अपराधिक कानून प्रधानतः शक्तिशाली व वैभवशाली व्यक्तियों द्वारा कमजोर व विपन्न व्यक्तियों पर लागू किया जाता है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित ये आलोचनात्मक अपराधशास्त्री यह भूल जाते हैं कि शक्तिशाली व वैभवशाली व्यक्ति ही अपराधिक कानूनों का निर्माण कर समाज के कमजोर वर्गों को सुरक्षा प्रदान करते रहे हैं। यहाँ तक कि अपराध के कानून के निर्माता अधिकांश वैभवशाली व्यक्ति ही रहे हैं।

5. आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों का यह तर्क भी अतार्किक है कि अपराधिक व्यवहार सम्बन्धी सभी दत्त-सामग्री बनावटी होती है, सभी आँकड़े गलत होते हैं। अपराधिक व्यवहार की दी हुई दर पुलिस द्वारा निर्मित होती है तथा उसकी वास्तविक दर अज्ञात रहती है। प्रत्यालोचना के रूप में यह कहा जा सकता है कि पुलिसतंत्र ही किसी राज्य में आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था का सजग एवं सशक्त प्रहरी है, जिसका कार्य कानून-व्यवस्था स्थापित करना एवं ''अपराधिक संहिता'' को लागू करना है। यदि पुलिस अपने इस दायित्व को कर्मठता से नहीं निभाती है तो न तो कानून-व्यवस्था ही स्थापित हो सकती है और न ही अपराधिक संहिता को ही लागू किया जा सकता है। अतः पुलिस द्वारा निश्चित किये गये अपराधिक दर की सत्यता में हमें विश्वास करना ही होगा। पुलिसतंत्र वह माध्यम है जिससे सदैव तटस्थ न्याय की अपेक्षा की जाती है, यह अलग बात है कि उसका कार्य भी मानवीय भावनाओं द्वारा प्रभावित होता है। उनके कार्यों से उनकी उदारता, उनकी व्यापक सहानुभूति और सौहार्द जो अब गैर-पुलिसतंत्रों में शून्य प्राप्त होता जा रहा है, छलक-छलक उठता है।

6. आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की आलोचना इस सन्दर्भ में की जाती है कि इसने अपराध का रोमानी (रोमैन्टिक) विश्लेषण किया है और आपराधिक व्यवहार की विशेषताओं, जैसे प्रजाति, लिंग और आयु जो वर्ग से सम्बन्धित नहीं हैं, को नकारा है। आलोचकों का यह भी दावा है कि आलोचनात्मक अपराधशास्त्र ने किन्हीं व्यावहारिक विकल्प नीतियों की रचना भी नहीं की है, क्योंकि यह पूर्णतः प्रमुख व प्रबल मान्यताओं पर मात्र प्रत्याकर्मण करता है। कुल मिलाकर आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के अध्येताओं ने परम्परागत व शास्त्रीय अपराधशास्त्र के विषय में श्रमसाध्य ऊहापोह किया है। उनके द्वारा की गयी गहरी छान-बीन का पुंखानुपुंख लेखा-जोखा प्रस्तुत कर देने से कोई स्पृहणीय सिद्धि नहीं मिलेगी। एतद्विषयक विवेचन-विश्लेषण की आधार-भूमि बड़ी कमजोर है।

उपर्युक्त आलोचनाओं एवं प्रत्यालोचनाओं के प्रसंग में यह कहना भी अतर्कसंगत नहीं होगा कि आलोचनात्मक अपराधशास्त्र के परिप्रेक्ष्य की हम एकदम उपेक्षा भी नहीं कर सकते। कहीं-कहीं इनकी आलोचनाएँ गौरतलब हैं और आज परम्परागत अपराधशास्त्र की अस्मिता की रक्षा करती हुई वृन्दावन की गायों के दूध जैसी आलोचनात्मक अपराधशास्त्र की चिन्तनधारा में व्यावहारिक नीति का निचोड़ भी निकलता चला आता है। परम्परागत अपराधशास्त्र का कलेजा कैसा हिल उठता है जब हम निम्नलिखित तर्कवाक्यों को पढ़ते हैं -

1 अपराधिक कानून राजनीतिक दाँव पर चढ़कर बहुरूपी वेश्या बन गया है।

2 अपराधिक कानून सत्ताधारियों और श्रीमन्तों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया है।

3 अपराधिक कानून के कटघरे में केवल विपन्न एवं निरीह लोगों को ही खड़ा कर दिया जाता है।

3 अपराधिक कानून की राजनीति एक ऐसी छतरी है जिसकी कमानी है विपन्न, बेबस और निरीह समुदाय की यह ''मानसिकता'', यह ''संकोच'' कि हम निर्णयकर्त्ताओं से यह कैसे कहें कि यह हमारा राज्य है और इसमें हमें शान्ति और प्रतिष्ठा से रहने का अधिकार है। छतरी का काला कपड़ा ही अपराधिक कानून की दृष्टि है जो ''संकोच'' की कमानी पर फैला हुआ है।

निःसन्देह आलोचनात्मक अपराधशास्त्र व्यावहारिक दृष्टि से अपराध नियन्त्रण से सम्बद्ध सभी अभिकरणों व निकायों में विद्यमान दोषों को उजागर अवश्य करता है, किन्तु उन दोषों को दूर करने के सम्बन्ध में कोई ठोस

विकल्प प्रस्तुत नहीं करता है। यह न तो अपराधिक व्यवहार की कारणात्मक व्याख्या ही कर पाता है और न गंभीरता से वैज्ञानिक उपागमों के ठोस आधार पर अपराधिक व्यवहार के किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन ही कर पाता है। हाँ, एकेडमिक अपराधशास्त्र को अपराधिक व्यवहार के गहरे अध्ययन से विमुख करने का यह एक अच्छा प्रयास है। पुरातन अपराधिक सिद्धान्तों का छिद्रान्वेषण करने में माहिर आलोचनात्मक अपराधशास्त्र आत्मनिष्ठ हो जाता है। आपराधिक गतिविधियों की व्याख्या केवल थोथी दलील से करता है। अपराधिक व्यवहार के सामाजिक-आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की उपेक्षा करता है। किन्तु अपराधिक प्रघटनाओं की व्याख्या करने में इन कारकों की उपेक्षा करना कठोर वास्तविकता से दूर भागना है। इस आलोचना के विरोध में आलोचनात्मक अपराधशास्त्रियों का कहना है कि परम्परागत अपराधशास्त्र ने जिन पक्षों को अभी तक नकारा है, वे उसी पक्ष का अध्ययन करते हैं। यह बात कुछ जमती नहीं। परम्परागत अपराधशास्त्र की कमी बताते हुए आलोचनात्मक अपराधशास्त्री जिन प्रघटनाओं का अध्ययन करते हैं, वे अत्यन्त ही साधारण हैं।

सन्दर्भ

1. Taylor, I., Walton, P. and Young J., *'The New Criminology : For a Social Theory of Deviance'*, Routledge and Kegan Paul, London, 1973.
2. John Gallihar and Mc Cartney, *'Criminology'*, 1977, p. 43.
3. See, Richard Quinney's work The Problem of Crime, 1970, see also, G. Rusche and O. Kirchheimer, Punishment and Social Structure, Columbia University Press, New York,1939.
4. See, Peter Manning in Douglas (ed) Crime and Justice in American Society, The Russian Messenger Series, 1971, p. 169.

Readings :

1. A Dictionary of Sociology, Edited by Marshall, Gordon, Oxford University Press, New York, 1998.
2. The Penguin Dictionary of Sociology, Abeverombic, Nicholas, Hill, Stephen, Turner, Bryan S., Penguin Book, London, 2006.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारत में बागवानी फसलों की वृद्धि दर की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ डॉ. सुनील कुमार चौधरी

सूचक शब्दः बागवानी विकास, उत्पादन प्रवृति, वृद्धि दर, सतत् विकास, हरित अर्थव्यवस्था तथा मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स।

बागवानी क्षेत्र का भारतीय अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय योगदान है। यह कृषि क्षेत्र की आय बढ़ाने के साथ-साथ आजीविका सुरक्षा प्रदान करने, विदेशी मुद्रा अर्जित करने के अतिरिक्त खाद्यान्न सुरक्षा के साथ पौष्टिक आहार, गरीबी उन्मूलन और लैंगिक समानता के साथ महिला सशक्तीकरण, कृषि आधारित उद्योग को कच्चा माल, हरित अर्थव्यवस्था, रोजगार सृजन तथा सतत् विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। वर्तमान समय में बागवानी विकास के सम्मुख अनेक चुनौतियॉ हैं। यदि इन चुनौतियां पर विशेष ध्यान दिया जाए तो निश्चित ही समग्र कृषि विकास को एक नई दिशा प्राप्त होगी, जिसमें बागवानी विकास का सर्वोपरि योगदान होगा।[1] प्रस्तुत शोध पत्र बागवानी की स्थिति का अध्ययन कर उत्पादन प्रवृति तथा विकास दर की स्थिति के माध्यम से मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स प्राप्त करने की दिशा में बागवानी की भूमिका को स्पष्ट करता है। यह अध्ययन बागवानी विकास की सम्भावनाओं तथा समस्याओं पर केन्द्रित हैं जिससे यह शोध बागवानी विकास की स्थिति के विश्लेषण की दिशा में शोधार्थियों एवं नीति निर्माताओं के लिए सहायक हो सकेगा।

प्रस्तावना : वर्तमान समय में देश के आर्थिक विकास तथा वृद्धि दर में बागवानी फसलों की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि विगत एक दशक से हरित अर्थव्यवस्था तथा सतत विकास की दिशा में विशेष प्रयास किया जा रहा हैं। इसके अंतर्गत अर्थव्यस्था के सभी क्षेत्रों पर समुचित ध्यान केन्द्रित किया गया। पिछले अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि देश की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र में निवास करता है जोकि पूर्णतः कृषि पर निर्भर है। कृषि केवल आजीविका साधन मात्र नहीं है बल्कि एक उद्यम के रूप में विकसित कर सभी को रोजगार, खाद्यान्न आपूर्ति, पौष्टिक आहार, पर्यावरणीय विकास, समतामूलक समाज, आय वितरण में समानता, स्वास्थ्य, आधारभूत उद्योगों को उत्पादन सामग्री की सहज उपलब्धता की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।[2] इसीलिए कृषि के समग्र तथा सतत विकास के साथ कृषि विविधीकरण पर बल दिया गया हैं। वहीं दूसरी ओर वैश्वीकरण तथा शहरीकरण की प्रक्रिया के साथ लोगों की आय के स्तर में वद्धि हुई जिससे खाद्यान्न माँग स्वरूप में बदलाव हुआ है जिसमें संतुलित तथा पौष्टिक आहार की मांग में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, पर्यावरण क्षरण, जलवायु परिवर्तन, विभिन्न प्रकार की आपदा, वैश्विक महामारी कोविड-19 तथा नागरिक अशांति की संयुक्त चुनौतियों का सामना करते हुए, सतत विकास के लिए नई प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता हैं। जबकि मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स आंशिक रूप से सफल रहे हैं। सितंबर, 2015 से संयुक्त राष्ट्र ने सभी देशों के विकास के प्रयासों पर ध्यान केंद्रित किया और 17 सतत विकास लक्ष्यों के एक समूह पर सहमति व्यक्त की गई। इसमें कृषि विकास का योगदान उल्लेखनीय है। इस सतत विकास लक्ष्य की उपलब्धि में बागवानी फसलों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सतत विकास के लिए आवश्यक घटक आर्थिक, पर्यावरणीय तथा सामाजिक हैं, जिससे भविष्य की बुनियादी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करना हैं। पिछले दो दशकों से बागवानी विकास के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था के विकास में तीव्र वृद्धि हुई है जिससे विदेशी मुद्रा भण्डार में भी वृद्धि हुई है और भारत को आज सतत विकास की दिशा में तीव्र गति से नई दिशा प्राप्त हो रही है।[3] इसके कारण भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी मजबूती से पैर पसार रहा है। बागवानी से आज कृषि विकास को नये आयामों में अभिवृद्धि के साथ कृषि विविधीकरण, जैविक खेती और उन्नत कृषि से किसानों की आर्थिक स्थिति समृद्ध तथा भारत आत्मनिर्भरता अलग-अलग क्षेत्रों में प्राप्त कर रहा है। अतः बागवानी विकास से आर्थिक समृद्धि के अवसर को सृजित कर देश ने भुखमरी, गरीबी, कुपोषण, बेरोजगारी एवं अनेक लाइलाज बीमारियों की दिशा में अपने पैर पसार कर आर्युवेद की छवि को पुनः साकार किया है और वर्तमान बदलते परिदृश्य में बागवानी की

❑ सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, उज्जैन (म.प्र.)

उपादेयता को प्रकट किया। किन्तु बागवानी के सम्मुख आज भी अनेक चुनौतियाँ हैं जिससे बागवानी विकास की दिशा में विशेष एकीकृत प्रयास की आवश्यकता है। बागवानी गतिविधियों ने किसानों के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया, भूमिहीन तथा गरीब लोगों के लिये व्यापक आर्थिक गतिविधियों से बाजार में वंचितों को नये अवसरों का सृजन किया। यह ग्रामीण समुदायों के साथ शहरी समुदाय, गरीबी उन्मूलन तथा महिला सशक्तीकरण की स्थिति में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता हैं। बागवानी फसल मूल्य श्रृंखला में वृद्धि के साथ रोजगार पैदा करती है वहीं बागवानी विकास के अवसरों को खोलती है। ज्यादातर उच्च मूल्य वाली फसलें होने के कारण, बागवानी फसलें धन सृजन में योगदान करती हैं। इस प्रकार से बागवानी महिला सशक्तीकरण पर सकारात्मक प्रभाव के साथ जैव विविधता और अधिक जीवनदायी, संरक्षण और संवर्धन में महत्वूपर्ण योगदान करती है। इस तरह से बागवानी विकास का महत्व बहुत ही व्यापक तथा विस्तृत है। प्रस्तुत शोध पत्र बागवानी विकास की स्थिति के साथ उत्पादन प्रवृति, वृद्धि दर की स्थिति के विश्लेषण के साथ बागवानी विकास के बाधक तत्वों तथा संभावनाओं पर भी प्रकाश डालेगा।

अध्ययन का उद्धेश्य

1. भारत में बागवानी फसलों का उत्पादन, उत्पादकता की स्थिति का अध्ययन करना।
2. बागवानी फसलों की मध्यप्रदेश में स्थिति का अध्ययन करना।
3. बागवानी फसलों की वृद्धि दर की स्थिति का अध्ययन करना।
4. बागवानी विकास की चुनौतियों तथा संभावनाओं का अध्ययन कर, सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पना : प्रस्तुत शोध पत्र में बागवानी फसलों के क्षेत्र आकार तथा उत्पादन के बीच संबंध निर्धारण हेतु निम्न शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया है-

1. बागवानी फसलों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है।
2. बागवानी फसलों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन के बीच महत्वपूर्ण सीधा संबंध है।

शोध पद्धति : यह शोध भारत में बागवानी उत्पादन की प्रवृति का अध्ययन करता है जो कि परिमाणात्मक शोध पर आधारित है। निगमनात्मक विधि से विशिष्ट निष्कर्ष को ज्ञात किया जायेगा। यह अध्ययन वर्णनात्मक तथा आनुभविक विश्लेषण अनुसंधान संरचना पर आधारित है। इस शोध पत्र में द्वितीयक संमकों का उपयोग किया गया है जिसका संकलन केन्द्र तथा राज्य सरकार के विविध उपक्रम एवं संस्थानों के प्रकाशित प्रतिवेदन के साथ राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, कृषि मंत्रालय की वेबसाइट से वार्षिक रिपोर्ट तथा अन्य प्रतिवेदन, एनएचएम, रिपोर्ट के संमकों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। समंकों का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी पद्धति के साथ, प्रवृति दर, वार्षिक वृद्धि तथा सहसंबंध के माध्यम से सामान्य निष्कर्ष एवं सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।

साहित्य समीक्षा : कांडल, कप्पा के द्वारा अपने शोध आलेख 'परफोर्मेंस ऑफ हर्टिकल्चर सेक्टर इन इंडिया' में स्पष्ट किया है कि भारत विश्व में द्वितीय स्तर पर सबसे बड़ा फल तथा सब्जियों के उत्पादन करने वाला देश है। इसके साथ ही कुल कृषि निर्यात में बागवानी की हिस्सेदारी सर्वाधिक है साथ ही बागवानी फसलों के उत्पादन निर्यात-आयात तथा विनिमय दर में धनात्मक संबंध देखा गया है। भारत के विविधीकरण में बागवानी फसलों की भूमिका सर्वाधिक है। पिछले दशक से भारत के तीव्र विकास में बागवानी की भूमिका तेजी से बड़ी हैं लेकिन बागवानी विकास के सम्मुख कुछ चुनौतियां हैं जो बागवानी उत्पादकों के लिए चिंता का विषय है।[4]

नबी, तवहीड़ एवं अन्य द्वारा अपने शोध पत्र 'ग्रोथ ट्रेंड ऑफ हर्टिकल्चर क्रोप्स इन इंडिया' में स्पष्ट किया है कि भारत में कृषि क्षेत्र के समग्र विकास में बागवानी फसलों की वृद्धि एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरी है। वर्तमान समय में शहरी तथा ग्रामीण विकास की प्रतियोगिता में फसल पैटर्न में बदलाव ने भी बागवानी विकास की ओर ध्यान आकर्षित किया है। बागवानी शायद सभी कृषि क्षेत्रों में एक लाभदायक उद्यम है जिसमें पर्याप्त रोजगार के अवसर, कृषक समुदाय की आय बढ़ाने की गुंजाइश, पोषण सुरक्षा, तथा स्वस्थ्य पर अनुकूल प्रभाव, कृषि आधारित उद्योग में वृद्धि के साथ बागवानी विकास सबसे तेज गति से विकसित होने वाला उद्यम है। इन्होंने अपने अध्ययन में बागवानी फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज वृद्धि के मूल्यों का अनुमान लगाया हैं जिसमें बागवानी फसलों की वृद्धि सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण पायी गई है।[5]

कदम, एमएम ने अपने शोध में स्पष्ट किया है कि भारत, जलवायु और मिटटी की व्यापक परिवर्तनशीलता के साथ बागवानी फसलों की वृहद स्तर पर पैदावार एवं श्रृंखला और उगाने की अनुकूलतम दशाएँ अत्यधिक होने से फल,

सब्जियॉ, कंद फसलें, औषधीय, संगंधित, मसाले, नारियल, बांस, मशरूम, सजावटी पौधे का विस्तार एवं बदलते परिदृश्य में तेजी से प्रोत्साहित करता है। देश में उन्नत तकनीक, से बागवानी फसल उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों में लाभप्रद व्यवसाय के रूप में स्थानांतरित हो गया है और यह बौद्धिक रूप से संतोषजनक तथा आर्थिक रूप से लाभप्रद साबित है। यह अध्ययन बागवाली फसल क्षेत्र तथा उत्पादन की वृद्धि दर का अध्ययन करता है जिसमें वर्ष 2001 से 2013 के आंकड़ों को सम्मिलित किया गया है, जिसमें उत्पादकता के महत्व का वर्णानात्मक विश्लेषण किया गया है। जिसमें बागवानी उत्पादन में पांच गुना सकारात्मक वृद्धि अंकित की गई है। प्रौद्योगिकी नवाचार के कारण उत्पादकता बढ़ रही है।[6]

रामेश, जी.बी., ने अपने आलेख में संक्षिप्त में स्पष्ट उल्लेख किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय बागवानी उत्पादों, ताजा और प्रसंस्कृत उत्पादों की बढ़ती मांग को देखते हुए अखिल भारतीय स्तर पर बागवानी फसलों के निर्यात में तेजी आई है। चूंकि भारत फलों और संब्जियों, मसालों और चाय तथा कॉफी जैसी कुछ बगान फसलों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक निर्यात मूल्य प्राप्त होता है एनएचएम योजना के लागू होने के बाद भारत में बागवानी निर्यात में वृद्धि हुई है। भारत में बागवानी उत्पादन कृषि फसलों के उत्पादन को पार कर गया है और वर्ष 2012 के दौरान 280 मिलियन टन के उच्चतम उत्पादन पर पहुंच गया है। भारत मुख्य रूप से संयुक्त अरब अमीरात, नेपाल, अरब, बहरीन और कुवैत को बागवानी फसलों का निर्यात कर अधिक कर रहा है। अध्ययन में फल तथा सब्जियों के निर्यात में अतंराष्ट्रीय बाजार में तेजी से विस्तार हुआ है। पिछले 25 वर्षो के दौरान उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है। देश में बागवानी उत्पादन में सबसे ज्यादा वृद्धि वर्ष 2005 के वाद तीव्र हुई है। इसका कारण एनएचएम है।[7]

झा, गिरीश कुमार एवं अन्य (2019) ने अपने शोध आलेख 'ग्रोथ ऑफ हर्टिकल्चर सेक्टर इन इंडियाः ट्रेंड्स एंड प्रोस्पेक्टस्' में बागवानी विकास को कृषकों की आय में वृद्धि, अजीविका सुरक्षा तथा विदेशी आय अर्जित करने में बागवानी का उल्लेखनीय योगदान माना है। साथ ही बागवानी उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि हेतु शोध कार्य की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है।[8]

विश्लेषण तथा परिणाम :

तालिका संख्या 1

भारत में बागवानी जिंस की स्थिति[9]

Area in '000 Ha, Production in '000 MT(Million Tonnes)

फसल	वर्ष											
	2015-16		2016-17		2017-18		2018-19		2019-20 (द्वितीय अग्रिम अनुमान)		2020-21 (पूर्वानुमान)	
	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
फल	6301	90183	6373	92918	6506	97358	6597	97967	6664	99069	6523	104177
सब्जी	10106	169064	10238	178172	10259	184394	10073	183170	10353	191769	9715	193347
औषधीय पौधे, पुष्प	912	3206	970	3364	1044	3651	930	3705	933	3861	658	3558
मसाले	3474	6988	3671	8122	3878	8124	3960	9428	3824	9420	3762	8017
पौधीय फसले	3680	16668	3598	17972	3744	18082	3872	16350	3887	16240	3756	14064
योग	24472	286188	24851	300643	25431	311714	25433	310738	25661	320479	24414	323163

उपर्युक्त तालिका क्र 01 में भारत में बागवानी फसलों की उत्पादन तथा क्षेत्रफल की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है जिसमें वर्ष 2015-16 से 2019-20 तक वास्तविक समंकों के साथ वर्ष 2020-21 के लिए बागवानी क्षेत्रफल तथा उत्पादन की स्थिति को परिकल्पित किया गया है। जिससे स्पष्ट हैं कि वर्ष 2015-16 में कुल बागवानी क्षेत्रफल 24472 हजार हेक्टेयर से उत्पादन 286188 हजार मिलियन टन हुआ हैं जो वर्ष 2019-20 के द्वितीयक अग्रिम अनुमान के अनुसार कुल बागवानी का क्षेत्रफल 25661 हजार हेक्टेयर से 320479 हजार

मिलियन टन का उत्पादन प्राप्त हुआ है। जबकि वर्ष 2020-21 में 24414 हजार हेक्टयेर से 323163 हजार मिलियन टन का परिगणित किया गया है, जिसमें फल तथा सब्जियों का उत्पादन तथा क्षेत्रफल अग्रणी हैं।

चित्र क्रमांक 1

भारत में वर्ष 2019-20 की स्थिति में प्रमुख बागवानी फसलों की हिस्सेदारी

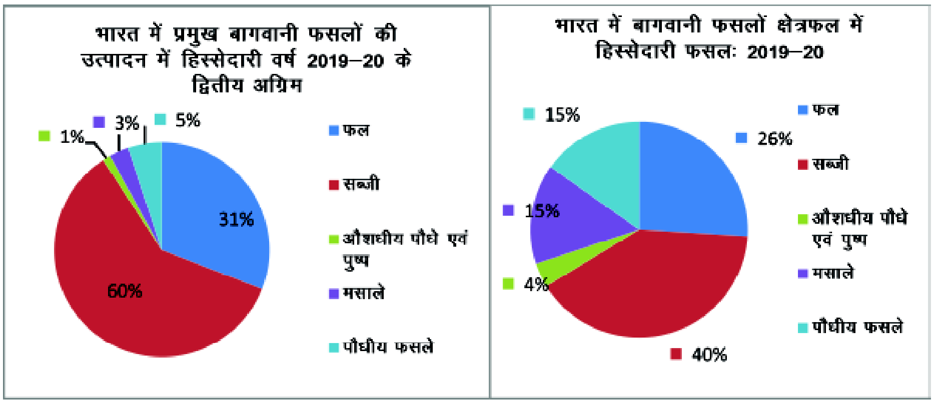

उपर्युक्त आरेख में वर्ष 2019-20 की स्थिति में बागवानी फसलों की हिस्सेदारी को प्रदर्शित किया गया है जिसमें स्पष्ट है कि सर्वाधिक क्षेत्रफल में 60 प्रतिशत हिस्सेदारी सब्जियों का क्षेत्र हैं और फलों में 31 प्रतिशत की हिस्सेदारी है जबकि पौधीय फसलों का क्षेत्र 5 प्रतिशत तथा मसाले का क्षेत्र 3 प्रतिशत की हिस्सेदारी रही हैं वहीं उत्पादन में 40 प्रतिशत सब्जियों की हिस्सेदारी 26 प्रतिशत फलों, 15 प्रतिशत पौधीय फसल तथा 15 प्रतिशत मसाले की उत्पादन में हिस्सेदारी हैं। अतः विगत वर्षो में भारत में बागवानी फसलों के उत्पादन में सब्जियों, फल तथा मसाले के उत्पादन में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी देखी गई है।

तालिका संख्या 2

भारत में बागवानी फसल विकास दर तथा सांख्यिकी वर्णनात्मक[10]

Area in '000 Ha, Production in '000 MT(Million Tonnes)

वर्ष	फल		सब्जियॉ		कुल बागवानी	
	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
2010-11	6383	74874	8495	146554	21825	240531
2011-12	6705	76424	8989	156325	23243	257277
2012-13	6982	81285	9205	162187	23694	268848
2012-14	7216	88977	9396	162897	24198	277352
2014-15	6358	88819	9541	168300	23417	283468
2015-16	6301	90183	10106	169064	24472	286188
2016-17	6480	92846	10290	175008	24925	295164
2017-18	6506	97358	10259	184394	25431	311714
2018-19	6597	97967	10073	183170	25433	310738
2019-20	6664	99069	10353	191769	25661	320479
CAGR (2010-11 to 2019-20)	0.43%	2.84%	2.00%	2.73%	1.63%	2.91%
Annual Growth Rate	0.48%	3.11%	2.20%	2.99%	1.80%	3.19%
Mean	6619.2	88780.2	9670.7	169966.8	24229.9	285175.9
SD	289.6576	8721.686	641.408	13870.74	1210.43807	25401.3
CV%	4.38%	9.82%	6.63%	8.16%	5.00%	8.91%
@2020-21	6523	104177	9715	193347	24308	327715
@2021-22	6422	106627	9986	196399	24785	332646
CAGR (2010-11 to 2021-22)	0.05%	2.99%	0.90%	2.72%	0.67%	2.94%

तालिका क्रमांक 2 में भारत में बागवानी विकास दर की स्थिति का विश्लेषण किया गया है जिसमें वार्षिक वृद्धि दर (CAGR), माध्य, विषमता गुणांक तथा प्रमाप विचलन के आधार पर बागवानी विकास दर की प्रवृति को स्पष्ट किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि देश में बागवानी वृद्धि दर सर्वाधिक सब्जियों के क्षेत्र में 2 प्रतिशत तथा उत्पादन में 2.73 प्रतिशत की दर पायी गई है जबकि फल के क्षेत्र में 0.43 प्रतिशत तथा उत्पादन में 2.83 प्रतिशत की वृद्धि दर अर्जित की गई है। वहीं कुल बागवानी फसलों की वृद्धि उत्पादन में 2.91 प्रतिशत की ही पायी गई हैं। विषमता गुणांक कुल बागवानी फसलों के उत्पादन में 8.91 प्रतिशत तथा फलों के उत्पादन में विषमता गुणांक 9.82 प्रतिशत देखा गया हैं, जिससे स्पष्ट है कि देश में बागवानी विकास की बहुमुखी संभावनाएँ हैं। वहीं देश में फलों के उत्पादन की संभावना और अधिक मौजूद है। इस दिशा में समन्वय रणनीति बनाकर देश में बागवानी विकास की दिशा में विशेष प्रयास की आवश्यकता को रेखांकित करता है। जबकि विगत दस वर्ष का औसत (गणतीय माध्य) बागवानी क्षेत्रफल 24229.9 हजार हेक्टेयर रहा है जबकि औसत उत्पादन 285175.9 हजार मिलियन टन का हुआ हैं जोकि वर्तमान मांग के अनुरूप पर्याप्तता को नहीं दर्शाता है इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि देश में बागवानी विकास पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता के साथ उत्पादकता में सुधार की स्थिति में प्रयास किया जाना चाहिए। आरेख क्रमांक 04 कुल बागवानी विकास की प्रवृति दर को प्रदर्शित किया गया है जिसमें बागवानी विकास की प्रवृति दर सकारात्मक हैं।

तालिका क्र. 3

भारत में बागवानी फसलों की सापेक्षिक परिवर्तन तथा वार्षिक वृद्धि दर की प्रवृति[11]

"Area in '000 Ha, Production in '000 MT(Million Tonnes)

वर्ष	फल				सब्जियाँ				कुलबागवानी			
	क्षेत्रफल		उत्पादन		क्षेत्रफल		उत्पादन		क्षेत्रफल		उत्पादन	
	परिवर्तन	वृद्धि दर	परिवर्तन	वृद्धि दर	परिवर्तन	वृद्धि दर	परिवर्तन	वृद्धि दर	परिवर्तन	वृद्धि दर	परिवर्तन	वृद्धि दर
2010-11	--	--	--	--	--	--	--	--	--	--	--	--
2011-12	322	5.04%	1550	2.07%	494	5.82%	9771	6.67%	-1418	6.50%	16746	6.96%
2012-13	277	4.13%	4861	6.36%	216	2.40%	5862	3.75%	-451	1.94%	11571	4.50%
2013-14	234	3.35%	7692	9.46%	191	2.07%	710	0.44%	-504	2.13%	8504	3.16%
2014-15	-858	-11.89%	-158	-0.18%	145	1.54%	5403	3.32%	781	-3.23%	6116	2.21%
2015-16	-57	-0.90%	1364	1.54%	565	5.92%	764	0.45%	-1055	4.51%	2720	0.96%
2016-17	179	2.84%	2663	2.95%	184	1.82%	5944	3.52%	-453	1.85%	8976	3.14%
2017-18	26	0.40%	4512	4.86%	-31	-0.30%	9386	5.36%	-506	2.03%	16550	5.61%
2018-19	91	1.40%	609	0.63%	-186	-1.81%	-1224	-0.66%	-2	0.01%	-976	-0.31%
2019-20	67	1.02%	1102	1.12%	280	2.78%	8599	4.69%	-228	0.90%	9741	3.13%

तालिका क्रमांक 03 में भारत में प्रमुख बागवानी फसलों की विकास दर की स्थिति का विश्लेषण किया गया है जिसमें वार्षिक वृद्धि दर के साथ निरपेक्ष परिवर्तन दर की प्रवृति को स्पष्ट किया गया है। अवलोकन से स्पष्ट है कि भारत में बागवानी फसलों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन की स्थिति नकारात्मक परिवर्तन भी देखा गया हैं। कुल बागवानी उत्पादन में सर्वाधिक वार्षिक वृद्धि दर वर्ष 2010-11 से 2011-12 में 6.69 प्रतिशत थी जो घटकर वर्ष 2012-13 में 4.50 प्रतिशत रही है और वर्ष 2015-16 में 0.96 प्रतिशत तक गिर गई हैं वार्षिक वृद्धि में यह गिरावट बहुत ही चिंताजनक स्थिति को दर्शाता है लेकिन वर्ष 2017-18 में कुल बागवानी फसलों के उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर 5.61 प्रतिशत पहुंच गई है जबकि वर्ष 2018-19 में घटकर 0.31 प्रतिशत रही है पुनः 2019-20 में 3.13 प्रतिशत की धनात्मक वृद्धि अर्जित हुई हैं। सब्जियों के उत्पादन में 2018-19 में

नकारात्मक वृद्धि दर 0.66 प्रतिशत की देखी गई वहीं बाकी वर्षो में सब्जियों के उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर धनात्मक वृद्धि दर रहीं है किन्तु यह वृद्धि की गति की दर बहुत धीमी तथा उतार-चढ़ाव की स्थिति देखी गई हैं। वहीं फलों के उत्पादन में वर्ष 2014-15 में नकारात्मक वृद्धि पायी गई है लेकिन अन्य वर्षो में धनात्मक वृद्धि हुई फलों के उत्पादन में सर्वाधिक धनात्मक वृद्धि दर वर्ष 2013-14 में 9.46 प्रतिशत की आंकी गई है।

तालिका क्र. 4

भारत के शीर्ष उत्पादक राज्यों में बागवानी फसल की वृद्धि दर की स्थिति[12]

Area in '000 Ha, Production in '000 MT(Million Tonnes

राज्य/वर्ष	2016-17		2019-20		वृद्धि दर प्रतिशत में	
	क्षेत्रफल	उत्पादन	क्षेत्रफल	उत्पादन	क्षेत्रफल में	उत्पादन में
आन्ध्र प्रदेश	223.73	1525.18	5355.64	28372.49	121.19%	107.68%
असम	312.01	710.82	3874.5	7215.01	87.72%	78.49%
बिहार	844.04	1237.75	14225.04	2110.23	102.62%	14.27%
छत्तीसगढ	491.31	828.28	6700.96	10223.76	92.17%	87.44%
गुजरात	695.84	1644.65	13401.39	23122.79	109.49%	93.64%
हरियाणा	435.00	461.04	6960.00	6803.54	100.00%	96.00%
हिमाचल प्रदेश	85.76	329.36	1743.31	2639.74	112.34%	68.26%
जम्मू कश्मीर	62.63	398.66	1386.37	3883.31	116.91%	76.66%
झारखण्ड	286.40	418.00	3714.25	4761.51	89.77%	83.71%
कर्नाटक	486.12	2000.08	8207.18	18479.94	102.70%	74.35%
केरल	137.68	1582.3	1907.72	10163.77	92.93%	59.20%
मध्यप्रदेश	884.05	2052.56	16664.66	30377.20	108.37%	96.14%
महाराष्ट्र	993.15	1830.35	10360.76	25345.49	79.72%	92.90%
उडीसा	639.34	1386.62	8760.09	11727.47	92.40%	70.53%
पंजाब	230.26	416.93	4640.52	7784.77	111.88%	107.87%
तमिलनाडू	256.78	1423.85	6304.84	18261.33	122.60%	89.24%
उत्तर प्रदेश	1400.13	2304.29	2607.34	38486.26	16.82%	102.16%
पश्चिम बंगाल	1387.49	1968.32	25500.61	34180.80	107.05%	104.14%

तालिका क्रमांक 04 में भारत के विभिन्न प्रमुख कुल बागवानी फसलों के उत्पादन वाले राज्यों में वर्ष 2016-17 से 2019-20 की स्थिति में बागवानी फसलों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन में वृद्धि दर की स्थिति को स्पष्ट किया गया हैं, जिसमें सर्वाधिक बागवानी उत्पादन में वृद्धि प्राप्त करने वाले राज्यों में जो 100 प्रतिशत से अधिक वृद्धि अंकित करने वाले क्रमशः प्रमुख राज्य पंजाब, आंध्रप्रदेश पंश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश हैं जबकि 90 प्रतिशत से अधिक उत्पादन में वृद्धि वाले राज्य मध्यप्रदेश, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र जबकि छत्तीसगढ़ में 14.27 प्रतिशत की वृद्धि अंकित की गई है। यदि हम सर्वाधिक उत्पादन प्राप्त करने वालों राज्यों की स्थिति का अध्ययन करें (तालिका क्रमांक 05) तो हम पाते हैं कि प्रथम स्थान उत्तरप्रदेश दूसरा पंश्चिम बंगाल और तीसरे स्थान पर मध्यप्रदेश कुल बागवानी उत्पादन करने वाले राज्यों में अग्रणी है।

तालिका क्रमांक 5

भारत में कुल बागवानी उत्पादन में प्रमुख शीर्ष उत्पादक राज्यों की स्थिति[13]

राज्य	उत्पादन	श्रेणी स्थान
उत्तर प्रदेश	38486.26	1
पंश्चिम बंगाल	34180.8	2
मध्यप्रदेश	30377.2	3
अन्ध्र प्रदेश	28372.49	4

महाराष्ट्र	25345.49	5	पंजाब	7784.77	12
गुजरात	23122.79	6	असम	7215.01	13
कर्नाटक	18479.94	7	हरियाणा	6803.54	14
तमिलनाडू	18261.33	8	झारखण्ड	4761.51	15
उडीसा	11727.47	9	जम्मू-कश्मीर	3883.31	16
छत्तीसगढ	10223.76	10	हिमाचल प्रदेश	2639.74	17
केरल	10163.77	11	बिहार	2110.23	18

कुल बागवानी फसलों की विभिन्न राज्यों की हिस्सेदारी वर्ष 2019-20 की स्थिति के आधार पर विश्लेषण किया गया हैं जिसमें कुल बागवानी फसलों के उत्पादन में 11 प्रतिशत की हिस्सेदारी मध्यप्रदेश राज्य की है जबकि 10 प्रतिशत आंध्रप्रदेश राज्य की देखी गई हैं वहीं 13 प्रतिशत हिस्सेदारी उत्तरप्रदेश राज्य की रही है।

तालिका क्र.6

भारत में बागवानी फसलों की प्रवृति तथा आंकलन स्थिति[14]

Area in '000 Ha, Production in '000 MT (Million Tonnes)

वर्ष	फल		सब्जियॉ		कुल बागवानी	
	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
2011	6383	74874	8495	146554	21825	240531
2012	6705	76424	8989	156325	23243	257277
2013	6982	81285	9205	162187	23694	268848
2014	7216	88977	9396	162897	24198	277352
2015	6358	88819	9541	168300	23417	283468
2016	6301	90183	10106	169064	24472	286188
2017	6480	92846	10290	175008	24925	295164
2018	6506	97358	10259	184394	25431	311714
2019	6597	97967	10073	183170	25433	310738
2020	6664	99069	10353	191769	25661	320479
2021	6523	104177	10765	194733	26289	330651
2022	6506	106976	10964	199236	26663	338919
2023	6489	109775	11163	203739	27038	347187
2024	6471	112575	11362	208242	27412	355455
2025	6454	115374	11561	212745	27787	363723
2026	6436	118173	11760	217247	28161	371991
2027	6419	120973	11959	221750	28535	380260
2028	6402	123772	12158	226253	28910	388528
2029	6384	126571	12357	230756	29284	396796
2030	6367	129371	12555	235259	29659	405064

तालिका क्रमांक 06 में भारत में बागवानी फसलों के उत्पादन तथा क्षेत्रफल का अनुमान वर्ष 2030 की स्थिति में पूर्वानुमान लगाया गया हैं जिसमें कुल बागवानी फसलों का क्षेत्र 29659 हजार हेक्टेयर से 405064 हजार मिलियन टन का उत्पादन होने का अनुमान आकलित किया गया है जोकि हमारी भविष्य की आवश्यकता को पूरा करने पर्याप्त नहीं है। क्योंकि बागवानी उत्पादन की उत्पादकता 13.65 हजार मिलियन टन/हजार हेक्टेयर है। इसलिए बागवानी फसलों की उत्पादकता कृषि फसलों में खाद्यान्न की अपेक्षा अधिक है लेकिन सतत विकास के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि देश में बागवानी फसलों की उत्पादकता की दर में सुधार हेतु विशेष प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि एक ओर सीमांत, भूमिहीन तथा कृषि मजदूरी की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है और जोत के आकार में निरन्तर कमी होने से उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। भूमि की उत्पादकता पर कृषि यंत्रीकरण का भी विपरीत प्रभाव पड़ा है इसलिए आवश्यकता इस बात की भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने हेतु जैविक खेती तथा विविधीकरण और सघन खेती की आवश्यकता के साथ कृषकों के स्वामित्व अधिकार की दिशा में ध्यान देने की आवश्यकता है।

तालिका क्र.7

भारत में बागवानी फसलों का उत्पादन तथा उत्पादकता की स्थिति[15]

Area in '000 Ha, Production in '000 MT(Million Tonnes), Productivity (MT/Ha)

वर्ष	फल			सब्जियाँ			कुलबागवानी		
	क्षेत्र	उत्पादन	उपज	क्षेत्र	उत्पादन	उपज	क्षेत्र	उत्पादन	उपज
2010-11	6383	74874	11.73	8495	146554	17.25	21825	240531	11.02
2011-12	6705	76424	11.40	8989	156325	17.39	23243	257277	11.07
2012-13	6982	81285	11.64	9205	162187	17.62	23694	268848	11.35
2013-14	7216	88977	12.33	9396	162897	17.34	24198	277352	11.46
2014-15	6358	88819	13.97	9541	168300	17.64	23417	283468	12.11
2015-16	6301	90183	14.31	10106	169064	16.73	24472	286188	11.69
2016-17	6480	92846	14.33	10290	175008	17.01	24925	295164	11.84
2017-18	6506	97358	14.96	10259	184394	17.97	25431	311714	12.26
2018-19	6597	97967	14.85	10073	183170	18.18	25433	310738	12.22
@2019-20	6664	99069	14.87	10353	191769	18.52	25661	320479	12.49
#2020-21	6523	104177	15.97	10765	194733	18.09	26289	330651	12.58
#2021-22	6506	106976	16.44	10964	199236	18.17	26663	338919	12.71

नोटः/द्वितीय अग्रिम अनुमान, : आंकलित मान

उपर्युक्त तालिका 07 में देश में बागवानी क्षेत्र, उत्पादन तथा उत्पादकता की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। जिसमें वर्ष 2010-11 से लेकर 2021-22 तक की स्थिति में बागवानी फसलों की उत्पादकता की स्थिति का चित्रण किया गया है, जिसके अवलोकन से स्पष्ट है कि देश में कुल बागवानी फसलों की उत्पादकता की स्थिति 11.2 से लेकर 12.47 हजार मिलियन टन/हजार हेक्ट. देखी हैं, जबकि सब्जियों की उत्पादकता की दर सर्वाधिक रही है। फलों की उत्पादकता में तीव्र रूप से सकारात्मक वृद्धि देखी गई है फलों की उपज वर्ष 2010-11 में 11. 73 से बढ़कर वर्ष 2019-20 में 14.87 अंकित की गई है। अतः बागवानी फसलों में सर्वाधिक उत्पादकता फलों की देखी गई है। इससे स्पष्ट होता है कि देश में फल तथा सब्जियों की विकास की संभावना अधिक है इसका प्रमुख कारण है कि देश में प्रति व्यक्ति की आय बढ़ने से लोगों के आहार के प्रति बदलाव हुआ हैं। व्यक्ति अपने दैनिक उपयोग में फल तथा सब्जियों का उपयोग अधिक करने लगा है। इसका एक यह भी कारण है कि व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होने से संतुलित तथा पौष्टिक आहार का उपयोग अधिक करने लगा है जिससे बागवानी फसलों की मांग में वृद्धि हुई है। बागवानी फसलें उच्च मूल्य की होने के कारण बागवानी उत्पादकों

को आय अधिक प्राप्त होती हैं। इसलिए उनके द्वारा इन फसलों के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। लेकिन समुचित व्यवस्था न होने के कारण बागवानी विकास की गति धीमी हैं।

परिकल्पना परीक्षण : शोध अध्ययन की परिकल्पना को सहसंबंध के आधार परीक्षण किया गया है जिसमें हमने कुल बागवानी फसलों के क्षेत्र तथा उत्पादन के बीच संबंध को विश्लेषण किया है।

शून्य परिकल्पना – बागवानी फसलों के क्षेत्र और उत्पादन के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है।

Correlations			
		Area	production
Area	Pearson Correlation	1	.960**
	Sig. (2-tailed)		.000
	N	10	10
production	Pearson Correlation	.960**	1
	Sig. (2-tailed)	.000	
	N	10	10
**. Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).			

उपर्युक्त सांख्यिकी विधि से सहसंबंध से स्पष्ट हैं कि सहसंबंध का मान 0.960 धनात्मक है जो स्पष्ट करता हैं कि क्षेत्रफल तथा उत्पादन के बीच महत्वपूर्ण संबंध है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है। स्पष्ट है कि बागवानी फसलों के क्षेत्र और उत्पादन के बीच महत्वपूर्ण संबंध हैं।

निष्कर्ष : भारतीय अर्थव्यवस्था में बागवानी फसलों का योगदान उल्लेखनीय है। विगत एक दशक में देश में बागवानी फसलों की वृद्धि, उत्पादन, क्षेत्र तथा उत्पादकता के संदर्भ में तेजी से प्रगति हुई है। बागवानी विकास के फलस्वरूप कृषि विकास की दर की स्थिति में काफी वृद्धि दर परिलक्षित हुई है जिससे देश के कृषि विकास में विविधीकरण के साथ हरित अर्थव्यस्था, सतत् विकास के साथ मिलिनियम डेवलपमेंट के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में बागवानी फसलों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। देश के कई राज्य में बागवानी क्षेत्र अर्थव्यवस्था के प्रमुख प्रस्तावक के रूप में उभरे हैं। देश में बागवानी क्षेत्र और उत्पादन के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया हैं। स्पष्ट है कि पिछले दशक में बागवानी क्षेत्र विस्तार के फलस्वरूप बागवानी उत्पादन में तीव्र प्रगति हुई है। किन्तु देश में बागवानी फसलों की उपज में वृद्धि बहुत धीमी रही हैं। बागवानी उत्पादन में पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की स्थिति बहुत शीर्ष व्यापक रही है। सर्वाधिक बागवानी फसलों की वृद्धि दर पंजाब राज्य की देखी गई। इस तरह से देश में बागवानी फसलों ने विकास के प्रदर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे देश के सतत् विकास की दिशा में एक सकारात्मक पहल के रूप में मिलिनियम डेवलपमेंट गोल्स के लक्ष्यों को प्राप्त करने में बागवानी एक मील का पत्थर हैं। देश के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती है कि 2050 तक नौ अरब से अधिक जनसंख्या को खिलाने के लिए 70 प्रतिशत अधिक भोजन की आवश्यकता है। इसलिए आवश्यकता है कि देश में बागवानी विकास पर पर्याप्त शोध तथा किसानों के अनुभवों के आधार पर बागवानी विकास पर समुचित ध्यान केन्द्रित कर एकीकृत मिशन के माध्यम से बागवानी विकास की दिशा में उचित रणनीति अपनानी होगी, जो कि यह जैविक खेती के साथ केवल विज्ञान और नवाचार के माध्यम से सतत्, समावेशी तथा टिकाऊ विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। बागवानी फसलें न केवल खाद्यान्न, पौष्टिक आहार की आपूर्ति प्रादान करती है बल्कि कृषि क्षेत्र को लाभप्रद उद्यम बनाने की दिशा में सराहनीय भूमिका के साथ रोजगार के अवसर सृजन में वृद्धि, महिला सशक्तीकरण, उच्च आय, गरीबी उन्मूलन, खाद्यान्न सुरक्षा के साथ बागवानी जीड़ीपी में तीव्र वृद्धि तथा समग्र कृषि विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। इस तरह से पिछले दो दशकों से बागवानी का क्षेत्रफल तथा उत्पादन में सकारात्मक तीव्र वृद्धि हुई है। वहीं बागवानी फसलों की उपज में भी तीव्र वृद्धि हुई है जिससे भारत, बागवानी उत्पादक देशों में शीर्ष उत्पादक देशों की सूची में सम्मिलित हुआ है। किंतु बागवानी विकास में अनेक चुनौतियाँ तथा बाधक घटक हैं, जिसमें विपणन, प्रसंस्करण, उपार्जन, उन्नत तकनीक, आधारभूत सुविधाओं की कमी के कारण बागवानी विकास को उचित दिशा प्राप्त नहीं हुई। साथ ही बागवानी फसलों के विकास तथा विस्तार हेतु शोध कार्य की अनिवार्यता को भी रेखांकित करता है। अतः बागवानी विकास में सकारात्मक वृद्धि रहीं है विगत वर्षों में उतार-चढ़ाव की भी स्थिति देखी गई है, जिसके प्रमुख कारण बाजार

नीति, विपणन व्यवस्था, खाद्य-प्रसंस्करण की कमी, शासन की नीतियों का उचित क्रियान्वयन का अभाव, कृषकों में जागरूकता का अभाव, भूमिहीन तथा खेतीहर मजदूरों के लिए उचित रणनीति का अभाव, किसानों को उचित मूल्य प्राप्ति में कमी, उन्नत तकनीक का सही ढंग से प्रयोग का अभाव, निरीक्षण तथा गुणवत्ता युक्त बीज की कमी, कृषि लागतें अनियंत्रित तरीके से बढ़ना, आदि प्रमुख कारण हैं जिससे देश में बागवानी विकास की गति धीमी है। लेकिन इसके बावजूद बागवानी विकास से कृषि विकास तथा विविधीकरण में विस्तार के साथ सतत् तथा स्थायी पर्यावरणीय विकास की संकल्पना और लक्ष्य को प्राप्त करने में उल्लेखनीय योगदान रहा हैं।

संदर्भ

1. Choudhary, S.K. (2013), *'Contribution of National Horticulture Mission in Agricultural Development'*, International Journal of Advance Research in Management and Social Science, (IJARMSS) Garph, Vol. 2 No. 6, June201, Pp 52-64.
2. मण्डलोई, वन्दना, 'उद्यानिकी फसल में सरंचनात्मक वृद्धि दर की प्रवृति तथा संभावनाएँ', अंतराष्ट्रीय जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशियल सांइस, वाल्यूम 9-3(2), मार्च 2019, पृ. 93-101
3. Patil, B. O., & Hosamani, S. B. (2018). *'Performance of National Horticulture Mission in India- an Economic Analysis'*, Journal of Farm Sciences, Dharwad, Karnataka, Vol.31 No.3 pp.304-309 ref.13.
4. Kappa Kondal, *'Trends in Area and Production of Horticulture Sector in India'*, Anesak Journal, Sardar Patel Institute of Economics & Social Research, Ahmedabad, Vol.44, No.2, July- Dec. 2014.
5. Kadam, M. M., Rathod, V. J., & Phalke, S. H. *'Growth and performance of horticulture in India'*. International Journal of Commerce and Business Management, Vol.8 Issue (2), Oct. 2015, Pp 207–217.
6. Nabi, Tawheed & Bagalkoti, ST, *'Growth trends of Horticulture Crops in India'*, International Journal of Multidisciplinary Research & Development, Vol. 4, Issue 3, March 2017, Pp- 158-164.
7. Ramesh, G. B., Lokesha, H., Deshmanya, et., al, *'Growth trends in Export and Import of Horticultural Crops from India and Karnataka: An Economic Analysis'*. Economic Affairs, 62(3), Pp 367-371
8. Jha, Girish. K., Suresh, A., Punera, B., & Supriya, P., *'Growth of Horticulture Sector in India: Trends and Prospects'*, Indian Journal of Agricultural Sciences, 89(2): 314-21 Feb. 2019, pp. 146-153.
9. सक्सेना ममता एवं अन्य, 'एक नजर में बागवानी साँख्यिकी-2018', बागवानी साँख्यिकी अनुभाग, कृषि विभाग सहकारिता तथा किसान कल्याण, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 138-140; एवं वार्षिक रिपोर्ट 2019-20 (https://agricoop.nic.in/sites/default/files/Horticulture%20Statistics%20at%20a%20Glance-2018.pdf)
10. वही, नोटः : द्वितीय अग्रिम अनुमान/पूर्वानुमान
11. तालिका 2 के आधार पर एवं सक्सेना ममता, पूर्वोक्त, पृ. 138-140 तथा वार्षिक रिपोर्ट 2019-2020 (https://agricoop.nic.in/sites/default/files/Horticulture%20Statistics%20at%20a%20Glance-2018.pdf)
12. सक्सेना ममता, पूर्वोक्त, पृ. 138-140 एवं वार्षिक रिपोर्ट 2019-2020
13. तालिका 4 के आधार पर एवं ममता सक्सेना, पूर्वोक्त, पृ. 138-140, तथा वार्षिक रिपोर्ट 2019-2020
14. तालिका 2 के आधार पर साँख्यकी विधि के माध्यम से पूर्वानुमान
15. Horticulture Statistics at a Glance-2018. द्वितीय अग्रिम अनुमान, आकलित मान

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

धर्मशाला में बौद्ध अर्थव्यवस्था के माडल की खोज : एक मानवविज्ञान परिप्रेक्ष्य

❑ राज कुमार सिंह
❖ डॉ. मीताश्री श्रीवास्तव

सूचक शब्द : मॉडल, बौद्ध अर्थशास्त्र, बौद्ध अर्थव्यवस्था, बौद्ध नैतिकता, तिब्बती, सतत विकास।

मॉडल का उपयोग वास्तविकताओं को चित्रित करने के लिए किया जाता है। ऐसा ही एक मॉडल 'बौद्ध अर्थशास्त्र' का है जिसे अर्थशास्त्री ई. एफ. शूमाकर ने अपनी पुस्तक 'स्मॉल इज ब्यूटीफुल'[1] में प्रचारित किया था। वर्तमान शोध अध्ययन का उद्देश्य भारत के मैक्लोडगंज, धर्मशाला में सबसे बड़ी तिब्बती शरणार्थी बस्ती के संदर्भ में बौद्ध नैतिकता और बौद्ध अर्थव्यवस्था के सिद्धांत के प्रकाश में बौद्ध अर्थशास्त्र मॉडल को फिर से देखना है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि कैसे तिब्बती शरणार्थी समुदाय दुनिया के सबसे समृद्ध शरणार्थी समुदायों के रूप में स्वयं को बनाए रखने के लिए अपनी अर्थव्यवस्था का आयोजन करते हैं। निष्कर्षों से पता चलता है कि मॉडल को अक्सर आलोचना के अधीन किया जाता है क्योंकि वे या तो अनुसंधान उपकरण या शोध वस्तुएं होती हैं जो एक जातीयता का उपयोग करती हैं जब वे सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए मूल निवासी के साथ बातचीत करते हैं। मॉडल के मौजूदा समालोचना में अंतः स्थापित जैसे सवाल हैं कि इन मॉडलों को कौन फ्रेम करता है? ये मॉडल कैसे काम करते हैं? ये मॉडल कैसे बदलते हैं? आदि हमेशा कुछ हद तक प्रासंगिकता है जो मॉडल की पकड़ है। निष्कर्षों से पता चलता है कि पूंजीवादी प्रवृत्ति बौद्ध धर्म को एक ब्रांड के रूप में बढ़ावा देती है जो बौद्ध नैतिकता के अर्थ के संशोधित संस्करण पर आधारित है और बौद्ध नैतिकता से धर्मनिरपेक्ष नैतिकता की ओर एक बदलाव है जो सतत विकास में योगदान कर सकता है। विशेष रूप से, मॉडल को उनकी सटीकता के लिए नहीं बल्कि अलग-अलग संदर्भों के अनुरूप उनकी परिवर्तनकारी शक्ति के लिए आंका जाना चाहिए।

प्रस्तुत शोध पत्र धर्मशाला के मैकलोडगंज में तिब्बती शरणार्थियों के सामाजिक-आर्थिक जीवन के संगठन में एक व्यावहारिक मॉडल के रूप में बौद्ध अर्थव्यवस्था की भूमिका का तथ्यान्वेषण करता है। पूर्वी धर्म के रूप में बौद्ध धर्म अहिंसा और सार्वभौमिक भाईचारा (यूनिवर्सल ब्रदरहुड) की अवधारणा में विश्वास करता है। बौद्ध धर्म की पश्चिमी धारणाओं ने बौद्ध आचार को आर्थिक गतिविधि के साथ गैर-जुड़ाव को घेरने के लिए माना। बौद्धों को अक्सर आध्यात्मिकता की तलाश में भौतिक दुनिया को त्यागने के रूप में चित्रित किया जाता है। किसी अन्य धर्म की तरह बौद्ध धर्म भी बौद्ध धर्म का अभ्यास करने वाले लोगों के जीवन के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में अंतर्निहित है। बौद्ध भिक्षु के लिए भौतिक संसार से विरक्त हो जाना, उसके पास एक सशक्त आर्थिक आधार होना चाहिए जिससे वह जीविका प्राप्त करता है। प्रस्तुत शोध व्यापक प्रश्न का उत्तर देता है कि क्या बौद्ध नैतिकता का सिद्धांत भारत के धर्मशाला, मैक्लोडगंज में तिब्बती शरणार्थी समुदायों के आर्थिक जीवन में योगदान देता है?

महायान परंपरा पर नृशंस रूप से कम ध्यान दिया गया था और नृवंशविज्ञानियों द्वारा शुरू में इसे कम खोजा गया था। डेविड. एन. गेलनर ने अपनी पुस्तक 'द एंथ्रोपोलॉजी ऑफ हिन्दुइज़्म एण्ड बौद्धइज़्म' में थेरवाद बौद्ध धर्म पर अधिक मानवशास्त्रीय कार्यों के विभिन्न कारणों का वर्णन किया है। डेविड. एन. गेलनर द्वारा उद्धृत कारण थेरवाद बौद्ध धर्म के अनुवादित ग्रंथों की आसान उपलब्धता हैं। अंग्रेजी भाषा और कई स्थानीय वेरिएंट्स की उपस्थिति से शास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर विविध तनाव पड़ा है। इसके अलावा, महायान देशों में राजनीतिक परिस्थितियों का मानवशास्त्रियों द्वारा गहन अध्ययन किया गया है। गेलनर ने नेपाल के नृवंशविज्ञान संबंधी अध्ययनों में धर्म के अध्ययन के लिए वेबर दृष्टिकोण को लागू किया।[2]

धर्म और अर्थव्यवस्था से संबंधित, समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में आर्थिक, नैतिकता और धर्म के बीच के संबंध

❑ शोध अध्येता, मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली)

का पता लगाया। उन्होंने देखा कि अधिकांश व्यापारिक नेता, कुशल श्रमिक, व्यावसायिक कर्मचारी और विभिन्न वित्तीय राजधानियों के मालिक प्रोटेस्टेंट थे। उन्हें पता चला कि प्रदर्शनकारी नैतिकता यूरोप में पूंजीवाद को नियंत्रित कर रही थी। पूंजीवाद जो कि तर्कसंगतता के उच्चतम स्तर का एक उत्पाद था, का उपयोग धर्म, विज्ञान, कला, राजनीति और प्रशासन में परिवर्तन का विश्लेषण करने के लिए किया जा सकता है। प्रोटेस्टेंटों के धार्मिक विश्वास में विद्यमान तर्कसंगतता ने उनके कब्जे के विकल्पों को प्रभावित किया जो ज्यादातर पूंजीवादी संस्थान से संबंधित पाए गए थे।[3] मॅकरै ने यह भी सुझाव दिया कि वेबर की विरोधात्मक नैतिकता संभवतः एक आध्यात्मिक वास्तविकता थी जिसने देश की अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती विकास दर को भी निर्धारित किया था जो कि विरोधात्मक नैतिकता से बहुत दूर थे।[4]

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तकों 'द रिलिजन ऑफ इंडियाः द सोशियोलॉजी ऑफ हिंदूइज़्म एंड बुद्धिइज़्म' और ''दि कनफ्यूसियनिज्म एंड ताओइजम'' में यह व्याख्या की एशिया के आर्थिक रूप से कम विकसित होने के कारण यहाँ मिलने वाले धर्म जैसे बौद्ध, हिंदू, कन्यूशीवाद और ताओवाद में उस नैतिकता की कमी है जो पूंजीवाद और भौतिकवाद को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। पद्मसिरी डी सिल्वा जैसे कुछ विद्वानों ने बौद्ध धर्म के प्राचीन रूप पर ध्यान केंद्रित करने के लिए और उससे बीसवीं सदी के व्यवहार के परिणामों को निष्कर्षित करने के वेबर की आलोचना की। पद्मसिरी डी सिल्वा वेबर के विरोध में तर्क देते हैं कि बौद्ध धर्म दुनिया और सांसारिक उत्पाद का अवमूल्यन करता है। सिल्वा के अनुसार 'बौद्ध धर्म जीवन में सामाजिक नैतिकता को बढ़ावा देता है जिसकी समाज में सकारात्मक भूमिका है'। बौद्ध नैतिकता आम लोगों की आर्थिक गतिविधियाँ के द्वारा सामग्री और धन के संचय में विश्वास नहीं करती थीं बल्कि धन और सामग्री के समग्र विभाजन में विश्वास करती थी।[7]

साहित्य समीक्षा

बौद्ध आचार : ऐतिहासिक रूप से, एशिया में बौद्ध मठ बड़े आर्थिक केंद्र थे जो क्षेत्रीय व्यापार मार्गों पर केंद्रीय स्थान रखते थे। जैसे अतीत में रेशम मार्ग (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व -18 वीं शताब्दी) का आर्थिक और बौद्ध दोनों ही महत्व था। भिक्षु और मठ आर्थिक गतिविधियों में सम्मिलित थे और जिन्होंने समाज में एक बड़ी भूमिका निभाई। बौद्ध भिक्षुओं ने समाजों को विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं को बढ़ावा दिया। बौद्ध धर्म के साथ आर्थिक जुड़ाव की इन सभी धारणाओं ने भौतिक दुनिया को त्यागने की बौद्ध नैतिकता को चुनौती दी है, लेकिन ये धारणाएं भी पुष्टि करती हैं कि इतिहास में हर समय बौद्ध धर्म अर्थव्यवस्था के बारे में विचारों के साथ जुड़ा हुआ था।[8] बौद्ध नैतिकता के सहपाठियों द्वारा निर्देशित हैं चार महान सत्य और आठ पथ महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश हैं जो बुद्ध द्वारा यह समझने के लिए निर्धारित किए जाते हैं कि कैसे घटनात्मक दुनिया का अस्तित्व है और संचालित होती है।

बौद्ध अर्थव्यवस्था : बौद्ध अर्थव्यवस्था एक पुण्य-आधारित अर्थव्यवस्था है, जिसका मानना है कि प्रकृति की अपनी सीमाएँ हैं और प्रकृति का भौतिक उपभोग एक सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए। व्यक्ति और समाज को इस तरह से उपभोग करना चाहिए कि कोई भी अपनी मूल भौतिक आवश्यकताओं से वंचित न रहे। समाज और व्यक्ति की भलाई बौद्ध अर्थव्यवस्था में विकास का आधार है। बौद्ध अर्थव्यवस्था लोगों को एक सार्थक जीवन जीने और एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करने के बजाय अपने आर्थिक प्रयासों में एक दूसरे के पूरक के रूप में विश्वास करती है। बौद्ध अर्थव्यवस्था के अनुसार समाज के सभी संगठनों को राष्ट्र और उसके नागरिकों के लिए एक समान दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए धन का अधिग्रहण, आधिपत्य और लाभ होना चाहिए। बौद्ध नैतिकता के अनुसार धन का कोई अर्थ नहीं है यदि वह पूरे समाज को लाभ नहीं पहुंचाता है।[9]

बौद्ध अर्थशास्त्र : बौद्ध अर्थशास्त्र एक अवधारणा के रूप में पश्चिमी अर्थशास्त्रियों और बौद्ध विचारकों द्वारा विकसित किया गया था जो बौद्ध नैतिकता और मूल्यों से प्रेरित था। बौद्ध अर्थशास्त्र का उपयोग एक आर्थिक मॉडल के रूप में किया गया था जो बर्मा में मौजूद था और ब्रिटिश अर्थशास्त्री ई.एफ. शूमाकर द्वारा अध्ययन किया गया था जो बर्मा में एक आर्थिक सलाहकार के रूप में काम कर रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि पश्चिमी आधुनिक अर्थशास्त्र बर्मा के लिए अच्छी तरह से अनुकूल नहीं है क्योंकि यह एक बौद्ध देश है। बौद्ध शिक्षण ने शूमाकर को बुद्ध-नाम या बौद्ध अर्थशास्त्र के प्रवचन को विकसित करने के लिए प्रेरित किया। अपनी पुस्तक

'स्मॉल इज ब्यूटीफुल' में शूमाकर बताते हैं कि बर्मा में बौद्ध अर्थशास्त्र कैसे काम करता है और यह पूरी दुनिया की समस्याओं के लिए एक विकल्प कैसे प्रदान कर सकता है।[10] यह खुशी, शांति और स्थिरता प्राप्त करने के लिए मानव की निस्वार्थ सेवा में विश्वास करता है। शूमाकर कहते हैं कि बौद्ध अर्थशास्त्र की मौलिक नैतिकता, सादगी और अहिंसा है। बौद्ध नैतिकता न्यूनतम संसाधनों के उपयोग द्वारा उच्च मानवीय संतुष्टि प्राप्त करने की अवधारणा में विश्वास करती है। आर्थिक जीवन के निर्माण का सबसे विवेकपूर्ण तरीका माल और वस्तुओं के उत्पादन के लिए क्षेत्रीय संसाधनों का उपयोग है। मानवीय जरूरतों को पूरा करने के लिए अक्षय संसाधनों का यथासंभव उपयोग किया जाना चाहिए। गैर-नवीकरणीय स्रोतों का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हों।

शूमाकर की बौद्ध अर्थशास्त्र की धारणा पश्चिम में विशेष रूप से उन लोगों में लोकप्रिय हो गई जो पर्यावरणीय कारणों से काम कर रहे थे। इसने उन्हें प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और मानवीय आवश्यकताओं के निर्वाह के लिए एक मॉडल प्रदान किया। बाद में पश्चिमी लोगों द्वारा यह अनुभव किया गया कि बौद्ध अर्थशास्त्र न केवल बौद्ध देशों के लिए बल्कि गैर-बौद्ध देशों के लिए भी प्रासंगिक है। यह अति-व्यय, प्रकृति के विनाश और युद्ध की समस्याओं को हल करने में मदद कर सकता है।[11]

बौद्ध अर्थशास्त्र के संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण कार्य जिसका उल्लेख किया जाना चाहिए, वह है थाई बौद्ध भिक्षु और दार्शनिक वेन पी.ए. पयुट्टो उन्होंने बौद्ध अर्थशास्त्र में एक महत्वपूर्ण पहलू का योगदान दिया। अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट इकोनॉमिक्स : ए मिडिल वे फॉर द मार्केट प्लेस' में उन्होंने दो अलग-अलग प्रकार की चाहतों पर प्रकाश डाला तन्हा सुख की वस्तुओं और चंदा की इच्छा भलाई की इच्छा। तनहा अज्ञान पर आधारित है जबकि चंदा ज्ञान पर आधारित है। वेन प्यूटो ने जोर देकर कहा कि आर्थिक गतिविधि एक अच्छे और महान जीवन का साधन होनी चाहिए। वह बौद्ध अर्थशास्त्र के मूल उद्देश्यों को संक्षेप में प्रस्तुत करता है। प्रामाणिक कल्याण की प्राप्ति और स्वयं को या दूसरों को नुकसान न पहुंचाना।[12]

एक अन्य विद्वान, शिनची इनौए, एक जापानी अर्थशास्त्री और बौद्ध विचारक का दावा है कि किसी कार्य को करने की प्रेरणा समाज और व्यक्ति को प्रदान किए जाने वाले लाभ होनी चाहिए। ऐसा काम जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए नैतिक और लाभदायक हो, उसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अपनी पुस्तक 'पुटिंग बुद्धिइज्म टू वर्क : ए न्यू एप्रोच टू मैनेजमेंट एण्ड बिजनेस' में इनौए बताते हैं कि बौद्ध अर्थशास्त्र मुख्य लक्ष्य के रूप में लाभ होने में विश्वास नहीं करता है। वहाँ प्रधान उद्देश्य समाज की व्यापक अर्थों में सेवा करना है। इनौए ने दावा किया है कि मानव के जीविका के लिए अन्य गैर-मानव प्राणियों का जीवन लेना सम्मिलित है, हम इसे रोक नहीं सकते हैं लेकिन हम अपनी इच्छाओं को कम या सीमित करके इसे सीमित कर सकते हैं। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि उत्पादन और खपत पृथ्वी के अनुकूल होना चाहिए।[13]

पश्चिमी अर्थशास्त्र और बौद्ध अर्थशास्त्र के बीच तुलना : पश्चिमी अर्थशास्त्र उत्पादकता, उपभोग और लाभ के अधिकतमकरण पर आधारित है। यह उन गतिविधियों को बढ़ावा देता है जो माल की खपत या सेवाओं के उपयोग से जुड़ी होती हैं। कोई भी आर्थिक परियोजना तभी सफल मानी जाती है जब वह संस्था और व्यक्ति के लिए लाभ कमाती है। पश्चिमी अर्थशास्त्र स्व-केंद्रित है और नई इच्छाओं के निर्माण में विश्वास करता है और फिर उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए काम करता है। आधुनिक पश्चिमी अर्थशास्त्र का उद्देश्य उन बाजारों को पेश करना है जहां सामाजिक समस्या के समाधान की आवश्यकता है। एक इकाई के आर्थिक मूल्य का उत्पादन में योगदान और समाज में इसकी मांग के माध्यम से किया जाता है। पश्चिमी अर्थव्यवस्था में बाजार एक ऐसे संस्थान के रूप में कार्य करता है जो एक लचीले और उत्पादक तरीके से सामान और सेवाएं प्रदान करता है। पूरे बाजार तंत्र को इसकी क्रय शक्ति के संदर्भ में दर्शाया गया है और यह विभिन्न हितधारकों द्वारा संचालित है। कार्ल पोलेनी ने बाजारवाद की पूरी प्रक्रिया को 'द ग्रेट ट्रांसफॉर्मेशन' के रूप में समझाया, जिसके द्वारा समाज के क्षेत्र बाजार तंत्र के अधीन हो गए। कार्ल पोलानी के अनुसार, उद्योगों और बाजारों को एम्बेडेड अर्थव्यवस्थाओं का एक रूप मिला, जो लाभ के अधिकतमकरण में विश्वास करता है और इस एम्बेडेड अर्थव्यवस्था को होमो इकोनोमस के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता है।[14]

यह माना जाता है कि पश्चिमी अर्थशास्त्र कुछ मूलभूत

सिद्धांतों की विशेषता है

1. लाभ का अधिकतमकरण
2. इच्छाओं को उठाना
3. नए बाजार खोलना
4. दुनिया का महत्वपूर्ण उपयोग
5. व्यक्तिगत आधारित नैतिकता

पश्चिमी अर्थशास्त्र के विपरीत, बौद्ध अर्थशास्त्र जीविका के लिए संसाधनों के न्यूनतम उपयोग में विश्वास करता है। धन का संचय लालच के रूप में माना जाता है और यह पाप के बराबर है। धन का उपयोग समाज के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। बौद्ध अर्थव्यवस्था, बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत पर आधारित है अर्थात सभी के कष्टों को कम करने के लिए। बौद्ध अर्थशास्त्र मानव की इच्छाओं को सरल बनाने में विश्वास करता है। कम इच्छाएं न केवल व्यक्ति को बल्कि समाज और प्रकृति को भी बहुत लाभ प्रदान कर सकती हैं। बौद्ध मान्यताएँ न्यूनतम सामग्री आराम और मध्यम उपभोग की सलाह देती हैं। बौद्ध धर्म ध्यान, प्रतिबिंब और विश्लेषण के माध्यम से किसी की पसंद को बदलने में विश्वास करता है।[15]

बौद्ध अर्थशास्त्रियों का उद्देश्य न्यूनतम उपभोग के साथ अधिकतम कल्याण प्राप्त करना है। बौद्ध आर्थिक मॉडल सहयोग, करुणा और दया के सिद्धांतों पर आधारित हैं। बौद्ध आर्थिक मॉडल एक संतुलित विकास और मानव आवश्यकताओं को नैतिकता के माध्यम से परिभाषित करने पर ध्यान केंद्रित करता है।

अध्ययन और अनुसंधान प्रश्न का राष्ट्रीयकरण : मॉडल हमेशा मानवविज्ञानी के लिए एक दिलचस्प क्षेत्र रहे हैं। मॉडल जब सामाजिक वास्तविकताओं को समझने के लिए सरलता बिंदु के रूप में उपयोग किए जाते हैं, तो उपयोगी कार्यप्रणाली उपकरण के रूप में काम कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मानवशास्त्रीय प्रकाश में 'बौद्ध अर्थशास्त्र मॉडल' (जैसा कि अर्थशास्त्री ई.एफ. शूमाकर ने अपनी पुस्तक स्मॉल इज ब्यूटीफुल में लिखा है) को फिर से प्रकाशित करना है। पहले, एक मॉडल के रूप में बौद्ध अर्थशास्त्र ने शूमाकर को बर्मा में स्थायी विकास के मार्ग के बारे में बौद्ध धर्म के मध्य मार्ग के दृष्टिकोण के बारे में कुछ सामान्यीकरणों को बनाने में मदद की। वर्तमान अध्ययन इस अर्थ में अभिनव है कि यह न केवल बौद्ध अर्थशास्त्र के मॉडल को भारत में तिब्बती शरणार्थियों के जीवन से जोड़ता है, बल्कि इसे पुनः वैचारिक रूप से एक कदम आगे बढ़ाता है, यह मानते हुए कि बौद्ध अर्थशास्त्र बौद्ध से निकटता से संबंधित है। बौद्ध अर्थशास्त्र को पहले मानवशास्त्रीय अर्थ के स्थान पर एक सख्त आर्थिक अर्थ में बहुत खोजा गया है और आर्थिक नृविज्ञान के जड़वादी और औपचारिकवादी डोमेन के अंदर निहित किसी भी मानवशास्त्रीय स्पष्टीकरण पर आर्थिक विचारों को प्राथमिकता दी थी। वर्तमान अध्ययन मैकलोडगंज, धर्मशाला में तिब्बती शरणार्थी समुदायों के आर्थिक जीवन से संबंधित अपने तर्कों को बनाए रखने और उनके सतत विकास के पहलुओं पर विचार करने के लिए सामाजिक मानवशास्त्रीय सैद्धांतिक अधिरचना का उपयोग करता है। शोध अध्ययन यह जांचने के लिए कार्य करता है कि बौद्ध अर्थव्यवस्था तिब्बती के सतत विकास में योगदान करती है।

अनुसंधान अध्ययन का उद्देश्य : शोध अध्ययन का उद्देश्य मैकलोडगंज, धर्मशाला के विकास में बौद्ध अर्थव्यवस्था की भूमिका का पता लगाना है जो भारत में सबसे बड़ी तिब्बती शरणार्थी बस्ती के रूप में है। अध्ययन के उद्देश्य हैं :

1. मैक्लोडगंज, धर्मशाला में तिब्बती शरणार्थी के आर्थिक जीवन का पता लगाने के लिए।
2. मैक्लोडगंज, धर्मशाला में तिब्बती शरणार्थियों पर वैश्वीकरण, पर्यटन और मीडिया के प्रभाव की जांच करना।
3. तिब्बती प्रवासी लिंक के केंद्र के रूप में और पश्चिमी धर्मान्तरित लोगों के घरों के रूप में तिब्बती मठों की भूमिका जानने के लिए।

अध्ययन की समष्टि एवं शोध क्षेत्र : अध्ययन की समष्टि में केवल भौगोलिक क्षेत्र सम्मिलित नहीं है, लेकिन इसमें सभी अलग-अलग तत्व सम्मिलित हैं जो अनुसंधान अध्ययन में सम्मिलित करने के योग्य हैं। अध्ययन की समष्टि मैकलोडगंज, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश), भारत है। मैकलोडगंज का नाम सर डोनाल्ड फ्रेल मैकलियोड से लिया गया है जो पंजाब के लेटिनेंट गवर्नर थे। मैकलोडगंज धर्मशाला में स्थित एक छोटा सा हिल स्टेशन है जो कांगड़ा घाटी का एक शहर है और हिमाचल प्रदेश की शीतकालीन राजधानी भी है। धर्मशाला हिमाचल प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित है और इसे ऊपरी और निचले धर्मशाला में विभाजित किया गया है। ऊपरी धर्मशाला में

मैकलोडगंज, भागसूनाथ और धर्मकोट जैसे छोटे शहर सम्मिलित हैं, जबकि निचले धर्मशाला में नड्डी, फोर्सिथगंज, कोतवाली बाजार, कचहरी अडा, डारी, रामनगर, सिद्धपुर, और सिदबारी जैसे शहर सम्मिलित हैं। धर्मशाला, कांगड़ा के ऐतिहासिक मंदिर, चामुंडा देवी, ज्वाला देवी आदि के लिए एक बेस स्टेशन के रूप में कार्य करता है। धर्मशाला में लगभग 10,000 पंजीकृत तिब्बती शरणार्थी हैं जो ऊपरी धर्मशाला में बसे हुए हैं।

एक स्थान के रूप में मैकलोडगंज अपने आप में कई पहचान रखता है। यह दुनिया भर के बौद्धों का तीर्थस्थल है क्योंकि यह परम पावन दलाई दामा का निवास स्थान है जो तिब्बतियों के मुख्य धर्म गुरु और नेता हैं। विदेशियों के लिए यह एक ऐसा स्थान है जहाँ आध्यात्मिकता आधुनिकता से मिलती है और धर्म वैश्वीकरण से मिलता है। पर्यटकों को एक ही जगह पर शांति और आनंद मिलता है। प्राकृतिक सुंदरता, स्थानीय मूल निवासी और तिब्बतियों का मिश्रण मैकलोडगंज में उनके अवकाश में विविधता लाता है। वे स्वयं को तिब्बती एन.जी.ओ. के साथ सम्मिलित करके विभिन्न स्वयंसेवक गतिविधियाँ करने में सक्षम हैं। मैकलोडगंज एक ऐसी जगह है जहाँ परम्पराओं और संस्कृति को शरणार्थी द्वारा संरक्षित किया जाता है और धर्म, परंपरा और संस्कृति को आर्थिक लाभ के लिए एक ब्रांड के रूप में उपयोग किया जाता है। इसमें दुकानें, कैफे, होटल, योग केंद्र और मठ सम्मिलित हैं। तिब्बती संस्कृति, व्यंजनों की उपस्थिति, कपड़े और मठ मैक्लोडगंज को तिब्बत का विकल्प बनाते हैं।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध के लिए प्रारंभिक फील्डवर्क एम. फिल पाठ्यक्रम के एक भाग के रूप में 2017 में तीन महीने की अवधि के लिए आयोजित किया गया था। हालांकि, 2019 में पीएच.डी. के दौरान डेटा एकत्र करने के लिए उसी क्षेत्र में एक पायलट अध्ययन भी किया गया था। प्रस्तुत शोध पत्र दोनों क्षेत्रों से एकत्र किए गए डेटा का एक समामेलन है। तिब्बती विश्वदृष्टि और बौद्ध अर्थव्यवस्था के साथ उनकी बातचीत को समझने के लिए प्रतिभागी अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची और अनौपचारिक बातचीत को प्राथमिक डेटा एकत्र करने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग करने का निर्णय लिया गया, जबकि केंद्रीय तिब्बती प्रशासन की विभिन्न पुस्तकों, लेखों और वेबसाइट से माध्यमिक डेटा एकत्र किया गया था। **अनुसंधान** के अपने पहले दिन के दौरान, शोधार्थी ने सोमवार को तिब्बती निपटान अधिकारी के साथ बैठक के साथ तिब्बती शोध क्षेत्र में अपनी प्रविष्टि की। तिब्बती शरण कार्यालय में गया ताकि शोध की अनुमति ले सके और तिब्बती शरणार्थियों के सामाजिक-जनसांख्यिकीय प्रोफाइल के बारे में उनका साक्षात्कार कर सके। उनके कार्यालय पहुँचने पर शोधार्थी ने उन्हें अपनी यात्रा के उद्देश्य के बारे में और अपने शोध क्षेत्र के बारे में भी बताया और मैकलोडगंज में शोध करने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग से जारी किए गए अपने पहचान पत्र और सिफारिश पत्र को प्रदर्शित किया। अपने फील्डवर्क के दौरान, शोधार्थी ने कुल पचास उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया।

अनुसंधान समष्टि का नमूना : पॉल जे। लैराकस द्वारा सर्वेक्षण अनुसंधान विधि के विश्वकोश में दी गई एक समष्टि की परिभाषा है : "समष्टि में सभी सर्वेक्षण तत्व सम्मिलित हैं जो अनुसंधान अध्ययन में सम्मिलित होने के योग्य हैं। एक विशेष अध्ययन के लिए समष्टि की सटीक परिभाषा अनुसंधान प्रश्न द्वारा निर्धारित की जाती है, जो निर्दिष्ट करती है कि कौन या कौन रुचि रखता है। समष्टि व्यक्तियों, लोगों, संगठनों या वस्तुओं का समूह हो सकता है।"[16] प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए नमूना (सैंपल) फ्रेम में तिब्बती और गैर-तिब्बती दोनों विभिन्न आर्थिक केंद्रों में आर्थिक गतिविधियों जैसे होटल और पर्यटन उद्योग, औषधीय उद्योग और विभिन्न मठ सम्मिलित हैं। यह आर्थिक केंद्र और मठ मैकलोडगंज के विकास के प्रमुख कारणों में से एक हैं और दुनिया भर के पर्यटकों और भक्तों को आकर्षित करते हैं। तिब्बती और गैर-तिब्बती दोनों को पर्यटकों और भक्तों की संख्या में वृद्धि लाभ मिल रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन के संचालन के लिए एक नमूना आकार एकत्र किया गया था। एक नमूना जनसंख्या का एक सबसेट है जो संपूर्ण जनसंख्या या समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। बड़े जनसंख्या आकार या समष्टि के मामले में, पूरे का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक छोटा सा नमूना निकाला जाता है इसके विपरीत यदि जनसंख्या का आकार बहुत छोटा है तो पूरी जनसंख्या का अध्ययन किया जाना चाहिए। वर्तमान अध्ययन में, गैर-संभाव्य उद्देश्यपूर्ण नमूने को डेटा एकत्र करने के लिए सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार का नमूना विभिन्न श्रेणियों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है और उत्तरदाताओं

को जांच के अंतर्गत घटना में योगदान करने के लिए प्रासंगिक पाया गया।

प्रस्तुत शोध में उन्ही लोगों को सम्मिलित किया गया था जिनका रोजी रोटी का सम्बन्ध बुद्धिस्ट अर्थव्यवस्था से जुड़ा हुआ था। तिब्बती और गैर-तिब्बती जिसमें स्थानीय हिमाचली और कुछ बाहरी राज्यों से आये हुए लोग सम्मिलित थे उनका साक्षात्कार लिया गया था और उनसे ये जानने का प्रयास किया गया था कि उनके रोजगार में बुद्धिस्ट अर्थव्यस्था का क्या प्रभाव है।

अनुसंधान प्रतिभागियों की श्रेणी : अनुसंधान प्रतिभागियों को गैर-संभाव्य स्तरीकृत (उद्देश्यपूर्ण) नमूने के आधार पर अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित किया गया था जिसमें भिक्षु, तीर्थ-पर्यटक, एन.जी.ओ. कर्मियों, विभिन्न उद्योगों के हितधारकों और केंद्रीय तिब्बती प्रशासन के कर्मियों। अधिकांश तिब्बती भिक्षु, एन.जी.ओ. विभिन्न उद्योगों के कर्मियों, कर्मचारियों का एक से अधिक बार साक्षात्कार लिया गया, क्योंकि उनके पास काम करने का एक स्थायी स्थान था, जबकि पर्यटकों के साक्षात्कार के मामले में केवल एक बार आयोजित किया गया था। पर्यटकों के साक्षात्कार टैक्सी ड्राइवरों की मदद से एकत्र किए गए थे जो गाइड और ड्राइवर दोनों के रूप में काम करते हैं।

प्रतिभागी	संख्या	प्रतिशत
भिक्षु (तिब्बती और गैर-तिब्बती)	7	14
पर्यटक (राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय)	4	12
गैर सरकारी संगठन कर्मी	5	10
विभिन्न उद्योगों (औषधीय, कालीन और हस्तशिल्प उद्योग) से कार्मिक	14	28
होटल एवं पर्यटन उद्योग के कर्मचारी	10	20
केंद्रीय तिब्बती प्रशासन कर्मचारी	7	14
योग शिक्षक	1	2
टैक्सी ड्राइवर	2	4
कुल	50	100

अनुसंधान प्रतिभागियों को उनकी राष्ट्रीयता, लिंग, शैक्षिक प्रोफाइल, रोजगार प्रोफाइल के आधार पर आगे वर्गीकृत किया गया था। भिक्षुओं को उनकी जातीयता के आधार पर वर्गीकृत किया गया था अर्थात तिब्बती और गैर-तिब्बती। सात भिक्षुओं में से, चार लोग तिब्बती जातीयता के थे और मैकलोडगंज में मौजूद विभिन्न तिब्बती मठों का हिस्सा थे, जबकि तीन में से दो भारतीय थे और एक ताल्विया मूल के थे। पांच प्रमुख एनजीओ के निदेशकों का साक्षात्कार लिया गया था और उनमें से चार तिब्बती शरणार्थी थे, जबकि उनमें से एक ने भारतीय नागरिकता ले ली थी। उद्योगों के मामले में, कारखानों के प्रबंधकों और श्रमिकों का साक्षात्कार लिया गया। विभिन्न आउटलेट्स के प्रबंधक जो इन उद्योगों का हिस्सा थे, उनके ग्राहकों के बारे में जानने के लिए उनका साक्षात्कार भी लिया गया था।

अनुसंधान प्रतिभागियों के लिंग : महिला शोध प्रतिभागियों का प्रतिशत उनके पुरुष समकक्षों की तुलना में कम है। शोधार्थी महिला भिक्षुओं के साक्षात्कार आयोजित करने में सक्षम नहीं था क्योंकि यह एक आदमी के लिए उनके नन में प्रवेश करने के लिए मना किया गया था। हालाँकि, महिला भिक्षुओं से उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए शोधार्थी ने एक महिला भिक्षु का एक साक्षात्कार आयोजित किया, जो लातवियाई मूल की थी और उसने 18 साल पहले बौद्ध धर्म में समन्वय किया था। अधिकांश तिब्बती महिलाएँ स्थानीय गैर सरकारी संगठन, केंद्रीय तिब्बती प्रशासन के लिए काम करती हैं या औषधीय और पर्यटन उद्योग में सम्मिलित होती हैं।

	संख्या	प्रतिशत
पुरुष	37	74
महिला	13	26
अन्य	–	–
कुल	50	100

अनुसंधान प्रतिभागियों की आयु : प्रस्तुत शोध के लिए जिन लोगों का साक्षात्कार लिया, उनमें से अधिकांश 21-60 के बीच थे और उनमें से सभी नियोजित थे या मठवासी समुदाय का हिस्सा थे।

	संख्या	प्रतिशत
20 वर्ष की आयु से कम	0	0
21-30	26	52
31-40	13	26
41-50	10	20
51-60	1	2
60 से ऊपर	0	0
कुल	50	100

प्रतिभागियों की राष्ट्रीयता : अनुसंधान प्रतिभागियों को उनकी राष्ट्रीयता के आधार पर वर्गीकृत किया गया था। उनमें से तीस तिब्बती शरणार्थी थे, आठ भारतीय थे।

उनमें से ज्यादातर स्थानीय हिमाचली थे और बारह विदेशी नागरिक थे जिनमें नेपाल के अंतरराष्ट्रीय पर्यटक और श्रमिक सम्मिलित थे जो कालीन और हस्तशिल्प उद्योग का हिस्सा थे।

प्रतिभागियों की रोजगार प्रोफाइल (तिब्बती शरणार्थी और स्थानीय हिमाचली)

रोजगार/उद्योग	संख्या	प्रतिशत
केंद्रीय तिब्बती प्रशासन	7	18.91
औषधीय उद्योग	7	18.91
होटल और पर्यटन उद्योग	10	27.02
हस्तशिल्प और कालीन उद्योग	7	18.91
योग शिक्षक	1	2.70
गैर सरकारी संगठन कर्मी	5	13.51
टैक्सी ड्राइवरों	2	5.40
कुल	37	100

भिक्षुओं और पर्यटकों को रोजगार के इस डेटा में सम्मिलित नहीं किया गया क्योंकि भिक्षु आमतौर पर धार्मिक प्रथाओं और अनुष्ठानों में सम्मिलित होते हैं। उन्हें मठों का सदस्य माना जाता है और आमतौर पर मठ उनके खर्चों के लिए जिम्मेदार होते हैं। पर्यटकों के मामले में वे स्थानीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख योगदानकर्ता हैं लेकिन वे अपने निर्वाह के लिए स्थानीय अर्थव्यवस्था पर निर्भर नहीं हैं। मैक्लोडगंज के गैर-सरकारी संगठन का प्रबंधन तिब्बती शरणार्थी द्वारा किया जाता है और यह तिब्बत के मुक्त आंदोलन, शिक्षा, पर्यावरण, तिब्बती राजनीतिक कैदियों और महिला सशक्तीकरण के लिए काम करता है। अधिकांश तिब्बती शरणार्थियों को केंद्रीय तिब्बती प्रशासन, मेन-त्से-खांग द्वारा नियोजित औषधीय उद्योग और हस्तशिल्प और कालीन उद्योग के द्वारा रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। तिब्बती शरणार्थी और स्थानीय हिमाचली होटल और पर्यटन उद्योग का हिस्सा हैं और पर्यटकों के मामले में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। टैक्सी ड्राइविंग व्यवसाय पूरी तरह से स्थानीय हिमाचली के स्वामित्व में है जैसा कि शोध के दौरान पता चला कि तिब्बती शरणार्थियों में से कोई भी टैक्सी ड्राइवरों के रूप में काम नहीं करता है।

अनुसंधान प्रतिभागियों की शैक्षिक स्थिति : तिब्बती भिक्षु मठवासी स्नातक थे और उन्होंने नामग्याल तांत्रिक कॉलेज, धर्मशाला में अपनी शिक्षा दी। हालांकि, टैक्सी चालक और कुछ भारतीय पर्यटक स्नातक से नीचे थे। तिब्बती शरणार्थी जो सीटीए, एनजीओ, अथवा मेन्स-त्सी-खांग के लिए काम कर रहे थे उनमें से अधिकांश स्नातक और स्नातकोत्तर थे। तिब्बती शरणार्थी, नेपाली और स्थानीय हिमाचली जो कारखाने के श्रमिकों के रूप में काम कर रहे थे, स्नातक से नीचे थे। अधिकांश तिब्बती शरणार्थी कुशल श्रमिक थे और उन्हें विभिन्न तिब्बती एन.जी.ओ. द्वारा प्रशिक्षित किया गया था, जबकि नेपालियों और भारतीय के मामले में वे अकुशल मजदूर थे। ऐसा ही हाल स्थानीय टैक्सी ड्राइवरों और कुछ भारतीय पर्यटकों का भी था, जो स्नातक से नीचे थे।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष

मैक्लोडगंज, धर्मशाला में अर्थव्यवस्था की प्रकृति और संचालन : 1960 से पहले मैकलोडगंज एक छोटा हिल स्टेशन था जो लंबे समय तक ब्रिटिश शासन के अधीन था। मैकलोडगंज के अधिकांश लोग बहुत कम जमीन वाले किसान थे, जबकि कुछ परिवार देहाती थे और कुछ दैनिक ग्रामीण के रूप में काम करते थे। कृषि प्रमुख आर्थिक गतिविधि थी और साक्षरता दर काफी कम थी। सड़क की पहुँच नहीं थी और परिवहन व्यवस्था भी अच्छी तरह से विकसित नहीं थी। मैकलोडगंज और आसपास के गांवों में लंबे समय तक लोग किसी भी तरह की स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली से रहित थे। कस्बे में एकमात्र सामान्य दुकान नवरोजी की थी, जिसका स्वामित्व नौरोजी परिवार के पास था। वे कस्बे के पहले उद्यमी थे। यह दुकान आदिवासी गद्दी द्वारा बनाए गए अचार, जाम और मक्खन बेचता है। अपने पहले के दिनों में यह दुकान मैक्लोडगंज में ब्रिटिश निवासियों के लिए शराब और पेट्रोल का स्टॉक करती थी। आज दुकान का नाम बदलकर ''नोवरोजी एंड सन'' कर दिया गया है। इस दुकान का पाँच पीढ़ी से अधिक का इतिहास रहा है। इसने एक छोटे से आदिवासी गाँव से पर्यटक हॉटस्पॉट तक मैकलोडगंज का व्यापक परिवर्तन देखा है। वर्तमान में मैकलोडगंज में अर्थव्यवस्था तिब्बती शरणार्थियों, देश के अन्य हिस्सों के पंजाबियों और सिख उद्यमियों, कश्मीर के मुस्लिम व्यापारियों और स्थानीय गद्दियों के इर्द-गिर्द घूमती है।

मैकलोडगंज की अर्थव्यवस्था तिब्बती शरणार्थी की आवश्यकताओं और मांगों के इर्द-गिर्द घूमती है क्योंकि उनका धर्म और संस्कृति मैक्लोडगंज का प्रमुख आकर्षण

है। एक शरणार्थी समुदाय के रूप में तिब्बतियों को अलग-अलग तिब्बती क्षेत्रों के आधार पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है, वे भारत आने से पहले एक समय तिब्बत में निवास कर रहे थे। उनके बीच क्षेत्रवाद बहुत स्पष्ट था और तिब्बती शरणार्थियों को इस तरह से वर्गीकृत किया गया था

खम्पा : ये लोग तिब्बत के खाम क्षेत्र के हैं और उनमें से ज्यादातर व्यापारी हैं।

अम्दो : ये लोग तिब्बत के अम्दो क्षेत्र से हैं और उनमें से अधिकांश रेस्तरां और कैफे में दैनिक मजदूरी श्रमिकों के रूप में काम करते हैं।

ल्हासा : ये लोग तिब्बत की राजधानी ल्हासा से हैं। निर्वासन में तिब्बती सरकार का प्रमुख विभाग उन पर हावी है।

स्थानीय गद्दी, पंजाबी और सिख प्रवासियों के साथ तिब्बती का सामाजिक संबंध, मुस्लिम व्यापारियों के सामंजस्य के साथ-साथ अवसर और हितों पर निर्भर करता है।

मैकलोडगंज में तिब्बती निपटान (सेटलमेंट) अधिकारी के साथ साक्षात्कार के दौरान ज्ञात हुआ कि तिब्बती शरणार्थियों की प्रमुख आजीविका की गतिविधियाँ स्वेटर बेचना, बुक स्टॉल, रेस्तरां, गेस्टहाउस, स्मारिका की दुकानें आदि हैं। उन्होंने यह भी बताया कि मैकलोडगंज में कालीन उद्योग जैसे कुछ उद्योग हैं जो कि निर्वासन में तिब्बती सरकार के वित्त विभाग द्वारा प्रबंधित हैं और तिब्बती समुदाय को रोजगार प्रदान करते हैं। तिब्बती कालीन आमतौर पर तिब्बती और विदेशी पर्यटकों द्वारा खरीदे जाते हैं। तिब्बती लोग इसे उपयोगिता के उद्देश्य से खरीदते हैं लेकिन विदेशी पर्यटक इसे कला की वस्तु के रूप में खरीदते हैं क्योंकि कालीन इस पर एक प्रतीक के रूप में बुना जाता है और उन्होंने इसे अपने घर की दीवारों पर लगा दिया।

भारत में तिब्बती समुदाय किसी भी सरकारी नौकरी के लिए तब तक योग्य नहीं है जब तक कि वे भारतीय नागरिकता नहीं लेते हैं और अपनी शरणार्थी का दर्जा नहीं छोड़ते हैं। अधिकांश तिब्बती केंद्रीय तिब्बती प्रशासन और नौकरियों और धन के लिए सी.टी.ए. से जुड़े संगठन पर निर्भर हैं। हालांकि, उनमें से कई दुकान और कुछ अन्य व्यवसायों के मालिक हैं।

तिब्बती शरणार्थियों के आर्थिक जीवन पर वैश्वीकरण का प्रभाव : मैक्लोडगंज में तिब्बतियों और अन्य स्थानीय लोगों के जीवन पर वैश्वीकरण का बहुत अधिक प्रभाव है क्योंकि इसने स्थानीय लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाया है, लेकिन साथ ही इसने प्रकृति का बहुत शोषण किया है जो देहाती समुदायों को परेशान करता है। आज, मैक्लोडगंज में शायद ही कोई चरागाह खेत बचा है, जिसके कारण गायों और बकरियों जैसे मवेशियों की संख्या में कमी आई है। अधिकांश गद्दीयों ने अपनी भेड़ों के झुंड बेच दिए हैं क्योंकि उनके पास अपने पशुओं के लिए कोई चारागाह नहीं बचा है, साथ ही सरकार ने चराई गतिविधियों पर भी प्रतिबंध लगा दिया है।

प्रारंभ में, मैक्लोडगंज धर्मशाला में कांगड़ा घाटी में स्थित एक छोटा सा हिल स्टेशन था, लेकिन मैक्लोडगंज में तिब्बती शरणार्थियों के बसने के बाद यह स्थानीय और विदेशी पर्यटकों के बीच लोकप्रिय होने लगा। तिब्बती संस्कृति एक विदेशी संस्कृति थी और अधिकांश पर्यटकों और दुनिया के लिए अपरिचित थी।

विश्लेषण : प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में, एक घटना के रूप में बौद्ध अर्थशास्त्र को प्रारम्भ में म्यांमार (बर्मा) की अर्थव्यवस्था के संदर्भ में अर्थशास्त्री ईएफ शूमाकर द्वारा परिभाषित किया गया था, हालांकि यह महत्वपूर्ण है कि इसकी प्रयोज्यता को मैक्लोडगंज में तिब्बती शरणार्थियों के प्रतिस्थापन समष्टि में देखा जा सकता है। यह तिब्बती शरणार्थी समुदायों के आर्थिक जीवन के संगठन के पैटर्न में स्पष्ट है और उनके आख्यानों का समर्थन किया जाना चाहिए। तिब्बती शरणार्थी समुदाय के आर्थिक मॉडल ''बौद्ध अर्थव्यवस्था'' का पालन एक विवादास्पद मुद्दा है और इसे एक बड़ी बहस के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि बौद्ध अर्थव्यवस्था बौद्ध नैतिकता पर आधारित है और सभी तिब्बतियों द्वारा बौद्ध नैतिकता को समान रूप से स्वीकार नहीं किया गया है। इसके अलावा, इस अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि बौद्ध अर्थव्यवस्था में 'बौद्ध' का अर्थ सामान्य बौद्ध और मठवासी बौद्धों की धारणाओं में भिन्न होता है और स्थानीय लोगों और पर्यटकों द्वारा अलग-अलग व्याख्या की जाती है जो तिब्बतियों के साथ लगातार बातचीत में पता चलता है। मैकलोडगंज में धर्म और विकास दोनों के दिलचस्प संगम की क्षमता है। धर्म अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है और अर्थव्यवस्था धर्म को प्रभावित करती है, यह सिर्फ संदर्भों और दांव की बात है। कुछ बिंदुओं पर आवाजें विलीन हो जाती हैं और शक्ति विघटित हो जाती है, अन्य

समय में शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं और आवाजें नैतिकता और अर्थव्यवस्था के अंतर्संबंध को समझने की पूरी बहसों में विलीन हो जाती हैं। आगे बढ़ने के लिए एकमात्र ठोस तर्क शायद तिब्बती शरणार्थियों के सतत विकास और मैकलोडगंज, धर्मशाला के विकास के कारण बौद्ध अर्थव्यवस्था के दावे होंगे।

निष्कर्ष : नृविज्ञान में मॉडलों का संश्लेषण एक वस्तु द्वारा पीछा किए गए मानदंडों और नियमों का प्रतिनिधित्व करता है जो वैज्ञानिक छोर का पालन करता है। मॉडल का उद्देश्य वास्तविकता, प्रतिनिधित्व और काल्पनिक के बीच मौजूद संबंधों के बारे में मूलभूत समस्या को हल करना है।[17] एक नृवंशविज्ञान मॉडल 'वास्तविकता' का प्रतिनिधित्व करता है जो विभिन्न तत्वों के साथ एक क्रमबद्ध तरीके से जुड़ा होता है जो हमें नए संघों की खोज करने में मदद करता है। हालांकि, मॉडल की मानवविज्ञान में आलोचना की गई है क्योंकि जिस तरह से मॉडल बनाए गए हैं और यह भी कि अंतर के कारण एथ्नोग्राफर और स्थानीय समुदाय द्वारा निर्मित मॉडल के बीच विस्फोट हुआ है। नृवंशविज्ञानियों द्वारा आधिकारिक कार्रवाई और डेटा विश्लेषण द्वारा स्थानीय लोगों का प्रतिनिधित्व स्थानीय समुदाय का एक काफी संरचित व्यवहार देता है। मॉडल अभी भी नृविज्ञान में प्रासंगिकता रखते हैं क्योंकि वे एक विशेष समाज की मानसिक संरचना को बहुत स्पष्ट तरीके से दर्शाते हैं। एक मॉडल हमें उन घटनाओं की विशेषताओं को अवधारणा और उजागर करने की अनुमति देता है जो हमारे लिए प्रासंगिक हैं।

मानवविज्ञानियों ने सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए विभिन्न सैद्धांतिक मॉडल का उपयोग किया है। कुछ परिचित मॉडल फंक्शनल, स्ट्रक्चरल फंक्शनल मॉडल, स्ट्रक्चरल मॉडल और ट्रांसेक्शनल मॉडल हैं। जैसा कि क्लाउड लेवी स्ट्रॉस ने सामाजिक संरचना के अपने स्पष्टीकरण में उल्लेख किया है, मॉडल मान्य तथ्यों पर आधारित होते हैं, लेकिन यह माना जाता है कि एक मेगा मॉडल में कई मिनी मॉडल सम्मिलित हो सकते हैं, मॉडल परिवर्तन के अधीन होते हैं और मॉडल दो प्रकार के होते हैं यांत्रिक और सांख्यिकीय।[18] अपने व्याख्यात्मक दृष्टिकोण में 'वास्तविकता के मॉडल' और 'वास्तविकता के लिए मॉडल' के बारे में उल्लेख किया है।[19] अंतिम सवाल यह है कि क्या मॉडल में वास्तविकता है? फ्रेड्रिक बर्थ ने उन जनरेटिव मॉडलों के बारे में उल्लेख किया है, जो अंतःक्रिया को नियंत्रित करते समय संरचना योजना के ऊपर और उसके ऊपर के महत्व को इंगित करते हैं। वह उद्यमी की अवधारणा में लाता है और 'आर्थिक' की अवधारणा से बहुत प्रेरणा लेता है, जहां आर्थिक लागत और लाभ को दर्शाता है। बाद में, एफ जी बेली ने अपने विचारों को राजनीतिक प्रणालियों के मॉडल में सम्मिलित किया। संचालन और प्रतिनिधित्ववादी मॉडल पीटर कौस द्वारा लेख में आगे रखा गया है 'ऑपरेशनल, रिप्रेजेंटेटिव और एक्सप्लानेटरी मॉडल' वास्तव में नृवंशविज्ञान के 'एटिक' और 'एमिक' परिप्रेक्ष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।[20] मॉडलों की प्रासंगिकता की यह पूरी बहस वास्तविकता को सीमित करने के इर्द-गिर्द घूमती है और वास्तविकता को एथेनोग्राफर द्वारा या वास्तविकता के साथ स्वीकार करने के रूप में यह वास्तव में क्षेत्र में मौजूद है। एक मॉडल की प्रयोज्यता उस व्यक्ति द्वारा परिभाषित की जाती है जो स्वयं घटना की प्रकृति के बजाय मॉडल को लागू करता है।

वर्तमान में अध्ययन का महत्व : प्रस्तुत अध्ययन भारत जैसे विकासशील देश में तिब्बती शरणार्थियों की अर्थव्यवस्था के लिए एक वैकल्पिक समाधान के रूप में बौद्ध अर्थव्यवस्था के आम अनुप्रयोगों को देखने के लिए एक विनम्र प्रयास के साथ शुरू हुआ, जिसका उद्देश्य अपने जातीय आधार को बनाए रखने के माध्यम से अपनी समृद्ध संस्कृति और परंपरा को संरक्षित करना है। तिब्बती शरणार्थी प्रतिस्पर्धी वैश्विक अंतरिक्ष में समान रूप से भागीदार हैं। शरणार्थी समुदाय अपनी जीविका, संस्कृति और पहचान के लिए संघर्ष करते रहते हैं। बौद्ध अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों का पालन करके प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों को मध्य मार्ग के दृष्टिकोण से प्रेरणा लेकर भविष्य की पीढ़ी के लिए संरक्षित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. Schumacher, Ernest, *'Small is Beautiful',* Blond and Briggs Publications, London, 1973.
2. N.Gellner, David. *'The Anthropology of Hinduism and Buddhism',* Oxford University Press, Oxford, 2003.
3. Weber, Max. *The Protestant Ethics and Spirit of Capitalism*. New Delhi, Routledge Publication 1905.
4. MacRae, Donald . *Weber*. Glasgow, Fontana: William Collins Sons& Co. Ltd, 1974.
5. Weber, Max. *'The Religion of India: The Sociology of Hinduism and Buddhism',* Routledge Publication, New Delhi, 1958.
6. Weber, Max, *'The Religion of China: Confucianism and Taoism',* Routledge Publication, New Delhi, 1951.
7. Silva, Padma Siri De, *'Modernisation in South Asia',* Oxford University Press, New Delhi, 1973.
8. Chakravati, Uma, *'The social Dimension of Early Buddhism'*, Oxford University Press, Delhi, 1987
9. Payutoo, P.A. *'Buddhist Economics: A Middle Way for the Market Place',* Buddhadhamma Foundation, Singapore, 1998.
10. Schumacher, Ernest, op.cit.
11. Ibid.
12. Payatoo, P.A., op.cit.
13. Inoue, Shinchi, *'Putting Buddhism to Work: A New Approach to Managament and Business',* Kodansha International Ltd, Tokyo, 1997.
14. Polanyi, Karl. *'The Great Transformation',* Farrar and Rinehart Publication, New York, 1944.
15. Zsolnai, Laszlo, *'Buddhism and Economic Development'* In: *Teaching Buddhism*, ed. by Gary D. DeAngelis and Todd Lewis, pp 344-360. Oxford University Press, Oxford, 2016.
16. Lvarakas, Paul. J. *'Encyclopaedia of Survey Research Method',* Sage Publication, NewDelhi, 2008.
17. Combi, Mariella, *'Cultural Models in Anthropology' In: Models in ContemporarySociety*, ed. by Massimo Negrotti, pp. 163-175. Bern, Peter Lang Publishing, 2004.
18. Levi-Strauss, C. *'Social Structure'* In: *Anthropology Today: An Encyclopedic Inventory*, ed. by A. L. Kroeber pp 524-533.The University of Chicago Press, Chicago and London, 1953.
19. Schilbrack, Kevin, *'Religion, Models of and Reality : Are we Through with Geartz',* Journal of Americal Academy of Religion, Vol. 73 No. 2, Jan-June 2005, pp. 429-452
20. Combi, Mariella, op.cit., pp. 163-175

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों एवं सरकारी सहायता प्राप्त कॉलेजों के बी.एड. विद्यार्थियों की व्यवसायिक अभिवृत्ति का अध्ययन

❑ डॉ. सुहासिनी श्रीवास्तव

व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसकी अभिवृतियाँ हैं। अभिवृति एक मनोसामाजिक संप्रत्यय है जो की विभिन्न पारिवारिक, शैक्षिक एवं सामाजिक परिस्तिथियों में व्यक्ति के व्यवहार को प्रदर्शित करता है। विभिन्न तथ्यों, भावों, घटनाओं एवं परिस्थितियों आदि के प्रति व्यक्ति विशेष के विचार, व्यवहार एवं पूर्वधारणायें ही उसकी अभिवृतियों का निर्धारण करती हैं। अभिवृतियों की सहायता से व्यक्ति के व्यवहार का आकलन एवं विश्लेषण किया जा सकता है। अभिवृति व्यक्ति के व्यवहार के लिए निर्धारक का कार्य करती है। शिक्षक का शिक्षण कार्य यदि विद्यार्थी के प्रति सकारात्मक है तो निश्चय ही वह उनके प्रति सकारात्मक व्यवहार करेगा और इसके फलस्वरूप शिक्षण की प्रभावशीलता भी उच्कोटि की स्थापित होगी। शिक्षक की शिक्षण के प्रति सकारात्मक अभिवृति उसके पूरे शैक्षिक व्यवहार को विकसित करने में सहायक होती है। इसलिए शिक्षक की अभिवृति की आवश्यकता अधिक बढ़ जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत बी.एड. विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की अपने व्यवसाय के प्रति किस प्रकार की अभिवृति है।

अभिवृत्ति एक मनोसामाजिक सम्प्रत्यय है। अपने चारों ओर के वातावरण में अनेक वस्तुओं, व्यक्तियों, धारणाओं, विचारधाराओं इत्यादि से हमारा सम्बन्ध होता है और इन सम्बन्धों में सामान्यतया हमारे मनोभाव ऐसे होते हैं जिनमें हम किसी तथ्य को पसन्द करते हैं या नापसन्द करते या इनके विषय में तटस्थ रहते हैं। सामान्यतया हम विश्वविद्यालयों, व्यक्तियों, संस्थाओं, परिस्थितियों आदि के प्रति अलग–अलग व्यवहार करते हैं। इन्हीं व्यवहारों के द्वारा प्राप्त अनुभवों के आधार पर हम इन वस्तुओं के प्रति रूचि/अरूचि प्रकट करते हैं। यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के द्वारा अनुभवों के आधार पर अर्जित की जाती हैं। ये कोई जन्मजात विशेषता, कारक या क्षमता नहीं है। अतः इसके निर्माण में परिवार, समाज, विद्यालय और विद्यालय के शिक्षकों का बहुत बड़ा योगदान है। ऑलपोर्ट ने कहा – ''अभिवृत्ति किसी भी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति घनात्मक अथवा ऋणात्मक भावों की तीव्रता है। यह एक मनोवैज्ञानिक वस्तु कोई भी प्रतीक मुहावरा, नारा या विचार है जिसके प्रति लोग धनात्मक या ऋणात्मक भावों में भिन्नता रखते हैं।''[1] एनेसटेसी के अनुसार – ''अभिवृत्ति एक मनोभावात्मक या चित्तवृत्तात्मक अनुक्रिया करने की तत्परता है जो किन्हीं स्थितियों, व्यक्तियों, वस्तुओं के प्रति सुनिश्चित रीति से की जाती है। यह व्यक्ति के द्वारा सीखा गया अनुक्रिया करने का विशिष्ट तरीका है।''[2]

थर्स्टन अभिवृति किसी मनोविज्ञानिक वस्तु से संबंधित घनात्मक या ऋणात्मक प्रभाव की मात्रा है।[3]

गुड के अनुसार – अभिवृत्ति किसी परिस्थिति, व्यक्ति या वस्तु के प्रति किसी विशेष ढंग से किसी विशेष सघनता से प्रतिक्रिया करने की तत्परता है।[4]

फ्री मैन के अनुसार – अभिवृत्ति किन्ही परिस्थितियों, व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति संगत ढंग प्रतिक्रिया करने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया हैं जिसे सीखा जाता है तथा जो व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रतिक्रिया करने का विशेष ढंग बन गया हो।[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अभिवृत्ति के निम्नलिखित आयाम होते हैं –

संज्ञानात्मक पक्ष – अभिवृत्ति का सम्बन्ध किसी न किसी विचार, परिस्थिति या वस्तु के साथ होता है इसका तात्पर्य यह होता है कि अभिवृत्ति में संज्ञानात्मक आयाम भी होता है।

भावात्मक पक्ष – अभिवृत्ति एक प्रकार की मनोभावना है जो किसी वस्तु, परिस्थिति, विचार से जुड़ी होती है। प्रत्येक अभिवृत्ति में एक भावात्मक आयाम भी होता है।

क्रियात्मक या व्यवहारात्मक पक्ष – अभिवृत्ति किसी

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर, डी०डब्ल्यू०टी० कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)**

व्यवहार या कार्य करने की भावात्मक तत्परता है। इस तत्परता के फलस्वरूप ही व्यक्ति अपने व्यवहार को निर्देशित एवं संचालित करता है।[6] यदि इन तीनों आयामों को देखे तो अभिवृत्ति की विशेषताएं हैं –

1. अभिवृत्ति जन्मजात नहीं होती अपितु सीखी गयी अथवा अर्जित होती है।
2. अभिवृत्ति किसी न किसी परिस्थिति, व्यक्ति, स्थान, वस्तु, विचार के प्रति होती है।
3. अभिवृत्ति स्थायी न होकर परिवर्तनीय है। नवीन अनुभवों के आधार पर इनमें परिवर्तन सम्भव है।
4. अभिवृत्ति हमारे क्रिया-कलापों एवं व्यवहारों को प्रभावित करती है।
5. अभिवृत्ति हमारे रूप, रंग, परम्परा एवं संस्कृति द्वारा निर्धारित होती है।
6. अभिवृत्ति का प्रयोग दैनिक जीवन में सर्वदा होता रहता है।
7. अभिवृत्ति हमारे व्यवहार द्वारा प्रकट होती है।
8. अभिवृत्ति घनात्मक एवं ऋणात्मक होती है।
9. अभिवृत्ति में प्रत्यक्षीकरण तथा संवेगात्मक कारकों की भूमिका भी होती है।
10. अभिवृत्ति के अन्तर्गत मानव व्यवहार के तीनों आयाम– ज्ञानात्मक भावात्मक एवं क्रियात्मक अन्तनिर्हित होते हैं।

अभिवृति तथा अन्य प्रत्ययों में अंतर :

अभिवृति तथा प्रेरणा – सामानतय अभिवृति एवं प्रेरणा दोनो ही व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक हैं लेकिन दोनो में काफी अंतर है। अभिवृति प्रेरणा के तुलना में अधिक स्थायी होती हैं। प्रेरणा किसी अभाव या आवश्यकता के कारण उत्पन होती है। आवश्यकता के पूर्ण हो जाने के बाद प्रेरणा समाप्त हो जाती है इसके विपरीत अभिवृति व्यक्ति स्वयं के अनुभवों पर आधारित होती है एवं अभाव के होने या न होने का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रेरणा का सम्बन्ध क्रियात्मक पक्ष से अधिक होता है जबकि अभिवृति का सम्बन्ध ज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्षों से अधिक होता है। अभिवृति का क्षेत्र प्रेरणा की तुलना में अधिक व्यापक होता है।

अभिवृति एवं मूल्य – अभिवृति एवं मूल्य दोनों ही शब्द किसी व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं या परिस्थितियों से सम्बन्धित मानसिक तत्वों को अभिव्यक्त करते हैं। अभिवृति आत्मगत होती है जबकि मूल्य वस्तुगत होता है। अभिवृति किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति की जाने वाली प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति है जब कोई अभिवृति लक्ष्य बन जाती है तो मूल्य के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार से अभिवृति मूल्य का आधार होती है।

अभिवृति एवं विश्वास – अभिवृति एवं विश्वास दोनों ही किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना इत्यादि के प्रति व्यक्ति की मनोस्थिति को स्पष्ट करते है लेकिन ये दोनों कुछ अलग तथ्य रखते हैं। विश्वास वास्तव में अभिवृति का एक अभिव्यक्त रूप है। अभिवृतियों को प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त करना अधिक कठिन कार्य है। सामान्यतः व्यक्ति अपनी अभिवृतियों को अपने विश्वासों के रूप में व्यक्त करता है।

अभिवृति एवं अभिक्षमता – अभिवृति एवं अभिक्षमता दोनों में अंतर है। अभिवृति व्यक्ति का किसी वास्तु, व्यक्ति, परिस्थिति या घटना के प्रति एक विशिष्ट प्रकार का दृष्टिकोण है जो वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति या घटना के प्रति व्यक्ति के विचारों एवं व्यवहारों को दर्शाता है। ठीक इसके विपरीत अभिक्षमता व्यक्ति की वह मानसिक योग्यता है जो किसी विशेष क्षेत्र में उसकी प्रभावशीलता को दर्शाता है अभिवृति सदैव अर्जित होती है जबकि अभिक्षमता व्यक्ति की जन्मजात योग्यता, वातावरण, शिक्षण एवं प्रशिक्षण की परस्पर अंतक्रिया के परिणाम होता है।

शिक्षण परिस्थिति में अभिवृति में परिवर्तन का प्रारूप : अभिवृति अर्जित होती है और यह कक्षा परिस्थिति में विभिन्न प्रकार से शिक्षण को प्रभावित करती है। अभिवृति व्यक्ति की आवश्यकता, भाव, परिस्थितियों एवं आत्म – संप्रत्यय से संबंधित होती है! अभिवृति में परिवर्तन का अर्थ व्यक्ति के आवश्यकता, भाव, परिस्थितियों एवं आत्म– संप्रत्यय में परिवर्तन होने से है! इन्ही कारणों से अभिवृति परिवर्तन साधारणतया एक कठिन कार्य होता है! लेकिन शिक्षण परिस्थितियों में शिक्षकों को ऐसी स्थिति का सामना प्रत्यक्ष रूप से करना पड़ता है जिसमें उनके लिए विद्यार्थियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर उसकी जगह स्वस्थ एवं शिक्षणमुखी अभिवृति को विकसित करना अनिवार्य होता है! विद्यार्थियों की अभिवृति को सबल तथा सकारात्मक बनाना शिक्षक को उन प्रविधियों का ज्ञान होना अनिवार्य है जिनके द्वारा विद्यार्थियों में स्वस्थ अभिवृत्ति को विकसित कर सकें वे निम्न हैं:-

1. शिक्षक जब भी कोई अभिवृति परिवर्तन आरम्भ करे तो सर्वप्रथम उनके लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वे विद्यार्थियों की वर्तमान अभिवृत्ति को ज्ञात कर

उसमे वांछनीय परिवर्तन कर सकें।

2. अभिवृति का संबंध व्यक्ति के आत्म सम्प्रत्यय से अधिक होता है, अतः अभिवृतियों में परिवर्तन सामूहिक प्रक्रियाओं द्वारा तुलात्मक रूप से अधिक होता है! विद्यालय में अभिवृत्ति परिवर्तन का कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें विद्यार्थियों की सामूहिक प्रक्रियाओं का समावेश अधिक से अधिक हो।
3. विद्यार्थी के मनोवृत्ति परिवर्तन कार्यक्रम में शिक्षकों को चाहिए कि वे इस तरह तथ्य, घटना, कहानी इत्यादि को विद्याथियों के मध्य प्रस्तुत करें जिससे कि उससे अभिवृति के भावात्मक घटक पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़े या जब तक विद्यार्थी में पहले के भाव की जगह एक नया भाव उत्पन्न नहीं किया जाता है, तब तक अभिवृति परिवर्तन के कार्यक्रम को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है।
4. सकारत्मक अभिवृति को विद्याथियों में विकसित करने में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे अपने विद्यार्थियों को उन विचारों से अवगत करा सकते हैं जिनसे उसकी अभिवृत्ति में परिवर्तन किया जा सकता है। अतः शिक्षक विद्यार्थियों को विशेष सुझाव देकर उनकी अभिवृति को प्रतिकूल दिशा में बदलने से रोक सकते हैं तथा अनुकूल दिशा में परिवर्तित होने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।
5. विद्यार्थी उन अभिवृतियों को शीघ्र स्वीकार कर लेते हैं जिन्हें वे समझते हैं कि उनके द्वारा किए गए मूल चिंतन का ही यह परिणाम हैं। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वे अभिवृति परिवर्तन के कार्यक्रम को इस प्रकार विद्यार्थियों के सामने रखें कि वह अपने मूलचिंतन का परिणाम समझ सकें।

यदि उपर्युक्त तथ्यों को शिक्षक अपनी शिक्षण कार्य में निहित कर विद्यार्थियों की अभिवृति को वांछित दिशा (स्वस्थ, सकरात्मक, सबल अभिवृति) में परिवर्तन करने में सफलता प्राप्त कर सकेगा।[7]

अभिवृत्ति की अवधारणा और विशेषताओं से परिचित होने के पश्चात ही एक शिक्षक भली भाँति कक्षा शिक्षण में समुचित अभिवृत्तियों का निर्माण, परिमार्जन एवं पोषण करने में सक्षम हो सकेगा। अभिवृत्ति के महत्व के कारण इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं कि शैक्षिक प्रक्रिया पर अभिवृत्ति के प्रभाव का अध्ययन किया जाए। पूरे विश्व में समाजशास्त्री इस दिशा में प्रयासरत हैं कि उन साधनों एवं तरीकों को खोजा जाए जिससे कि व्यक्ति की अभिवृत्ति में आवश्यक परिवर्तन हो सकें एवं उसका अपने वातावरण के साथ सुसमायोजन हो सके। अभिवृत्तियों की पूर्ण जानकारी के माध्यम से व्यक्ति के विषय में भविष्य कथन सम्भव होता है। अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार के लिए निर्धारक का कार्य करती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अध्यापक का शिक्षण पाठ्यक्रम और छात्र के प्रति सही अथवा सकारात्मक है तो निश्चय ही वह इनके प्रति अच्छा व्यवहार करेगा और प्रभावशाली परिणाम प्राप्त होंगे।

अध्यापक की शिक्षण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति, शिक्षा, शिक्षा जगत के प्रति उसकी आस्था को विकसित करने में सहायक होगी क्योंकि ट्राईएडि ने अभिवृत्तियों की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''अभिवृत्तियों के माध्यम से व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण को स्पष्ट करता है इसलिए अध्यापक की अभिवृत्ति की आवश्यकता बढ़ जाती है कि क्या छात्रों में अध्यापक अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखी है और क्या उनकी सकारात्मक अभिवृत्ति ही बढ़ाने में सहायक है।''[8]

प्रस्तुत अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया है कि शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत छात्राध्यापकों तथा अध्यापकों की अपने व्यवसाय के प्रति किस प्रकार की अभिवृत्ति है? प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षक का व्यवहार विद्यार्थी को भी प्रभावित करता है क्योंकि अध्यापक का व्यवहार, उसकी मानसिक दशा और उसकी अभिवृत्तियाँ छात्रों को प्रभावित करती हैं यदि एक उचित और पुष्टिकारक वातावरण अध्यापकों को प्राप्त हो सके तो निश्चय ही वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अभूतपूर्व सुधार संभव हो सकेगा।

अध्यापक के व्यवहार को उसकी अभिवृत्तियाँ प्रभावित करती हैं निश्चय ही यदि अध्यापक की अभिवृत्ति उसके व्यवसाय के प्रति सकारात्मक होगी हो वह व्यवसाय में रूचि लेता है और यदि उसकी अभिवृत्तियाँ प्रतिकूल होंगी तो वह शिक्षक के प्रति उसमें नकारात्मक भाव विकसित होंगें अध्यापक का व्यक्तित्व उसके विचार तथा व्यवहार विद्यार्थी को प्रभावित करते हैं एवं छात्र उनका अनुसरण करता है। वोतियार[9] के अनुसार अध्यापक एक सोद्देश्य प्रक्रिया में लिप्त व्यक्ति हैं जिसका दायित्व छात्रों के व्यवहार में परिमार्जन एवं संशोधन कर उन्हें एक अनुशासित प्राणी बनाना है जो समाज के लिए उपयोगी हो तथा अपने विकास की चरम सीमा प्राप्त कर, समाज के विकास में

सहायक हों। अतः वर्तमान समय में आवश्यकता है कि अच्छे अध्यापकों को पहचानना, उन्हें प्रोत्साहित करना साथ ही छात्रध्यापकों को प्रशिक्षित कर उनमें नैतिकता, लोकप्रियता को विकसित करने का प्रयास किया जाए तथा उनके नैतिक आदर्श, व्यवसायिक अभिवृत्ति एवं जीवन मूल्यों का अध्ययन किया जाए।

समस्या कथन – देहरादून नगर में कार्यरत सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों एवं सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों के बी0एड0 के विद्यार्थियों की व्यवसायिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य

1. सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षकों के व्यवसायिक अभिवृत्ति के विभिन्न आयामों पर उनकी अभिवृत्ति के स्तर को ज्ञात करना।
2. सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों के बी0एड0 के विद्यार्थियों के व्यवसायिक अभिवृत्ति के विभिन्न आयामों पर उनकी अभिवृत्ति के स्तर को ज्ञात करना।

परिकल्पना – व्यवसायिक अभिवृत्ति के किसी भी आयाम पर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों के बी0एड0 के विद्यार्थियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रयुक्त पदों का परिभाषीकरण –

अभिवृत्ति – शिक्षक अभिवृत्ति व्यक्ति के उस मानसिक एवं संवेगात्मक तत्परता की स्थिति से है जिसके परिणाम स्वरूप वह शैक्षिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण परिस्थिति के प्रति समाज एवं व्यवसाय के हितों में सर्वोच्च स्थान देते हुए प्रतिक्रिया करता है।

सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालय के शिक्षक – उत्तराखंड बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त एवं सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक।

छात्राध्यापक/विद्यार्थी – हे0न0ब0गढ़वाल विश्वविद्यालय से सम्बन्धित सहायता प्राप्त डी0डब्लू0टी0 कॉलेज एवं डी0ए0वी0 कॉलेज के बी0एड0 में अध्ययनरत सत्र 2016-18 के विद्यार्थी।

अध्ययन का परिसीमन –

1. न्यायदर्श देहरादून नगर के इण्टरमीडिएट कॉलेजों में कार्यरत 100 शिक्षक तक ही सीमित है।
2. छात्राध्यापकों का न्यायदर्श भी हे0न0ब0गढ़वाल विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय से संबंधित डी0डब्लू0टी0 कॉलेज एवं डी0ए0वी0 कॉलेज के 100 विद्यार्थियों तक ही सीमित है।

अध्ययन विधि – प्रस्तुत अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

उपकरण – व्यवसायिक अभिवृत्ति मापन हेतु अनुसंधान में भूषण[10] द्वारा निर्मित अध्यापक के दृष्टिकोण की सूची नामक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। इस अभिवृत्ति मापनी में कुल 150 कथन है। इस मापनी में प्रत्येक कथन पर पूर्ण सहमत से पूर्ण असहमत तक पाँच बिन्दुओं पर अंक प्रदान किए गये हैं जो + 2, + 1, 0,-1,-2 (पूर्णसहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतया असहमत) के रूप में में अंक प्राप्त करते हैं। इस प्रकार इस मापनी पर प्राप्तांकों का विस्तार + 300 से - 300 तक सम्भव है।

इस मापनी के कारक विश्लेषण द्वारा इसमें निम्नलिखित पाँच कारक पाए गए हैं –

कारक-1 छात्रों की अनुत्तरदायी प्रवृत्तियाँ और आत्म अनुशासन की कमी – इस कारक में छात्रों की अधिनायकवादी प्रवृत्ति, निराशावादी चिन्तन और दमनकारी क्रियाकलापों का वर्चस्व है। इसके विपरीत शिक्षकों का छात्रों के प्रति सद्भाव, गर्मजोशी, सहानुभूत व्यवहार इत्यादि है।

कारक-2 शिक्षकों एवं छात्रों के रूचियों में द्वन्द – इस कारक के अन्तर्गत छात्रों की अभिक्षमता के प्रति अभिवृत्ति को समाहित किया गया है। इसमें छात्रों की क्षमता, कार्य करने की प्रवृत्ति और शिक्षक के साथ सहयोग करने की प्रवृत्ति को रखा गया है।

कारक-3 छात्रों के प्रति कठोरता एवं अनियमितता – इस कारक में शिक्षकों की इस अभिवृत्ति का सन्दर्भ है जिसके अन्तर्गत वह छात्रों के व्यवहारों को निर्देशित करता है, आदेश देता है और विद्यालय के नियमों का उनसे अनुपालन करवाता है।

कारक-4 अधिगम में छात्रों की स्वतन्त्रता – इसके अन्तर्गत उन क्रिया-कलापों में छात्रों की रूचि और उपलब्धि को प्रोत्साहित एवं सुगम बनाया जाता है। शिक्षक छात्रों को अधिकतम स्वतन्त्रता और स्वअनुदेश की ओर बढ़ाते हैं

कारक-5 शिक्षक के आदेश छात्रों द्वारा मौन स्वीकृति – इस कारक के अन्तर्गत शिक्षकों के शैक्षिक क्रियाकलापों में वर्चस्व को रखा गया।

न्यादर्श– प्रस्तुत अध्ययन में कार्यरत शिक्षकों और बी0एड0

छात्राध्यापकों के न्यायदर्श का चयन यादृच्छिक न्यायदर्श विधि से किया गया है जिसे सारणी-1 में प्रस्तुत किया गया है।[7]

सारणी-1

सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के नाम	शिक्षक संख्या
डी0ए0वी0 इंटर कॉलेज, करनपुर, देहरादून	44
गाँधी इंटर कॉलेज डिस्पेन्सरी रोड देहरादून	14
नारी शिल्प बालिका मंदिर देहरादून	21
राम प्यारी इंटर कॉलेज खुडबुडा देहरादून	12
मंगला देवी इंटर कॉलेज ई0सी0 रोड देहरादून	09
योग	100
सरकारी सहायता प्राप्त बी0एड0 कॉलेज का नाम	छात्राध्यापक संख्या
डी0डब्ल्यू0टी0 कॉलेज 6 कर्जन रोड देहरादून	50
डी0ए0वी0 कॉलेज देहरादून	50
योग	100

आँकड़ो का संकलन - अभिवृत्ति मापनी द्वारा आँकड़ा संकलन दो सोपानो में किया गया। प्रथमतः कार्यरत शिक्षकों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया गया। इस प्रकार 100 शिक्षकों से आंकडा संकलन में काफी समय लगा। द्वितीय सोपान में छात्राध्यापकों से सम्बन्धित आँकडो का संकलन किया गया। छात्राध्यापकों से उनके कॉलेजों में जाकर सम्पर्क किया गया निर्देशों को भली-भाँति समझाकर कक्षा में बैठाकर उनकी अनुक्रियाओं को संकलित किया गया।

अंकन - प्रत्येक कथन पर +2,.+1, 0, -1, -2 के अंक पूर्ण सहमति से पूर्ण असहमति के बिन्दुओं पर प्रदान किए गए हैं भूषण द्वारा दिए गए शिक्षकों का पालन करते हुए अंकन किया गया।

आँकडों का विश्लेषण - आँकडों की गणना एवं विश्लेषण किया गया। सांख्यिकी रूप से सत्यापित करने के लिए टी0 टेस्ट का प्रयोग किया गया।[11] आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त परिणामों, उनके निष्कर्षों की व्याख्या शिक्षकों से सम्बन्धित किया गया।

अभिवृत्ति का परिणाम - भूषण की मापनी द्वारा एकत्रित आँकड़ों को मापनी में अन्तर कारकों के अनुसार सारणीबद्ध किया गया, तत्पश्चात प्रत्येक कारक पर प्राप्ताकों का मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन निकाला गया। प्राप्त परिणामों को सारणी-2 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-2

कार्यरत शिक्षक की अभिवृत्ति का कारक

मध्यमान	प्रामाणिक विचलन
9.89	9.45
3.78	7.73
8.66	5.72
4.42	3.71
3.62	3.38

इस प्रकार का मध्यमान इसलिए आया है कि घनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही हैं।

सारणी-2 से स्पष्ट है कि शिक्षकों की अभिवृत्ति कारक एक पर सर्वाधिक घनात्मक है और उनके अभिवृत्ति का न्यूनतम पाँच पर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शिक्षकवर्ग विद्यार्थियों को अनुत्तरदायी अभिवृत्तियों एवं आत्मानुशासन के अभाव से ग्रसित समझते हैं कारक-1 पर उनका मध्यमान सर्वाधिक है। ठीक इसके विपरीत वे अपने विद्यार्थियों को अपनी आज्ञाओं का मूक पालनकर्ता कम ही मानते हैं क्योंकि कारक-5 पर उनका मध्यमान सबसे कम है। कारक तीन पर शिक्षकों का मध्यमान क्रमानुसार द्वितीय स्थान पर है इससे यह ज्ञात होता है कि शिक्षकों की अभिवृत्ति विद्यार्थियों के प्रति अनुशासनात्मक ही है। **कारक-2** और कारक-4 भी न्यून मध्यमान है और इससे यह ज्ञात होता है कि शिक्षक विद्यार्थियों को अपनी रूचि के अनुसार कार्य करने की छूट नहीं देते और उन्हें स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अवसर कम प्रदान करते हैं।

छात्राध्यापकों के अभिवृत्ति का परिणाम

सारणी-3

बी0एड0 छात्राध्यापकों की अभिवृत्ति का कारक

मध्यमान	प्रामाणिक विचलन
3.90	7.25
0.66	5.28
5.78	5.38
4.98	3.02
3.20	2.74

सारणी-3 से ज्ञात होता है कि छात्राध्याकों की अभिवृत्ति के मध्यमानों का प्रसरण 5.78 (कारक 3) से 0.66 कारक (2) तक है इससे यह ज्ञात होता है कि छात्राध्यापक भी विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय और कक्षा के नियमों का अनुपालन अनुशासित रूप से करवाना चाहते हैं साथ ही साथ कारक-2 पर न्यूनतम मध्यमान होने के कारक कहा

जा सकता है कि छात्राध्यापक एवं उनके विद्यार्थियों के बीच सहयोग का अभाव है और उनके परस्पर रूचियों, कार्यों में अन्तर्द्वन्द है।

शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों की अभिवृत्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण – शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों की अभिवृत्ति के मध्यमानों सारणी-2 एवं सारणी-3 में अन्तर दिखायी देता है। ये अन्तर सांख्यिकी दृष्टि से सार्थक है कि नहीं यह ज्ञात करने हेतु मध्यमानों के मध्य टी टेस्ट लगाकर मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता को देखा गया। प्राप्त परिणामों को सारणी-4 में दर्शाया गया है।

सारणी-4

शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता हेतु टी टेस्ट के परिणाम

शिक्षक		छात्राध्यापक		टीस्कोर
मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	
9.89	9.45	3.90	7.25	3.14**
3.78	7.73	0.66	5.28	3.32**
8.66	5.72	5.78	5.38	3.81**
4.42	3.71	4.98	3.02	2.33*
3.62	3.28	3.20	2.74	1.02

सारणी-4 से स्पष्ट होता है कि पाँच कारकों के टी स्कोर में से तीन 3.01 स्तर पर, एक 1.05 स्तर पर सार्थक है।

कारक-1 छात्राध्यापकों का मध्यमान (3.90) शिक्षकों के मध्यमान (9.89) की तुलना में बहुत कम है और यह अन्तर भी .01 स्तर पर सांख्यिकी दृष्टि से सार्थक है। इस प्रकार इस कारक के संदर्भ में परिकल्पना संक्षिप्त में कहें – ''व्यवसायिक अभिवृत्ति के किसी भी आयाम पर कार्यरत शिक्षकों एवं बी0एड0 के विद्यार्थियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।" को अस्वीकार किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि कार्यरत शिक्षक, छात्राध्यापकों की तुलना में अपने विद्यार्थियों को अधिक अनुत्तरदायी एवं आत्मानुशासन से विहीन मानते हैं। यह परिणाम शिक्षण अभ्यास हेतु छात्राध्यापक विद्यालय में जाते हैं और ऐन केन प्रकारेण अपने विद्यार्थियों को अपने अनुकूल बनाकर पाठ पढ़ाने का प्रयास करते हैं। अतः छात्रों के प्रति उनकी अभिवृत्ति उतनी नकारात्मक नहीं है जितनी कार्यरत शिक्षकों की है।

कारक-2 मध्यमानों की तुलना करने पर टी मान .01 स्तर पर सार्थक है। इस प्रकार इस कारक के संदर्भ में परिकल्पना 'व्यवसायिक अभिवृत्ति के किसी आयाम पर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं के बी0एड0 के छात्रों में कोई अन्तर नहीं है को अस्वीकार किया जाता है इसका तात्पर्य यह है कि कार्यरत शिक्षक इस कारक पर यह एवं उनके विद्यार्थियों के रूचि एवं विचारों में अंतर है। इसके विपरीत छात्राध्यापकों की रूचि एवं विचार उनके विद्यार्थियों से भिन्न नहीं है। अतः उनमें और विद्यार्थियों में इस आयाम पर आना द्वंदात्मक दृष्टिकोण नहीं है जितना कार्यरत शिक्षकों में है।

कारक-3 पर कार्यरत शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों की तुलना करने पर टी0मान (3.81) .01 स्तर पर सार्थक है। इस प्रकार इस कारक के अन्तर्गत परिकल्पना ''व्यवसायिक अभिवृत्ति के किसी आयाम पर कार्यरत शिक्षकों एवं बी0एड0 के छात्राध्यापकों में कोई सार्थक अंतर नहीं है" को अस्वीकार किया जाता है। यह स्पष्ट है कि इस कारक पर शिक्षकों का मध्यमान छात्राध्यापकों की तुलना में सार्थक दृष्टि से अधिक है। इससे स्पष्ट है कि कार्यरत शिक्षकों की अभिवृत्ति के अनुसार विद्यार्थियों के व्यवहार के साथ समायोजित होने के लिए उनहें कठोरतापूर्ण एवं अनुशासनात्मक व्यवहार करना पड़ता है। इसके विपरीत छात्राध्यापक कठोरता एवं दण्डात्मक व्यवहार अपने विद्यार्थियों के साथ नहीं करते हैं। यह अंतर इसलिए हो सकता है कि छात्राध्यापक शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन कर रहे हैं उन्हें यह पढ़ाया जाता है कि किशोरवास्था के विद्यार्थियों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

कारक-4 का सम्बन्ध शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को अधिगम करने की स्वतन्त्रता प्रदान करने और अधिगम में विद्यार्थियों

की रूचि एवं प्रेरणा बढ़ाने तथा उपलब्धि को सुगम बनाने से है। कार्यरत शिक्षकों और छात्राध्यापकों के मध्यमानों में अंतर .05 स्तर पर ही सार्थक है। इस प्रकार इस कारक के सन्दर्भ में परिकल्पना ''व्यवसायिक अभिवृत्ति के किसी भी आयाम पर कार्यरत शिक्षकों और बी0एड0 के छात्रों में कोई सार्थक अंतर नहीं है'' को अस्वीकार किया जाता है। यहाँ छात्राध्यापकों कार्यरत शिक्षक की तुलना में इस तथ्य पर अधिक विश्वास करते हैं कि अपने विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में अधिक स्वतंत्रता प्रदान करना चाहिए। जिससे उनकी रूचि पाठ्यविषय में अधिक हो जाती है और उपलब्धि स्तर ऊँचा बन सके। इसके विपरीत कार्यरत शिक्षक उपर्युक्त क्रिया-कलाप में छात्राध्यापकों की तुलना में कम विश्वास करते हैं।

कारक-5 जिसका सम्बन्ध शिक्षकों की उस अभिवृत्ति से है जो मानते हैं कि विद्यार्थियों को शिक्षकों की आज्ञा अनुपालन अक्षरशः करना चाहिए। इस आयाम पर कार्यरत शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकार किया जाता है अर्थात् दोनों ही समूह हृदय से स्वीकार करते हैं कि उनके आदेशों, नियमावलियों एवं विचारों को उनके विद्यार्थी अनुसरण करते रहें।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन का प्रथम उद्देश्य था कि सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षकों के व्यवसायिक अभिवृत्ति के विभिन्न आयामों पर उनकी अभिवृत्ति के स्तर को ज्ञात करना इसमें मुख्यतया यह पाया गया कि शिक्षक अपने विद्यार्थियों को अनुत्तरदायी एवं आत्मानुशासन से विहीन समझते हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थियों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अधिक स्वत्रंता प्रदान करने के पक्ष में भी नहीं है। वह ये भी चाहते है कि उनके विद्यार्थी उनकी आज्ञा एवं निर्देशों का अक्षरशः मूक अनुपालन करें। इस प्रकार का परिणाम त्रिपाठी एवं डेनियल[12] के अध्ययन में भी पाया गया। इस अध्ययन का दूसरा उद्देश्य था कि सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत बी0एड के विद्यार्थियों के व्यवसायिक अभिवृत्ति के विभिन्न आयामों पर उनकी अभिवृत्ति के स्तर को ज्ञात करना, जिसमें मुख्यतया यह प्राप्त किया गया कि उनकी तीव्र अभिवृत्ति इस तथ्य से संबंधित रखती है कि विद्यार्थियों में अनुशासन होना चाहिए। छात्राध्यापक कठोर एवं दंडात्मक व्यवहार अपने विद्याथियों के साथ नहीं करना चाहते हैं। अतः छात्र अध्यापकों का दृष्टिकोण द्वंदात्मक नहीं है जितना कार्यरत शिक्षकों में है। छात्राध्यापकों का यह भी मानना है कि वे अपने विद्यार्थियों को शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में अधिक स्वतंत्रता देना चाहते है जिससे उनकी रुचि विषय के प्रति अधिक बन सके ऐसा श्रीवास्तव, यादव, भागर्व[13] के अध्ययन में भी पाया गया है। अतः इन निष्कर्षो के आधार पर कार्यरत शिक्षकों एवं बीएड विद्यार्थियों की व्यवसायिक अभिवृति में आंशिक रूप से अंतर है, इसको सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता है।

संदर्भ

1. All Port G.W. *'Attitude in C. Murchison(Ed) A handbook of social Psychological'*, Clark University Press Worcester, 1935, p. 3
2. Quoted Tripathi M.K., *'Organisational climate and teachers Attitude: A Study of Relationship'*, Ph.D. Thesis Gorakhpur University, Gorakhpur, 1978, p. 7
3. गुप्ता, एस.पी., 'आधुनिक पुस्तक मापन एवं मूल्यांकन', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 290-293
4. वही, पृ. 290-293
5. वही, पृ. 290-293
6. पाण्डेय एवं श्रीवास्तव, शिक्षा मनोविज्ञान भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि', टाटा मैकग्रा हिल्स, नई दिल्ली, पृ. 320-321
7. Singh Kumar Arun, *'Shiksha Manovigyan'*, Bhartiye Prakashan, Patna, 1994, pp. 442-443
8. Tripathi R.M., *'Comparative Study of Professional Attitude of the Secondary School Teachers with Puipls Teacher'*,, Dissertation Faculty of Education, B.H.U., 1990, p.7
9. गुप्ता एस.पी., पूर्वोक्त, पृ. 290-293
10. Bhushan, V., *'Relationship between Teacher's Attitudes and classroom Learning Environment in Fraser'*, F.J. (ed) The Study of Learning Enviornment, 1986, pp. 6-8
11. John.W. Best, James V. Kahn. 'Research in Education', Dorlingh Kindersley, India, 2003, pp. 25-31
12. https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1877042814046059
13. https://www.researchgate.net/

भारतीय राष्ट्रवाद और आनंद कुमारस्वामी : एक अनुशीलन

❑ डॉ. विपुल तिवारी

बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन की दशा-दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस दृष्टि से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का नव राष्ट्र के निर्माण तथा भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के चरित्र एवं स्वरूप पर इसके प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव का सम्यक अनुशीलन भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन के लिए बहुत उपयोगी और अपरिहार्य है। आज जब भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन का दौर चल रहा है, तो राष्ट्र की आत्मा, संस्कृति, उसका अनकहा इतिहास वर्तमान से अपेक्षा करता है कि इसके गौरवशाली अतीत को अधिक सुव्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और सत्य के निकष पर स्थापित किया जाए जिससे पूर्व में पूर्वाग्रहित इतिहास विद्रूपण के अपशिष्ट से भारतीय इतिहास बोध को निर्माल्य कर भारतीय संस्कृति को संवर्धित किया जा सके तथा उन सभी महान विभूतियों के योगदान का समेकित अध्ययन करने का प्रयत्न किया जाए जो किसी कारणवश परवर्ती भारतीय इतिहास लेखकों की कृतियों में अपना सम्यक स्थान बनाने से वंचित रह गये। इसी क्रम में प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय संस्कृति के महान चिंतक और मनीषी आनंद केंटिश कुमारस्वामी की भारतीय राष्ट्रवाद की परिकल्पना और उसका भारतीय राष्ट्रवाद पर प्रभाव के विषय में एक अनुशीलन है।

भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष से जुड़ा बुद्धिजीवी वर्ग स्वतंत्रता आंदोलन को एक सुदृढ़ राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, और आध्यात्मिक विचारों का आधार प्रदान करना चाहता था, जिससे अंग्रेजों द्वारा विगत डेढ़ सौ वर्षों से स्थापित 'आधिपत्य' (Hegemony)[1] के प्रभाव को भारतीयों के मनस पटल से क्षीण किया जा सके और स्वतंत्रता आंदोलन में नई ऊर्जा, शक्ति, सेवा, और बलिदान का वातावरण सृजित किया जा सके। अंग्रेजी सरकार भी दिन प्रति दिन बढ़ते स्वतन्त्रता आंदोलन की एकता को कमजोर करने के षड्यंत्र में सांप्रदायिक आधार की नयी जमीन तलाश करने में लगी थी। सन् 1903 में बंगाल विभाजन की घोषणा अंग्रेज सरकार की सोची समझी 'डिवाइड एण्ड रूल' नीति का सांप्रदायिक प्रयोग था।[2]

साम्राज्यवादी इतिहासकार विंसेंट आथर स्मिथ अपनी कृति "अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया" में जेम्स मिल, ग्रुनवेडेल, फाउचर आदि की तरह ग्रीक सभ्यता की महानता के समक्ष भारतीय कला-संस्कृति की हीनता के कसीदे गढ़ने में व्यस्त था, जिसे यह साबित करना था कि "कांरवा आता गया और हिन्दुस्तान बसता गया"।[3] जो भी सद्गुण भारत की मिट्टी में पाये जाते हैं वह सब विदेशियों की देन हैं, हिन्दू शासक और उनकी संस्कृति स्तरहीन है, मुस्लिम शासन उनसे कुछ बेहतर और अंग्रेज शासन सबसे बेहतर है। कुल मिलाकर भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और चरित्र को विद्रूप करके प्रस्तुत करने का साम्राज्यवादी कार्यक्रम पूर्व की भाँति जारी था। इसका उद्देश्य और लक्ष्य स्पष्ट था, प्रथम-भारतीय युवा और बौद्धिक वर्ग को मनोवैज्ञानिक रूप से इतना कमजोर कर देना कि वह अंग्रेजी हुकूमत के आधिपत्य (Hegemony), वाइट मैन्स बर्डन (White Men's Burden) आदि विचारधारा में स्वतः विश्वास करने लगे और उसके भीतर अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध आवाज उठाने की शक्ति समाप्त हो जाये। द्वितीय-भारतीय सांस्कृतिक विरासत में उसे कमियाँ ही कमियाँ दिखायी दें और वह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अनुसरण के लिये प्रेरित हो। वस्तुतः वह देह से तो भारतीय हो, किन्तु, आत्मा से विशुद्ध अंग्रेज हो।

किसी ने सत्य ही कहा है कि अगर किसी राष्ट्रको पथभ्रष्ट करना हो, उसके चरित्र का पतन करना हो, तो उसके साहित्य को विद्रूप कर दीजिए, वह राष्ट्र स्वतः अंतर्विरोधों द्वारा नष्ट हो जायेगा। भारत में अंग्रेजों ने भी अपनी प्रभुसत्ता को चिर स्थायी रखने हेतु ऐसा ही घृणित कार्य किया। राष्ट्रीय आदर्श और देश के गौरव प्रतीकों को अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत में अपना सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी पाया। साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान, उद्योग, नैतिकता आदि क्षेत्र में भारतीय संस्कृति विश्व की एक अग्रणी संस्कृति थी। जब हम प्रारंभिक प्राच्यविदों और साम्राज्यवादी इतिहासकारों के व्यक्तिगत पत्रों एवं उनके कार्यो का गहन अनुशीलन करते

❑ पूर्व शोध अध्येता, कला-इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

हैं तो पश्चात्य पूर्वाग्रह और मानवतावाद के नकली मुखौटा के पीछे का यथार्थ स्पष्ट दिखता है। मैक्स मुलर अपनी पत्नी को लिखे पत्र में उनके द्वारा किये गये वेदों के भाष्य के विषय में लिखते हैं: ''मेरा यह संस्करण और वेद का अनुवाद, इसके बाद भारत के भाग्य और उस देश में लाखों आत्माओं के विकास पर बहुत कुछ बताएगा। यह उनके धर्म की जड़ है और उन्हें यह दिखाने के लिए कि जड़ क्या है, मुझे यकीन है, पिछले तीन हजार वर्षों में इससे जो कुछ भी निकला है, उसे जड़ से उखाड़ने का एक मात्र तरीका है।''[4]

सन् 1868 में मैक्स मुलर अपने मित्र ड्यूक ऑफ अर्गिलो, जो तत्कालिक भारत के राज्य सचिव थे, को लिखे पत्र में अपने मन की बात प्रकट करते हैं: ''भारत का प्राचीन धर्म नष्ट हो गया है, और यदि ईसाई धर्म प्रवेश नहीं करता है, तो यह किसका दोष होगा?[5]

मोनियर विलियम, आक्सफोर्ड में संस्कृत के बोडन चेयर प्रोफेसर, भी अपनी अभिव्यक्ति नहीं रोक पाते हैं और सन् 1879 में अपने एक पत्र में लिखते हैं: ''.....जब ब्राह्मणवाद हिंन्दू धर्म के शक्तिशाली किले की दीवारों को घेर लिया जाता है, कम कर दिया जाता है और अंत में क्रॉस के सैनिकों द्वारा धावा बोल दिया जाता है, तो ईसाई धर्म की जीत एकल और पूर्ण होनी चाहिए।''[6]

प्रख्यात उपयोगितावादी विचारक जेम्स मिल ने जो मानवता का शुभ चितंन का दावा करते हैं, सन् 1818 में प्रकाशित अपनी कृति ''दी हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया'' में सर्व प्रथम भारतीय इतिहास का सांप्रदायिक विभाजन करते हुये 'हिन्दू इंडिया', 'मुस्लिम इंडिया' और 'ब्रिटिश इंडिया' की अवधारणा को प्रस्तुत किया।[7] इस कृति के द्वितीय खण्ड में उसने हिन्दू सभ्यता का मूल्यांकन करने का प्रयास किया और प्राच्यविदों द्वारा वर्षो शोध और अध्ययन उपरान्त स्वीकार किये सभी सकारात्मक निष्कर्षो को बिना परीक्षण निरस्त कर दिया, जिससे उसका भारतीय सभ्यता के प्रति दुराग्रह स्पष्ट परिलक्षित होता है। कृति लिखने से पूर्व ही जेम्स मिल भारतीय सभ्यता के विषय में इतिहास लेखन के सभी अनुसंधान की पद्धतियों का उल्लंघन कर अपने निर्णय पर पहुँच चुके थे, स्रोत की समस्या का हल उन्होंने उन लेखकों और यात्रियों के दृष्टांतों और उद्धरणों में ढूंढा, जिसके लेखक सम्यक् रूप से भारतीय संस्कृति को समझने एवं उसके विषय में प्रमाणिक कथन करने में सबसे अयोग्य थे जैसे, राबर्ट ओरमे, बुकनन्, टेनन्ट, टाईटलर, अब्बे दुबोइस, आदि।[8] पाँच सौ पृष्ठों के इस द्वितीय खण्ड में हिन्दू सभ्यता पर मिल के नैतिक निर्णय की श्रृंखला देखने को मिलती है। अपनी कृति में सबसे तर्कहीन, सांप्रदायिक, अबौद्धिक और स्तरहीन निर्णय पर पहुँच कर लिखते हैं: ''यूरोप के लोग, सामंती युग के दौरान भी, हिन्दुओं से काफी श्रेष्ठ थे।'' ''वास्तव में, हिजड़ों की तरह हिन्दू भी दासों के गुणों में श्रेष्ठ हैं।'' ''भारत में मानव प्रकृति ने हिन्दू शासन से मुस्लिम शासन में जाने से काफी कुछ हासिल किया।''[9]

महान अलेक्जेंडर कनिघंम सन् 1848 में भारत में सुव्यवस्थित पुरातात्विक अन्वेषण कराने के महत्व के विषय में लिखते हैं: ''यह प्रदर्शित करेगा कि ब्राह्मणवाद भारत में एकमात्र सर्वोपरि धर्म नहीं था और यह ज्ञान अपने आप में इस देश में ईसाई धर्म के प्रचार को आसान बना देगा।''[10]

यद्यपि इतिहासकारों के लिये उनके द्वारा 23 खण्डों में विस्तृत रिपोर्ट भारतीय इतिहास लेखन के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होती है, किन्तु यथार्थ में कनिघंम पूरा जीवन बौद्ध स्तूपों को तोड़कर उसमें संरक्षित पुरातात्विक निधियों को तथा भारत में घूम-घूम के एकत्र की गयी बहमूल्य ऐतिहासिक व पुरातात्विक निधियों को विश्व के संग्रहालयों में बेचने के कार्य को बड़े पैमाने पर करते रहें, तथा अघोषित रूप से मिल के विचारों का समर्थन करते रहें। सन् 1887 में लोक सेवा आयोग की उपसमिति ने उनकी रिपोर्ट की कटु आलोचना की और प्रतिक्रिया देते हुये कनिंघम रिपोर्ट के सत्य चरित्र को उजागर किया।[11]

साम्राज्यवादी इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने अपनी कृति ''दी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया'' के 478 पृष्ठों में 66 पृष्ठ केवल सिंकदर के आक्रमण को समर्पित करते हुय यह बतलाने की चेष्टा करते हैं कि भारतवर्ष में जो भी श्रेष्ठ है वह विदेशियों की देन है।[12] भारतीय कला पर उनकी इस टिप्पणी की कालान्तर में कुमारस्वामी, हैवल एवं अन्य कला विद्वानों ने कटु आलोचना की।

उपर्युक्त संदर्भों में आर एस शर्मा का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि ''भारतीय इतिहास की ब्रिटिश व्याख्याओं ने भारतीय चरित्र और उपलब्धियों को कलंकित करने और औपनिवेशिक शासन को सही ठहराने का काम किया है।''[13]

कुल मिलाकर प्रारम्भ से ही अंग्रेज शासकों के सामने मुख्य समस्या थी कि किस प्रकार समृद्ध भारतीय संस्कृति को एक हीन और बर्बर संस्कृति सिद्ध करें? जिससें ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारतीय उपमहाद्वीप में सभ्यता के प्रसार

करने के नैतिक आधार के रूप में न्यायोचित ठहराया जा सके। स्वयं के हीन सांस्कृतिक विरासत के बोध से ग्रसित अंगलों सेक्सन के वंशज, भारतीय राष्ट्रवाद को अपने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के लिए गंभीर खतरा मान रहे थे।

अतः साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने प्राचीन ग्रीक संस्कृति, उत्तरोत्तर रोमन संस्कृति तथा इससे मिश्रित ग्रीकों-रोमन संस्कृति से भारतीय संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन प्रारम्भ किया और भारतीय संस्कृति को उनके सामने न तो प्राचीन स्वीकार किया, न ही संस्कृति स्वीकार किया। यह परिकल्पना स्थापित करने का प्रयास किया गया कि भारत कोई राष्ट्र नहीं है, यहाँ कोई राजनैतिक एकता नहीं थी, यह एक उपमहाद्वीप (subcontinent) है, जो भी यहाँ श्रेष्ठ है वह विदेशियों की देन, और भारत की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कला दोयम दर्जे की ग्रीकों-रोमन कला के बराबर भी नहीं, उच्चकोटि की पाश्चात्य कला से तो भारतीय कला की तुलना करना ही बेकार है। यूरोप के एक अच्छे पुस्तकालय की अलमारी का केवल एक भाग ही भारत और अरब के सम्पूर्ण साहित्य के बराबर है, बाईबिल तो वर्डस ऑफ गॉड है, किन्तु ऋग्वेद चरवाहों का गीत है, इत्यादि। किन्तु कुरान पर ऐसी टिप्पणी करने की हिम्मत नहीं हुई इसीलिए अंग्रेजों की सहिष्णुता व धार्मिक उदारता पर मुस्लिम समाज को कभी संदेह नहीं हुआ। त्रिनेत्रधारी शिव, चतुर्भुज विष्णु, पंचमुख ब्रह्मा, वक्रतुण्ड गणेश को दानव बना दिया गया और शिल्पकारों एवं कारीगरों को अंग्रेजों की आर्थिक नीति ने भिखारी बना दिया। राष्ट्रीय आदर्शों को चुन-चुन कर इन इतिहासकारों ने विद्रूप करने का भरसक प्रयत्न किया।

ऐसे वातावरण में कुमारस्वामी ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में प्रवेश करने का निर्णय लिया। कुमारस्वामी ने भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की वास्तविक महत्ता को नव निमार्णधीन राष्ट्र के बौद्धिक पटल पर सफलतापूर्वक परिभाषित किया। उनके अनुसार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आंदोलन की प्रकृति, चरित्र और सत्य इसके आदर्शवादी स्वरूप में ही निहित है। यह मात्र राजनैतिक संघर्ष नहीं है, यद्यपि सतह पर भले ही यह केवल राजनैतिक संघर्ष प्रतीत होता हो। किन्तु, इसका वास्तविक फलक बहुत विस्तृत है, सच्चे अर्थो में आध्यात्मिक एवं मानसिक स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु यह विदेशी प्रभुत्व से भारतीयों का एक अनवरत संघर्ष है। प्रायः इस प्रकार के संघर्ष में राजनैतिक व अर्थिक विजय मात्र आंशिक विजय होती है। फिर भारत जैसे महान राष्ट्र के लिए इस नाम मात्र की स्वतंत्रता का क्या लाभ जब उसकी विराट आत्मा युरोप द्वारा परतंत्र ही बनी रहें। यह सच्चे अर्थ में भारत की स्वतंत्रता नहीं होगी क्योंकि युरोप ने भारत को आर्थिक संपन्नता से अधिक उसके नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से वंचित किया है, जिसके बिना भारत वह भारतवर्ष नहीं बन सकता जो कभी विश्वगुरू था।[14]

शोध-पत्र : प्रस्तुत शोध-पत्र का विषय कुमारस्वामी की प्रारम्भिक रचनाओं में नव प्रस्फूरित भारतीय राष्ट्रवाद के आदर्शवादी स्वरूप तथा उसके विकास में उनके योगदान का अनुशीलन करना है। कुमारस्वामी ने भारत के लिये रचित अपनी प्रथम कृति ''एसेज़ इन नैशनल आइडिलिज़्म''(सारगर्भित पंद्रह निबंधों का एक संग्रह है, 1909 में कैम्पडेन, इंग्लैंड से प्रकाशित) में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, एवं औद्योगिक परिस्थितियों के सापेक्ष भारतीय आदर्शो का बड़ी सूक्ष्म, विद्वतापूर्ण एवं अर्थगहन विश्लेषण प्रस्तुत किया। कृति के माध्यम से भारतवर्ष के तत्कालीन राजनेताओं, प्रबुद्ध वर्ग, विद्यार्थियों, व्यापारियों, शिक्षाविदों, अंग्रेज सरकार तथा आम जनता का प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहित व्यवहारिक और आध्यात्मिक आदर्शों के संरक्षण, संवर्धन, व प्रोत्साहन हेतु आवाहन् किया। भारतियों से उनका आग्रह था कि अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के महत्व को पहले वह स्वयं स्वीकार करें तथा इस उच्चकोटि की विश्व संस्कृति का अपने जीवन और दर्शन से क्षरण न होनें दें। इस विषय पर उनका मानना था कि ''भारत की समस्या उच्च कोटि की संस्कृति सृजित करने की नहीं वरन् जो समृद्ध सांस्कृतिक विरासत उसे प्राप्त है, उसे संरक्षित रखने की है।'' (पंद्रह अगस्त, सन् 1947 भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के दिन उनका बोस्टन में भाषण का अंश)।[15]

अंग्रेजी संरकार से उन्होंने आग्रह किया कि आप तो सारे विश्व में मानवता और संस्कृति के प्रचार-प्रसार की बातें करतें हैं, तो फिर विशुद्ध रूप से समृद्ध भारतीय संस्कृति को सच्चे अर्थो में संरक्षित करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते वरन् भारतीय सांस्कृतिक विरासत और पारम्परिक उद्योगों का निरन्तर शोषण करतें जा रहे हैं। उसे उपनिवेशवाद और उद्योगवाद की आंधी में झोंक दिया जा रहा है, उसकी जड़ों को जीवन देने वाले समस्त स्रोतों को नष्ट करते जा रहे हैं।

जबकि भारतीय कला को पश्चिमी जगत संरक्षित करके लाभान्वित हो सकता है। रूडयार्ड किपलिंग की अवधारणा

''पूर्व, पूर्व है और पश्चिम, पश्चिम है और दोनों कभी नहीं मिलेंगे'' को कुमारस्वामी ने पूरी तरह निरस्त किया[16] और विश्व पटल पर सिद्ध किया कि मानवता का आयाम हो या धार्मिकता का आयाम, पूरब और पश्चिम की सभ्यता का अन्तःकरण एक सा है, भले वाह्य आडंबरों की चकाचौंध में हम इसे न देख सकें।

कुमारस्वामी कहते हैं कि जिन आधारभूत तत्वों पर आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की वैचारिक पृष्ठभूमि अवस्थित है, और जिन मौलिक व शाश्वत आदर्शों, मूल्यों एवं विचारों से भारतीय संस्कृति प्रकाशित है, उनमें कोई विरोधाभास नहीं है, बल्कि समता का अद्‌भुत संगीत व्याप्त है। कुमारस्वामी भारतीय संस्कृति के अंग्रेज आलोचकों पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि परतन्त्र भारतीय संस्कृति की वर्तमान दुर्दशा के चित्रण से इसके प्राचीन गौरवमयी इतिहास व विरासत को कलंकित करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वर्तमान दुर्दशा के लिये अंग्रेज शासक ही जिम्मेदार हैं।

कुमारस्वामी के अनुसार उस राजनीतिक स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं है जो मनुष्य को एक बौद्धिक और सभ्य जीवन उपलब्ध न करा सके। इसी प्रकार शिक्षित होने का भी कोई अर्थ नहीं अगर मनुष्य को परतंत्रता में रहते हुए दूसरे की सेविकाएँ ही करना है। अर्थात, जीवन व्यर्थ है अगर मनुष्य स्वतंत्र होकर चिंतन्, मनन्, सृजन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति न कर सके।

कुमारस्वामी लिखते हैं कि इसको पढ़कर आश्चर्य होगा कि भारतीय राष्ट्रवाद को समर्पित इस कृति में राजनीतिक विषयों को अति संक्षिप्त और कला-संस्कृति विषयों का इतना विस्तार पूर्वक क्यों विश्लेषण किया गया है। इसको स्पष्ट करते हुए वह कहतें है किः....''राष्ट्र कलाकारों और कवियों द्वारा बनाये जाते हैं, व्यापारियों और राजनेताओं द्वारा नहीं।''[17]

राज्य की अवधारणा के दृष्टिकोण से तो सभी सप्तांग अवयवों का अपना महत्व है, किन्तु राष्ट्र निर्माण के संदर्भो में कुमारस्वामी के विश्लेषण से काफी हद तक सहमत हुआ जा सकता है।

कुमारस्वामी के अनुसार कला स्वयं के अंतःस्थल में 'जीवन जीने की कला', जो सर्वश्रेष्ठ कला का सर्वोत्तम पथ प्रदर्शक है, के गूढ़ सिंद्धातों को समावेषित किये रहती है। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति का आदर्श सत्य जीवन है। इसी कारण यह मनुष्य की आध्यात्मिक विरासत के साक्षात्कार हेतु प्रेरित करता है। भारत में इसी इच्छा के आलोक में समस्त कर्मों का मूल्यांकन किया जाता है। निकट भविष्य में आत्म-बलिदान तथा आत्म साक्षात्कार की यही भावना भारतीय राष्ट्रवाद में अभिव्यक्त होगी, जो अनिवार्य रूप से धर्म से प्रतिबद्ध होगी। पुनः भारतवर्ष 'जीवन की कला' का साक्षात्कार करेगा और केवल कवि और कलाकार बन कर ही हम अपनी कला और कवित्व की सनातन परम्परा को समझ सकेंगे, उसके माध्यम से ही राष्ट्रवाद की उच्चतम् आदर्श, शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त कर सकेंगे।[18]

अतीत को समझने की यह एक नवीन दृष्टि है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आध्यात्मिक तत्वों को परवर्ती लेखकों द्वारा धर्मनिरपेक्षता के नाम पर तिलांजली दी गई। अधिकांश लेखकों का यह मानना था कि भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में निहित धार्मिक-आध्यात्मिक मूल्यों के प्रभाव के ऐतिहासिक चित्रण से स्वतंत्रोत्तर भारत के सांप्रदायिक सद्‌भाव को खतरा हो सकता है। विषय विस्तार से बचते हुए संक्षेप में कुछ तथ्यों को स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत माता की अवधारणा, मोहनदास करमचंद गाँधी की ''महात्मा'' के संत रूप में परिणति, भारतीय जनमानस की धार्मिक एकता को सुदृढ़ करने हेतु गाँधी जी द्वारा लक्ष्मणाचार्य कृत राम भजन में ''अल्लाह'' शब्द को स्थान देना, वंदे मातरम् गीत एवं उद्‌बोधन की व्यापकता, बाल गंगाधर तिलक द्वारा गणेश उत्सव व अन्य धार्मिक आयोजन, क्रांतिकारियों के जीवन में आध्यात्मिक तत्व जिसके कारण उन्होंने भारत माता की स्वतंत्रता हेतु अपना प्राण तक बलिदान करना धर्म समझा, गाँधी जी द्वारा एक ऋषि समान जीवन जीना, इत्यादि यह सिद्ध करते हैं कि स्वतंत्रता आदोंलन में ब्रिटिश सरकार से 'आधिपत्य' के युद्ध में 'आध्यात्मिक तत्वों' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः कुमारस्वामी द्वारा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की आध्यात्मिक प्रवृत्ति का मूल्यांकन निःसंदेह अभूतपूर्व था।

कुमारस्वमी कहते हैं कि एक सच्चा राष्ट्रवादी एक आदर्शवादी होता है, और उसके लिए संघर्ष का गूढ़तम् हेतु आत्मसाक्षात्कार के प्रति उसकी आग्रहशीलता है। वह अनुभूत करता है कि 'राष्ट्रवाद एक अधिकार से कहीं अधिक एक कर्तव्य है', और राष्ट्रधर्म को धारण करने की परिस्थितियां बौद्धिक दासता के साथ साम्य नहीं रखती हैं। इसी कारण वह स्वयं को और अपने राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिए प्रयासरत होता है।[19]

कुमारस्वामी स्पष्ट कहते हैं कि भारतीय कला के अधःपतन एवं इसके पुनः प्रवर्तन को बाधित करने वाले तथा भारत

की राजनैतिक दक्षता की पुनर्प्राप्ति के मार्ग में बाधक कारक एक ही है। जब तक भारतीय जीवन पुनः राष्ट्रीय संस्कृति की एकता से प्रेरित नहीं होगा राजनैतिक एकता की सत्य प्रतीति संभव नहीं है।

कुमारस्वामी ने भारत की सांस्कृतिक एवं राजनैतिक एकता के बोध हेतु, उसके साक्षात्कार और प्राप्ति के लिये 'राष्ट्रीय शिक्षा' को उद्यम की सही दिशा माना। उनके अनुसार जब तक भारतीय अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारित करने का संपूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त करेंगे, वे न तो सांस्कृतिक रूप से और न ही राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो सकेगें। उनका मानना था कि भारतीय जब तक उस भारतीय शिक्षा को प्राप्त करते रहेंगे जिसका उद्देश्य भारतीयों के अन्दर अंग्रेजी मानसिकता का बीजारोपण करना है तब तक भारत कभी राष्ट्रीय एकता प्राप्त नहीं कर सकता।[20]

कुमारस्वामी के अनुसार स्वतंत्रता संघर्ष के भौतिक और आध्यात्मिक पक्षों का परस्पर एक दूसरे से पृथकीकरण संभव नहीं है। अतः या तो दोनों ही विजयी होंगे या दोनों ही पराजित होंगे। राजनीतिक स्वतंत्रता और पूर्ण उत्तरदायित्व आत्मसम्मान एवं आत्म विकास के लिये अनिवार्य है। उपर्युक्त में विश्वास के साथ यह मानना असहज प्रतीत होता है कि अंग्रेजों की परतंत्रता में क्या भारत कभी इन आदर्शों को प्राप्त कर सकेगा। तमाम उपलब्धियों के बावजूद यह कोई नहीं कह सकता कि भारत में अंग्रेजों का राज्य निरपेक्ष शुभ की अवधारणा पर आधारित है, इसमें लेशमात्र अशुभ नहीं है। अंग्रेजों द्वारा इंगित उपलब्धियों का मूल्य स्वतंत्रता के मूल्य से बहुत कम है, क्योंकि राष्ट्र की नैतिक शक्तियों को यह पक्षाघात की तरह बाधित कर रहा है, परिणामतः उत्तरदायित्व का बोध शून्य हो गया है।

कुमारस्वामी अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रसारित एक लोकलुभावन दावें कि अंग्रेजी राज्य भारतीयों को स्वः शासन के योग्य बना रहा है, में व्याप्त वद्तोवाघात की तरफ इशारा करते हैं। वह कहते हैं कि विदेशी सरकार भारतीयों को उनके उत्तरदायित्व से विमुक्त और लोक कल्याण की भावना से विरत कर उनकी स्वतंत्रता व आत्म निर्भर कार्य करने की क्षमता को अक्षम कर रही है। कुमारस्वामी के अनुसार इंग्लैण्ड ने भारत को जो प्रमुख सबक हाल के दिनों में सिखाया है वह यह है कि राष्ट्र हित में एकता और परस्पर कार्य करने की आवश्यकता होती है। यद्यपि यह अनमोल सीख इंग्लैण्ड ने अपने शासन अथवा स्थापित विश्वविद्यालय में ज्ञान प्रसार के माध्यम से नहीं बल्कि उन परिस्थितियों द्वारा दी जिसमें भारतीयों में आपसी एकता और परस्पर राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख नेता स्वीकार करते हैं कि भारत अपने स्वतंत्रता संघर्ष के माध्यम से स्वतंत्र, आत्म-संयमित और आत्म निर्भर राष्ट्रीय जीवन के सबक सीख रहा है। किन्तु यह कहना अधिक तार्किक होगा कि यह सबक भारत अंग्रेजों की इच्छा और सहायता के बिना सीख रहा है।[21] ऐसे वस्तुपरक विश्लेषण को स्पष्ट रूप से लिखना तो दूर कहना भी अंग्रेज सरकार को कुपित करना था। शिक्षित भारतियों को यथार्थ परिदृश्य से अवगत कराने में इस प्रकार के सारगर्भित लेखनी ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुये कुमारस्वामी कहते हैं कि भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की मांग अंग्रेजों के विरूद्ध उनके घृणा के कारण नहीं वरन् स्वयं अंग्रेजों के हितार्थ उत्पन्न हुई है। क्योंकि भारत अंग्रेजी स्वामित्व की गर्दन में पड़ा एक फंदा है जिसको शायद ही अभी कोई गंभीरता से महसूस कर रहा है। जब अंग्रेजों का एक बौद्धिक वर्ग स्वयं पूरी दुनियां से दासता समाप्त करने के गीत गाता है, तब ब्रिटिश सरकार भारत को कैसे परतंत्र रख सकेगी। कोई भी राष्ट्र निष्ठापूर्वक दो विपरीत आदर्शों पर बिना पाखण्ड के नहीं बढ़ सकता। अंग्रेजों का पाखण्ड उनके दोहरे चरित्र से सार्वजनिक होता है, जब वह एक ओर इटली, जापान, फारस, तुर्की में आदर्शवादी आंदोलनों का खुला समर्थन करते हैं, वहीं अफ्रीका और भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को अपने भौतिक स्वार्थ की प्रतिपूर्ति हेतु बिलकुल विपरीत दृष्टिकोण से देखते हैं। भविष्य में इंग्लैण्ड के लिये यह परिवर्तन स्वयं बेहद हानिकारक सिद्ध होगा। जब भारत से यह अंग्रेज शासक, संरक्षण और अवमानना, दंभ और अलभ्यता का रवैया सीख कर वापस लौटेंगे तब यह ब्रिटेन के आदर्श जीवन की प्रगति में किस प्रकार योगदान करेंगे। किन्तु स्पष्ट रूप से इससे भी अधिक हानिकारक इंग्लैण्ड के नैतिक तंत्र के लिये उसकी आंशिक न्याय प्रणाली है, जो मुखबिरों, पुलिस और जासूसी पर निर्भर है। किन्तु यह एक निर्विवादित सत्य है कि साम्राज्यवाद और सामाजिक सुधार की वकालत एक साथ करना अंसगत है, स्पष्टतया परस्पर विरोधी है।[22]

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के आधारभूत तत्व की तरफ ध्यान आकृष्ट करते हुए कुमारस्वामी ने कहा कि राष्ट्रीय प्रतिभाओं के जागरण के कार्य में हम विश्व में अकेले राष्ट्र नहीं हैं, यह एक वैश्विक घटना है। वस्तुतः कृत्रिम अपरिपक्व

विश्ववाद के विरूद्ध मानवता का आंदोलन है, जो विश्ववाद राष्ट्रों में प्रतिभाओं को उसी प्रकार नष्ट कर रहा है जैसे आधुनिक शिक्षा व्यक्ति में उसकी विशेष प्रतिभा का दमन कर देती है।

कुमारस्वामी ने राष्ट्रवाद की तत्कालीन वैश्विक सहसंबद्धता के विषय में प्रकाश डालते हुए उसके उद्देश्य की एकता और आदर्श का सूक्ष्म विश्लेषण किया। भारतीय शिक्षित वर्ग का आवाहन करते हुये भारतीय राष्ट्रवाद की दिशा, दशा, चरित्र एवं आदर्श का सम्यक निरूपण किया तथा भारतीय राष्ट्रवाद को वैश्विक राष्ट्रवादी आंदोलन से जोड़कर आत्मसात करने का प्रयास किया जो बाद में हमें सुभाष चन्द्र बोस की राष्ट्रवादी परिकल्पना और कार्य योजना में परिलक्षित होता है।

आयरलैंण्ड की गेलिक लीग द्वारा जारी की गई पुस्तिका से एक छोटे से अंश को भारतीयों के लिये संदेश रूप में उद्धृत करते हुये लिखाः "हम सभी भारतीय हैं, अतः हमारे व्यक्तित्व की संभावित पूर्णता भारतीय प्रकृति एवं चरित्र के विकास में ही निहित है, जो हमें अपने गौरवशाली पूर्वजों से विरासत में मिली है। वास्तविक विकास की सदियों ने, सभ्यता का, सभी श्रेष्ठ आदर्शों के प्रति उदात्त निष्ठा का, जिसकी वंदना पुरूष कर सकते है, भारत के राष्ट्रीय चरित्र को सदैव के लिए स्थापित कर दिया है। अगर हम उस चरित्र के प्रति सत्यपूर्वक समर्पित नहीं हैं, अगर हम वास्तविक रूप से भारतीय नहीं है, हम कभी श्रेष्ठ पुरूष नहीं हो सकते, पूर्ण और बली, जो एक ईमानदार व्यक्ति के समान ईश्वर और मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य निभाने में सक्षम हों। हमारे पूर्वज हमारे सबसे उत्तम मॉडल और पैटर्न है, वह अकेले ही हमें दिखा सकते हैं कि क्या हमारी सामान्य भारतीय प्रकृति होनी चाहिये। हमें उनकी महानता और सद्गुणों का अनुकरण करना चाहिए; सही और उपयुक्त मायनों में वे स्नेही और श्रद्धावान ही अनुकरण के योग्य है, क्योंकि वह अपने समय के सुविख्यात व्यक्ति थें, पवित्रता के उच्चतम् शिखर को प्राप्त महापुरूष, महान भारतीय प्रतिभायें, अध्ययन-अध्यापन, वीरता और पराक्रम के अनुराग से परिपूर्ण, ऋषि, विद्वान, योद्धा?..... अपने पूर्वजों को देखिये, उनके बारे में पढ़िए, उनके बारे में बतायें, किन्तु अयोग्य भिक्षुक की वाकपटुता से नहीं, न ही अशिष्टता पूर्वक अपने गौरवमय अतीत के बारे में शेखी बघारना चाहिए। जबकि हम वर्तमान में शर्मनाक पतन की अवस्था को प्राप्त हैं, और क्षुद्र विवादों में तो बिलकुल नहीं जहाँ भाड़े के झूठ बोलने वाले हमारे प्रिय भारत को कलंकित करते हों, बल्कि उनसे वह सीखों जो तुम्हें सीखना चाहिये, जो ईश्वर ने भारतीयों के लिये नियत किया है।"[23]

कुमारस्वामी भारतीय बुद्धिजीवियों से आग्रह करते हैं कि विश्व के अन्य राष्ट्र हमारी तरफ आदर्श जीवन के प्रति प्रतिबद्धता हेतु देखते हैं, हमारा उत्तर क्या होगा-सत्य या असत्य, इसी पर एक राष्ट्र के रूप में हमारा अस्तित्व निर्भर करेंगा।

सत्य के धरातल पर यथार्थ का दिग्दर्शन कराती कुमारस्वामी की यह विचार श्रृंखला, कितने अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर स्वतः दे देती है। सच्चे अर्थों में यथार्थ राष्ट्रवाद की नींव रखने में कुमारस्वामी के विचारों ने जो अलभ्य कार्य किया उसका समग्रता में अध्ययन किया जाना शेष है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के गाँधी युग के पूर्व, जब स्वदेशी और बॉयकाट आंदोलन अपनी तीव्रता में मंद हो चले थे, मुस्लिम लीग का उद्भव और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सूरत अधिवेशन के पश्चात् क्षीण हो दो गुटों में विभाजित हो चुकी थी।[24] तिलक की पैनी लेखनी को साम्राज्यवादी कुचक्रों ने शिथिल कर दिया था, और टैगोंर, अरबिन्द आदि भी कुछ विशेष नही कर पा रहे थे। ऐसे समय में कुमारस्वामी ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के वैचारिक पृष्ठभूमि की न केवल वकालत की बल्कि भारतीयों को राष्ट्रवाद का गहन अर्थ, आदर्श और उसे प्राप्त करने का मार्ग बताया। उन्होंने भारतीयों को अपने राष्ट्रीय गौरव-गाथा, परम्परा, अतीत, कला, संस्कृति, विज्ञान के प्रति प्रेरित किया तथा व्यर्थ की शेखी बघारने से भी सावधान किया। उन्होंने यह बताया कि किस प्रकार साम्राज्यवादियों और उपनिवेशवादियों ने भाड़े के इतिहासकारों के साथ मिलकर भारतीय इतिहास, परम्परा, संस्कृति को कंलकित करने का षड्यंत्र किया जिससे भारतीय अपनी गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत को आत्मसात करके ही बच सकते है न कि आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करके या अंग्रेजों के प्रति घृणा और हिंसा करके। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार था जिसकों कालान्तर में महात्मा गाँधी द्वारा अपनाया गया और भारतीयों को काफी हद तक उनके संस्कारों से जोड़ने में वह सफल रहें। कुमारस्वामी का दूसरा महत्वपूर्ण विचार जो उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय पटल पर स्पष्ट रखा, जो बाद में अहिंसात्मक स्वतंत्रता संघर्ष का अभिन्न अंग बना रहा, वह यह था कि- "सेवा" राष्ट्रवाद का या राष्ट्र प्रेंम का उच्चतम् आदर्श है-और जब तक

भारत राजनैतिक या आध्यात्मिक रूप से पाश्चात्य सभ्यता द्वारा पीड़ित रहेगा वह इसे कभी प्राप्त नहीं कर पायेंगा, अतः भारत अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये बाध्य है। आत्मा के विकास हेतु स्वतंत्रता का महत्व के.सी. भट्टाचार्य जैसे उद्‌भट आधुनिक भारतीय दार्शनिक ने भी स्वीकार किया है। कुमारस्वामी ने स्वतंत्रता संघर्ष में संवाद की परम्परा को गतिशील रखते हुए अंग्रेज सम्राज्यवादियों को भी संदेश दिया कि भारत अपनी स्वतंत्रता उनकी सहमति और सहयोग से प्राप्त करेगा, किन्तु यदि यह उनकों स्वीकार नहीं होगा तो उनकी सहमति के बिना और प्रतिरोध के विरूद्ध प्राप्त करेंगा। यह विचार भी गाँधीवादी युग में भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का मुख्य अस्त्र रहा विशेंषकर अहिंसात्मक आंदोलनों की नीवं को इसने दृढ़ता प्रदान की।

कुमारस्वामी ने अपनी कालजयी कृति 'एसेज इन इंडियन आईडिलिज्म' (1908) के प्रथम निबंध 'दी डीपर मीनिंग ऑफ दी स्ट्रगल' में पहली बार सीधे भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष पर अपनी लेखनी को संवाद रूप में प्रस्तुत किया।[25] इस निबंध के माध्यम से राष्ट्रवादियों के सामने स्वतंत्रता संघर्ष का अर्थ, प्रकृति, आदर्श तथा दशा और दिशा सम्बन्धी कुछ यक्ष प्रश्न प्रस्तुत किये और उसके समाधान भारतीय परम्परा में निहित आदर्शवाद के अनुरूप देने का प्रयास किया। तत्कालीन भारत की राजनैतिक दशा, अराजकता का वातावरण, बंगाल विभाजन, सरकारी दमन चक्र, अभिव्यक्ति की आजादी का दमन, प्रेस की आजादी का दमन, बम के धमाके, राजनैतिक सुधार के कुछ प्रयास आदि अराजक वातावरण, जिसे ''अनरेस्ट इन इंडिया''की उपमा से संबोधित किया गया, के मध्य कुमारस्वामी आंदोलनकारियों से सीधा और सटीक प्रश्न करते हैं कि उनके संघर्ष का हेतु और उद्‌देश्य क्या है?

सन् 1905 के बंगाल विभाजन के परिणामस्वरूप स्वदेशी और बॉयकाट आंदोलनों की पृष्ठभूमि में आगे बढ़ता भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष जो अंग्रेजी साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य की प्राप्ति की अवधारणा या पूर्ण रूपेण राजनैतिक जन संघर्ष की अवधारणा में बटकर सन् 1907 के कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में विभाजित हो गया था। सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना ने अंग्रेजों द्वारा बंगाल विभाजन के षड्‌यंत्र को और व्यापक सांप्रदायिक भूमि प्रदान की।

सन् 1908 आते-आते स्वदेशी आंदोलन मंद पड़ने लगा, फिरंगी सरकार के दमन चक्र ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा दूसरा इतने बड़े बहुआयामी जन आंदोलन के पास कोई चमत्कारिक नेतृत्व नहीं था, जो स्वदेशी आंदोलन के विश्राम और संघर्ष की अवस्था को दिशा प्रदान करें, जो कि स्वतंत्रता संघर्ष में बाद के वर्षों में गाँधीजी, मालवीयजी, पटेल आदि के नेतृत्व में प्राप्त हुआ। जिस सांस्कृतिक-धार्मिक पृष्ठभूमि ने स्वदेशी और बॉयकाट आंदोलनों को गतिमान् करने में महती भूमिका निभायी उसकी जड़ में संप्रदायिकता का बीजारोपण करने में फिरंगी सरकार कामयाब रही क्योंकि अंग्रेजो को नवाब सलीमुल्ला जैसे लोग आराम से मिल गये। परिणामतः धीरे-धीरे स्वदेशी आंदोलन की प्राणवायु मंद पड़ती गयी। आंदोलन में नरमपंथियों और चरमपंथियों के साथ साथ क्रांतिकारियों का भी उदय हुआ जिसने व्यक्तिगत वीरता, उत्सर्ग और आत्म बलिदान हेतु नवयुवकों को प्रेरित किया। यद्यपि अंग्रेज सरकार आज़ादी की लौ को पूर्णतया बुझानें में कामयाब नहीं हो पायी, किन्तु उन्होंने तात्कालिक रूप से उक्त आंदोलन को दिशा हीन करने में आंशिक सफलता प्राप्त कर ली थी और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत में अराजकता और अशांति के चित्रण के मध्य ब्रिटिश सरकार की उपादेयता और औचित्य को भारत के हित में सिद्ध करने का प्रयास जारी रहा।

अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के बौद्धिक आयाम को चोट पहुंचाने, भारतीयों को स्वशासन के लिए सर्वथा अयोग्य दिखाने के षड्‌यंत्र के खिलाफ कुमारस्वामी ने मोर्चा खोला। एक तरफ उन्होंने भारतीय बौद्धिक वर्ग, राजनैतिक विचारकों, स्वतंत्रता सेनानियों आदि को अपनी लेखनी के माध्यम से एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया-उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की प्रकृति और दिशा निर्धारित करने में अतीत और वर्तमान के उदाहरणों से सीख लेने की प्रेरणा दी, तथा दूसरी तरफ ब्रिटेन में बैठी अंग्रेजी हुकूमत से भारत के साथ किये जा रहें भेदभाव को समाप्त करनें और शासक होने के नैतिक कर्तव्यों को पूरा करने का आग्रह किया। सच्चे अर्थों में कुमारस्वामी अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज को शिक्षित कर रहे थे। स्वदेशी आंदोलन को दिशा हीन होते देख कुमारस्वामी भारतीयों से प्रश्न किया यह अंशाति और अराजकता किस प्रकार के संघर्ष का लक्षण है, और उसका क्या उद्‌देश्य है। प्रकारान्तर से उनका आंदोलन से जुड़े बड़े कद के राष्ट्रीय नेतृत्व से आंदोलन की एकता और इसके लक्ष्य में समता लाने हेतु पुनर्चिन्तन करने का अनुरोध था।

'भारत भारतीयों के लिए है' जैसे आंदोलनकारियों के

लोकप्रिय नारों की सत्यता को स्वीकारते हुए कुमारस्वामी भारतीयों से प्रश्न करते हैं-क्या हमारे पास यही सर्वोत्तम आदर्श है या यही सर्वोत्तम आदर्श हो सकता है। वह 'वसुधैव कटुम्बकम' जैसे विचार पैदा करने वाली पुण्य भूमि भारत से संकीर्णता पर विराम लगाने का आवाहन करते हैं। उन्होंने आंदोलनकारियों से पूछा क्या हम मात्र राजनीतिक अधिकार और व्यावसायिक समृद्धि के लिये संघर्षरत हैं या हम सच्ची राष्ट्र सेवा हेतु आत्म साक्षात्कार, जो बिना स्वतंत्र हुए प्राप्त नहीं हो सकता, के लिये युद्धरत हैं। अगर हम महान विचारों की प्राप्ति के लिये संघर्ष कर रहे हैं तो विजय निश्चित है। किन्तु, यदि हमारा उद्देश्य मात्र भौतिक संसाधनों के नियंत्रण पर अधिकार करना है, तो विजय हो भी सकती है और नहीं भी। अगर हम भौतिक संसाधनों के संघर्ष में विजयी हुये तो इसका मानवता के लिये कोई बड़ा अर्थ नहीं रहेगा, परन्तु यह उससे ज्यादा महत्व रखेगा कि स्वतंत्रता संघर्ष में हमने भारतीय संस्कृति के महान आदर्शों को मरने दिया या इन आदर्शों के लिये हमने संघर्ष किया। इसी विचार के साथ भारतीय राष्ट्रवाद अनिवार्य रूप से सरोकार रखता है और इसी आधार पर भारत का भविष्य एक राष्ट्र के रूप में निर्भर करेगा।[26] कालातंर में कुमारस्वामी का प्रत्येक विचार सत्य साबित हुआ, स्वतंत्रता संघर्ष में हमारे राष्ट्रीय आदर्शों का जितना क्षरण हुआ उतना ही अधिक हमारी अंग्रेजों पर विजय खोखली साबित हुई, राष्ट्रीय एकता के लिये हमारा संघर्ष अंग्रेजों को भारत से भगाने के बाद भी जारी रहा।

कुमारस्वामी ने स्पष्ट कहा था कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एक वैश्विक संघर्ष का हिस्सा है, जो साम्राज्यवाद के आदर्शो और राष्ट्रवाद के मूल्यों के मध्य है। उपर्युक्त दोनों आदर्शों में से विश्व को एक का चयन करना है और इसी पर अनिवार्य रूप से मानवता की स्वतंत्रता, आने वाले भविष्य की सभ्यता की महानता और समृद्धि निर्भर होगी।

कुमारस्वामी के अनुसार राष्ट्रवाद की विचारधारा अंतर्राष्ट्रवाद की अवधारणा से अवियोज्य है। यह अन्य राष्ट्रों की संप्रभुता को स्वीकार करती है एवं उसका आदर करती है। ब्रिटेन के बारे में तो नहीं कहा जा सकता पर भारतीयों का आदर्श यही राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद होना चाहिये। हमारी निष्ठा एक ऐसे भारत राष्ट्र के प्रति होनी चाहिए जो राजनैतिक, आर्थिक और बौद्धिक रूप में स्वतंत्र हों। हम 'भारतीयों के लिए भारत' की अवधारणा में विश्वास रखते हैं, पर यह विचार मात्र इसलिए नहीं कि हम अपने लिए अपना भारत चाहतें हैं, बल्कि हम यह विश्वास करते हैं कि मानव सभ्यता की प्रगति की लम्बी कहानी में हर राष्ट्र को अपना किरदार स्वयं निभाना है और वह राष्ट्र जो अपने स्वयं के व्यक्तित्व और चरित्र को विकसित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है, वह मानव संस्कृति के उस योग में अपना योगदान करने में असमर्थ है, जिसकी विश्व उससे अपेक्षा करता है।

विश्व के साम्राज्यवाद को कुमारस्वामी स्पष्ट संदेश देते हुए कहते हैं कि उनके मानवता विरोधी कृत्यों द्वारा प्राकृतिक विविधता को एकरूपता द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है, जो विश्व के स्वास्थ के लिए हानिकारक है। प्रभुत्वशाली राष्ट्रों को यह स्वीकार करना होगा कि एक राष्ट्र भी किसी व्यक्ति की तरह अपने आप में साध्य है, साधन नहीं। प्रभुत्वशाली राष्ट्रों को यह अनुभव करना होगा कि अन्य राष्ट्रों पर उनके स्वामित्व को अंततः औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता, क्योंकि जिस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर अपने स्वामित्व को न्यायोचित सिद्ध नहीं कर सकता। किसी व्यक्ति के उत्तरदायित्व को वापस ले कर उसके चरित्र का निर्माण नहीं किया जा सकता है।[27]

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उत्तरोत्तर चरणों में कुमारस्वामी के विचारों की सार्थकता स्वतः दृष्टिगोचर होती है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिकांश बुद्धिजीवियों और स्वयं महात्मा गाँधी के विचारों में राष्ट्रीय आंदोलन के चरित्र की नैतिक और वैचारिक नींव इन्हीं सुदृढ़ सिद्धांतों पर रखी गई परलक्षित होती है।

भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों को भी कुमारस्वामी सचेत करते हुए कहते हैं कि भारतीय राष्ट्रीयता के पथ पर अनेक कठिनाइयाँ वास्तविक हैं। यदि अंग्रेज सरकार भारतीय राष्ट्रवाद की एकता, भारत की एक राष्ट्र के रूप में परिकल्पना और उसकी अध्यात्मिक और नैतिक आदर्श में निहित संभावना को स्वीकार नहीं करती है, तो भारतीयों को इसका प्रतिउत्तर खोजना चाहिए। राष्ट्रवाद के आदर्शों को प्राप्त करने का प्रयास मात्र अधिकारों की प्राप्ति नहीं वरन् राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों की पूर्ति है, जिसके अभाव में आत्म साक्षात्कार संभव नहीं है। भारत का विश्व सभ्यता के विकास में योगदान भारतीयों को यह संदेश नहीं देता कि उनका कार्य पूर्ण हो चुका है बल्कि भारतीयों को यह जानना चाहिए कि अभी कई कार्य पड़े हैं जो उनके द्वारा नहीं किये गये तो अधूरे रह जायेंगे। भारतीयों को आधुनिक परिवेश में जीवन को पुनः संगठित करना होगा। उनको यह दिखाना

होगा कि औद्योगिक उत्पादन समाजवादी शैली में संपूर्ण विश्व को बिना राज्य स्वामित्व कारखानों में परिवर्तित किये संभव है।[28] महान और सुन्दर नगर का निर्माण पुनः हो सकता है जो वायु और रासायनिक प्रदूषण से मुक्त होंगे तथा जहाँ मनुष्य स्वामी होगा, उस तंत्र का दास नहीं जिसे उसने स्वयं सृजित किया है।

यह भारतीयों को दिखाना है कि भौतिक विज्ञान की नई खोजों की पृष्ठभूमि में, चेतना के उच्च आयामों में, विज्ञान और विश्वास में कोई विरोध नहीं है। पश्चिम की धार्मिक अवधारणा को बौद्धिक और आध्यात्मिक बनाना हमारा कार्य है। धार्मिक सहिष्णुता का सही अर्थ प्रकट करना कि धार्मिक सहिष्णुता मात्र उत्पीड़न से परहेज करना नहीं बल्कि इस तथ्य में विश्वास है कि सभी धर्म ईश्वर को प्राप्त करने के एक मार्ग हैं। गीता के सार को उद्धृत करते हुए कुमारस्वामी भारतीयों को स्मरण करातें हैं कि एक मनुष्य को अपना कर्तव्य करना बेहतर है, यद्यपि महत्वहीन ही क्यों न हो, दूसरे व्यक्ति के कर्तव्य को श्रेष्ठता से निष्पादित करने की तुलना में। भारतीयों को नये उभरते विश्व में व्यर्थ की चकाचौंध से बचने की चेतावनी देते हुए कहते हैं कि विश्व की समस्त संप्रभुता का क्या लाभ अगर हम अपनी आत्मा ही खों दें। हमें अपने कर्तव्यों को एक दूसरे दृष्टिकोण से भी समझना चाहिए। क्या अतिथि सत्कार के प्राचीन सद्गुणों के प्रति हमारा कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। यह भारतीयों के लिए शर्म की बात होगी अगर जो भारत के अतीत के प्रति श्रद्धा रखते हैं, उससे सीखना चाहते हैं खाली हाथ वापस जायें।[29]

तात्कालिक कटु सत्य को उजागर करते हुए कुमारस्वामी लिखते हैं कि भारत में सामाजिक अर्थव्यवस्था का छात्र विघटन की प्रक्रिया में उच्च संगठित समाज को ढूढ़ता है, बिना किसी गंभीर और रचनात्मक प्रयास के जो बदली परिस्थितियों में भारतीय समाज को पुनः संगठित करें। इसी प्रकार स्थापत्य विज्ञान का छात्र परम्परा को जीवित तो पाता है, पर उसे उपेक्षित देखता है, भारतीय धनिकों को अंग्रेजों के महल और फ्रेंच विला की नकल करते पाता है, जबकि महान संरचना के निर्माण का ज्ञान रखने वाले विश्वकर्मा अभी जीवित हैं, जिसका विश्व साक्षी है। ललित कला के छात्र को नवीनतम् यूरोपीय शैली की घटिया नकल दिखाई देती है,[30] जबकि उसे कुछ नया और जीवंत रहस्योंद्घाटन करना चाहिए। जब भारत के पारंपरिक शिल्पकारों को किस प्रकार बर्मिंघम और मैनचेस्टर की यांत्रिक अश्लीलता ने रोजगार से बाहर कर दिया जो बिना किसी प्रयास के आने वाले भविष्य के लिए उस कला को संरक्षित रखते, जिसका कभी विश्व की प्रशंसा पर आधिपत्य था। बाहर से आने वाले संगीतकार अब भारत में ग्रामोफोन और हारमोनियम सुनते हैं,[31] धर्म के जिज्ञासु अब भारत में कठोर भौतिकवाद को तर्कपूर्ण तत्व मिमांसा के स्थान पर प्रतिष्ठित पाते हैं। स्वतंत्रता के प्रेमी ऐसे लोगों को देखता हूँ जिन्हें बिना मुकदमें अनिश्चित काल के लिए कैद या निर्वासन किया जा सकता है, और फिर भी इस अधर्म का पर्याप्त प्रतिरोध करने में भी भारतीयों में आपसी एकता की कमी है। एक वाक्य में कहा जाए तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के दृष्टिकोण को बृहद करने के लिए प्रयासरत है, लेकिन भारतीय दर्पण मे उसे अपना ही चेहरा विकृत दिखाई देता है।

इस अमानवीय कायरता के अंधकार से मातृभूमि की पुकार हम भारतीयों को जगाती है। हम अभिज्ञ है कि हममें श्रेष्ठता अभी भी सुप्तावस्था में शेष है, किन्तु जागृत अवस्था कब प्राप्त होगी कुछ नहीं कह सकते। किन्तु कम से कम एक बात निश्चित है कि यह जागृति किसी पूर्वाग्रहित व्यक्तित्व की नहीं वरन् एक स्वतंत्र राष्ट्र की अभिव्यक्ति-जो शुभ से परिपूर्ण, स्थिर उद्देश्य, पूर्ण शक्तिमय होगी। इसी के लिए हम भारतीय आंदोलनरत हैं, इसके लिए हमें पीड़ा को सहन करना होगा; और इसी में स्वतंत्रता के लिए महान भारतीय संघर्ष का गहन अर्थ निहित है।[32]

निष्कर्ष : बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के अंतिम वर्षों में, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के गाँधी युग से पूर्व जब स्वदेशी आंदोलन की गति मंद होने लगी थी, तिलक और टैगोर भी इस समय कुछ विशेंष नहीं कर पा रहें थे। तब अखण्ड भारतीय सनातनी संस्कृति के आत्मगौरव, उसके आदर्शों, उसके संकल्प की गर्जना को सागर सी धैर्यता के साथ विश्व पटल पर प्रस्तुत करने का श्रेय कुमारस्वामी को है। कुमारस्वामी नें हीन दृष्टि से देखे जाने वाली भारतीय कला-संस्कृति को विश्व की उच्च कोटि की कला-संस्कृति के साथ अग्रणी पंक्ति में न केवल स्थापित कर दिया बल्कि भारतीय कला-संस्कृति पर उसकी मौलिकता के विषय में प्रश्न चिन्ह् लगाने वाली ग्रीक प्रभाव की अवधारणा को भी सदैव के लिये निस्तेज कर दिया।

जब उपर्युक्त वर्णित भारतीय राष्ट्रीय परिदृश्य के आलोक में आनन्द केंटीश कुमारस्वामी के योगदान पर हम समग्र दृष्टि डालते हैं तो कुछ अत्यन्त सारगर्भित विचारों एवं तथ्यों से हमारा संवाद होता है। बंगाल विभाजन की त्रासदी के

फलस्वरूप उत्पन्न स्वदेशी आदोंलन के ताप ने पेशे से भू-गर्भ शास्त्री कुमारस्वामी को भारतीय कला-संस्कृति, धर्म-दर्शन एवं तत्व मीमांसा, के क्षेत्र की एक विराट अभिव्यक्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया। कुमारस्वामी के भागीरथ पुरूषार्थ ने भारतीय कला-संस्कृति में निहित अर्थगहन परम सत्य को पुनः यथार्थ रूप में परिभाषित किया तथा वैश्विक पटल पर उसकी कान्ति को पुनः स्थापित किया। यह कुमारस्वामी की कला साधना का प्रभाव था कि तीस वर्षों तक अमेरिका जैसी यांत्रिक संस्कृति, जिसकी तत्व मिमांसा 'अवसरवाद' और 'व्यवहारवाद' की धुरी पर गतिमान् थी, के मध्य अवस्थित रह कर भी सनातन भारतीय संस्कृति के परचम को फहराते रहें। उनके प्रयास से आधुनिक काल में अखिल विश्व में भारतीय कला-संस्कृति की महानता को सभी ने एकमत से स्वीकार किया। परिणामतः अंग्रेज शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारत नये विश्व में एक सांस्कृतिक शक्ति के रूप में अपना स्थान पुनः प्राप्त कर चुका था। यद्यपि उनके भारत प्रेंम, देशभक्ति, भारतीय स्वतन्त्रता आदोंलन में योगदान को आधुनिक भारतीय इतिहासकारों नें अपनी लेखनी में समुचित स्थान नहीं दिया। किन्तु राष्ट्रीय आंदोलन के चरित्र की नैतिक और वैचारिक नींव में कुमारस्वामी के योगदान का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

संदर्भ

1. सिंह शिव भानु, 'समाज दर्शन का सर्वेक्षण', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003, पृ. 150-151।
2. Chandra, Bipan, et al., India's Struggle For Independence: 1857-1947,Penguin Books, New Delhi, pp.124-134.
3. Smith, V.A., *'The Early History of India'*, Oxford University Press, New Delhi, 1999.
4. Lal, Makkhan, *'Ancient India'* (NCERT), National Council of Educational Research and Training, New Delhi, 2002, p.12.
5. Ibid.
6. Ibid.
7. Sreedharan, E., *'A Textbook of Historiography: 500 BC to AD 2000'*, Orient Longman, New Delhi, 2004 p. 402.

- Also see, Partha Mitter., *'Much Maligned Monsters: A History of European Reaction to Indian Art'*, London, 1977, p.173.
- Lal, Makkhan, op.cit. p.11.

8. Ibid, p. 403.
9. Ibid, p. 404.
10. Chakrabarti, D.K., A History of Indian Archaeology: from the beginning to 1947, Munshiram Manoharlal Publisher, New Delhi, 2001, p.16, 43.
11. Singh, Upinder, *'The Discovery of Ancient India'*, Permanent Black, Delhi, 2004, pp. 341-345.
12. Sharma, Ram Sharan, *'Ancient India'* (NCERT),National Council of Educational Research and Training, New Delhi, 1999, p.6.
13. Ibid, p.6
14. Coomaraswamy, A.K., *'Essays in National Idealism'*, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1981, p.i.
15. Bagchee, Moni, *'Ananda Coomaraswamy: A Study'*, Bharata Manisha, Varanasi, 1977, p. 61.
16. Coomaraswamy, A.K., *'Dance of Shiva'*, Asian Publishing House, Bombay & Calcutta, 1981, pp.37-38.

- Aslo see,

a- http://sacredweb.com/online_articles/sw42_gudas_sample.pdf

b- http://www.kiplingsociety.co.uk/ poems_ eastwest.htm#:~:text=Oh%2 C%20East%20is%20East%2C% 20and,the%20ends%20of%20the%20earth

17. Coomaraswamy, A.K., 1981, op.cit. p.ii.
18. Ibid. p. ii.
19. Ibid. p. ii
20. Ibid, p.iv, 96-108, &186-200,
21. Ibid, p.v.
22. Ibid, p.vii.
23. Ibid, p.viii.
24. Chandra, Bipan, op. cit. pp.135-145.
25. Coomaraswamy, A.K., 1981, op.cit. pp. 1-6.
26. Ibid, p.2.
27. Ibid. p. 2
28. Ibid, p.4.
29. Ibid, p.5.
30. Ibid, pp153-165.
31. Ibid, pp.186-206.
32. Ibid, p.6.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021 UGC-CARE List-Social Sciences

लोकतंत्र में जनमत निर्माण पर सोशल मीडिया का प्रभाव : एक अध्ययन

❑ डॉ रचना गंगवार

सूचक शब्द : सोशल मीडिया, जनमत, मास मीडिया, न्यू मीडिया

न्यू मीडिया ने पूरे विश्व में एक क्रांति ला दी है। आज पूरा विश्व सूचनाओं के भंडार पर खड़ा है। हर न्यू मीडिया यूजर वैश्विक स्तर पर अपनी बात पहुँचाने में सक्षम है। विशेषकर सोशल मीडिया इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है फिर वो चाहें सोशल वेसीटेस हों या सोशल एप्स हो। हर जगह सूचनाओं की भरमार है। वहीं सोशल मीडिया पर प्रसारित खबरों के माध्यम से जनमानस के विचारों को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि न्यू मीडिया जनमत निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। सोशल मीडिया किसी भी विषय पर आम जन में चर्चा को प्रारंभ करके उस विषय पर एक आम राय बनाने का प्रयास करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस बात को खोजने का प्रयास किया गया है कि किस तरह सोशल मीडिया पर होने वाली चर्चायें उस विषय पर एक सहमति बनाने में सफल रही हैं? क्या कारण है कि सोशल मीडिया बहुत ही तीव्र गति से लोगों के जीवन में अपना स्थान बना रहा है? किस प्रकार आज सोशल मीडिया, मुख्य धारा के मास मीडिया के लिए एक चुनौती बनता जा रहा है।

किसी भी देश या समाज के विकास में जनमत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जनमत और लोकतंत्र का गहरा सम्बन्ध है। जब हम भारत जैसे विकासशील लोकतान्त्रिक देश के सन्दर्भ में जनमत को देखते हैं तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार जनता की सहमति पर ही आधारित होती है। अतः लोकतंत्र में जनमत का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जनमत निर्माण की प्रक्रिया में किसी भी देश में उपलब्ध जनसंचार माध्यमों की अहम् भूमिका होती है। समाज में जनमत निर्माण की प्रक्रिया नयी नहीं है। जब आधुनिक जनसंचार माध्यम उपलब्ध नहीं थे तब लोक-संचार माध्यमों द्वारा आम जनता से संचार स्थापित किया जाता था। जैसे-जैसे जनसंचार माध्यमों का विकास होता गया वैसे-वैसे ये माध्यम आम जन के बीच में अपना स्थान बनाते गए। प्रिंट माध्यम जैसे -समाचार पत्र, पत्रिकाएं आदि, रेडियो, टीवी, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि इलेक्ट्रानिक माध्यम विकसित होने से जनसंचार की प्रक्रिया को गति मिलती गई। जनमत और जनसंचार माध्यमों में गहरा सम्बन्ध है क्योंकि आम जनता से संवाद स्थापित करने के लिए जनसंचार माध्यम ही सबसे प्रभावी एवं शक्तिशाली साधन है।

जनसंचार माध्यमों ने आम जन तक किसी भी सन्देश की पहुँच को बहुत सरल बनाया है। कभी सीधा संवाद करके, कभी खबरों के माध्यम से, कभी विज्ञापनों द्वारा आम जनता में जनसम्पर्क बनाने का काम बहुत सी राजनीतिक पार्टियां, नेता, सेलिब्रिटीज आदि बहुत समय से कर रहे हैं जिसका असर भारतीय समाज पर सन् 1947 के बाद से स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। सन 1995 से भारत में इंटरनेट के आगमन के बाद से सूचना प्रवाह की दिशा ही बदल गयी। इंटरनेट ने आम जनता से सीधे संवाद को सिर्फ तीव्र गति ही नहीं दी है बल्कि हर आम आदमी को पत्रकार की भूमिका में लाकर खड़ा कर दिया है। आज सोशल मीडिया आम आदमी तक पहुँचाने का सबसे सरल और सहज माध्यम है । सोशल मीडिया ने संचार की प्रक्रिया को गतिशील और शक्तिशाली बनाया है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स, (फेसबुक, ट्विटर आदि) ब्लॉगिंग, कू, चैटिंग,ऑडियो-वीडियो शेयरिंग, सोशल एप्स (व्हाट्सएप्प आदि) संचार के विकल्पों ने संचार प्रकिया में द्विपक्षीय संवाद को स्थापित किया है। सोशल मीडिया ने जनमत निर्माण की प्रकिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। सोशल मीडिया ने शहरी क्षेत्रों में ही नहीं ग्रामीण क्षेत्रों भी अपना स्थान बना लिया है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स में फेसबुक तथा सोशल एप्स में व्हाट्स एप्प सबसे ज्यादा प्रिय और उपयोग किया जाने वाला सोशल मीडिया है। संचार की प्रक्रिया में प्रतिउत्तर (फीडबैक) की महत्वपूर्ण

❑ सहायक प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, बी.बी.ए.यू ., लखनऊ (उ.प्र.)

भूमिका है। जनसंचार माध्यमों में फीडबैक के लिए या तो स्थान नहीं है या विलम्ब से फीडबैक प्राप्त होता है। सोशल मीडिया ने जनसंचार माध्यमों की इस कमी को समाप्त किया है। सोशल मीडिया ने इसके उपभोक्ताओं को प्रतिउत्तर का विकल्प देकर द्विपक्षीय संवाद को बढ़ावा दिया है। सूचनाओं के आदान प्रदान की प्रक्रिया को विश्वसनीय एवं मजबूत किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार सोशल मीडिया आम जनमानस के विचारों में परिवर्तन ला रहा है। सोशल मीडिया ने इसके उपयोगकर्ताओं को सीधे संवाद का अवसर दिया है। उपयोगकर्ता अपने सारे किन्तु - परन्तु के उत्तर सोशल मीडिया पर तलाश कर रहा है। सोशल मीडिया, समाज में होने वाली घटनाओं, मुद्दों पर एक जन चर्चा स्थापित करने में सफल रहा है। किसी भी मुद्दे से यह इस प्रकार जोड़ता है कि कभी-कभी उपभोक्ता पत्रकार की भूमिका में दिखायी देने लगता है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान समय में जनमत निर्माण की प्रकिया में सोशल मीडिया किस तरह की भूमिका निभा रहा है इस विषय को खोजने का प्रयास किया गया है।

साहित्य समीक्षा : लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार, जनमत की सहमति पर आधारित होती है। ऐसा भी कहा जाता है कि लोकतंत्र से तात्पर्य जनता की सरकार है अथवा ऐसी सरकार है, जिसमें प्रभुसत्ता आम जन मानस में निहित है। तात्पर्य यह है कि निर्णय करने की सर्वोच्च शक्ति जनता में समाहित है। ऐसी शक्ति जिसके ऊपर किसी अन्य शक्ति का प्रभाव नहीं हो सकता। लोकतंत्र में इस सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग उस लोकतंत्र की जनता करती है परन्तु व्यवहार में जनता द्वारा इस सर्वोच्च शक्ति के प्रयोग की एक विशेष प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा नागरिकों को सरकार में भागीदार बनाये जा सकने की सुविधा होती है। लोकतांत्रिक सरकार पर जनता का नियंत्रण होता है और जब जनता चाहती है तभी तक सरकार सत्ता में रह सकती है।

लोकतंत्रिक व्यवस्था का प्रारम्भ सत्रहवीं-अठारहवी सदी ई0 में यूरोप में महान क्रान्ति में हुआ। फलस्वरूप विकास की एक नई प्रक्रिया आरम्भ हुई। इनमें इंग्लैण्ड की ग्लोरियस रिवोल्यूशन (गौरवपूर्ण क्रांति) तथा फ्रांस की क्रांति प्रमुख हैं। राजतंत्र के युग में यह विश्वास किया जाता था कि राज्य की समस्त शक्तियाँ व्यक्तिगत रूप से राजा में निहित थीं। कानून का एकमात्र स्रोत भी वही था। जनता के द्वारा व्यवस्था में भारी बदलाव लाया गया तथा इस व्यवस्था के विरूद्ध विरोध का नारा दिया गया। बदलाव की प्रक्रिया के द्वारा जनता ने एक नई परम्परा कायम की चाहे वह व्यक्ति राजा ही क्यों न हो। इसी के अधीन अधिकारों के घोषणा पत्र तैयार किए गये। इसी के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई कि इनकी अवहेलना सरकार भी न कर पाए। फलस्वरूप उत्तरदायित्व के सिद्धांन्त का विकास हुआ जिसका अभिप्राय यह था कि सरकार नागरिकों के प्रति उत्तरदायी होगी समस्त नागरिकों को अपना मतदान करने का अधिकार प्राप्त हुआ, जिसके अंतर्गत वे अपनी मनपसंद सरकार का चुनाव कर सकते थे। प्रारम्भ के दिनों में मतदान करने का अधिकार केवल धनवान व्यक्तियों को ही था।

ब्राइस ने जनतम निर्माण में तीन प्रकार के लोगों के योगदान का उल्लेख किया है प्रथम स्थिति में किसी भी देश में वे व्यक्ति जनतम निर्माण में भाग लेते हैं, जो सार्वजनिक कार्यो में लगे रहते हैं। इस श्रेणी में विधान मण्डल के सदस्य, राजनीतिज्ञ, सार्वजनिक नेता, पत्रकार आदि हैं। इस तरह के लोगों की संख्या यद्यपि कम होती है फिर भी वे लोग सार्वजनिक समस्याओं और प्रश्नों पर अपना भाषणों, लेखों, सभाएँ दलीय समस्याओं के माध्यम से विचार प्रकट करते हैं वे जनता से यह अपेक्षा करते हैं कि वह उस पर अपनी राय प्रगट करें। दूसरी स्थिति में अपने-अपने कार्यो में लगे लोग प्रथम स्थिति में बनाए गए विचारों को अपने तर्क वितर्क के आधार पर उसका मापन करते हैं और अपनी राय प्रकट करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति देश के जागरूक नागरिक होने के साथ-साथ चेतनशील होते हैं वे व्यक्ति प्रथम श्रेणी के लोगों के विचारों को ऑख मूंदकर स्वीकार कर लेते हैं। ब्राइन ने लिखा है कि इन लोगों के विचारों से प्रथम श्रेणी के विचारों का संशोधन और परिवर्तन होता है। इस प्रकार वे जनमत का निर्माण करते हैं। जो कुछ ये लोग सोचते हैं और अनुभव करते हैं वह जनमत है। तृतीय अवस्था में जनता के अधिकांश लोग आते हैं जो सार्वजनिक मामलों के प्रति उदासीन रहते हैं। ऐसे लोगों की अपनी राय नहीं होती। वे लोगों का मत स्वीकार कर लेते हैं इस प्रकार लोकमत का निर्माण हो जाता है।[1]

इंटरनेट पर आधारित पुस्तक 'कल्चर ऑफ द इंटरनेट' के अनुसार राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुलभ

कंप्यूटर-आधारित संचार नेटवर्क के अभूतपूर्व प्रसार ने लोगों की कल्पना को छुआ है। लेखक के अनुसार इंटरनेट सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने वालों के लिए भी यह एक नयी तरह की दुनिया है।[2]

मीडिया मीमांसा में प्रकाशित शोध लेख के अनुसार मीडिया लोकतांत्रिक विचार-विमर्श को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सोशल मीडिया राजनीतिक चर्चाओं के लिए एक स्थान है, लेकिन युवाओं की राजनीतिक विचारधारा पर इसका प्रभाव बहुत अधिक नहीं है। सोशल मीडिया विचार-विमर्श के लिए एक लोकतान्त्रिक मंच प्रदान करता है। भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में सोशल मीडिया एक सक्रिय भूमिका निभा रहा है।[3]

एक शोधपत्र के अनुसार आधुनिक सूचना माध्यमों में सोशल नेटवर्किंग साइट समाज को बहुत तेजी से प्रभावित कर रही हैं। शोधार्थी के अनुसार देश- प्रदेश की सरकारें सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुँचाने का प्रयास कर रही हैं। आज हर व्यक्ति इंटरनेट पर हर सूचना की उलब्धता की अपेक्षा करता है तथा स्वयं भी सोशल मीडिया पर उपलब्ध है। आज लोग किसी भी सूचना पर सोशल साइट्स के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया दे रहे हैं। किसी भी जानकारी या सूचना को युवा तुरंत सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर साझा कर रहे हैं। ऐसे में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भी उत्तरदायित्व बढ़ जाता है।[4] भारत में साल 2014 के लोकसभा चुनाव ने सोशल मीडिया को एक नये कलेवर में प्रस्तुत किया। राजनीतिक दलों के प्रचार-प्रसार में सोशल मीडिया ने जिस तरह की भूमिका तैयार की वह अकादमिक अध्ययन के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बनने लगी थी। सोशल मीडिया को सत्ता तक पहुंचाने का श्रेय दिया जाने लगा था।[5]

फेसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब से लेकर समस्त नये माध्यमों के मंच तत्कालीन चुनाव में रंगे हुए थे। मुख्य दौर की मीडिया से अलग यह एक विकल्प के रूप में उभर कर सामने आ गया था। राजनीतिक दलों ने इस बात को कुशलतः समझा और इसका उपयोग एक वैकल्पिक संचार के माध्यम के रूप में किया भी।[6]

सोशल मीडिया पर होने वाली चर्चाओं और उन चर्चाओं के आधार पर बनने वाले मतों के विषय में नारायण एवं नारायणन के अनुसार फेसबुक, ट्विटर पर प्रमुखता के साथ विचारों का आदान-प्रदान नए-नए विषयों को स्थापित करने का काम करते हैं। जिस विषय पर जितनी अधिक लोगों की भागीदारी होती है वह उतना ही प्रबल होता है। राष्ट्रवाद का विमर्श भी ऐसे ही सोशल मीडिया पर प्रस्तुत किया गया है। लोगों की परस्पर भागीदारी के साथ निरंतर सोशल मीडिया पर यह विकसित होता चला गया। स्थिति यह रही कि साल 2019 के लोकसभा चुनावों में यह मुख्य दौर की मीडिया को चुनौती देने लगा।[7]

शोध के उद्देश्य

1. सोशल मीडिया के बढ़ते प्रचलन के कारणों का अध्ययन करना।
2. सोशल मीडिया द्वारा जनमत को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना।
3. सोशल मीडिया से लोगों की सामाजिक क्रियाशीलता एवं व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न

1. क्या सोशल मीडिया जनमत को प्रभावित कर रहा है?
2. क्या सोशल मीडिया आम जनता को किसी भी विषय या मुद्दे पर होने वाली सामाजिक बहस में अपने विचार रखने का अवसर देता है ?
3. क्या सोशल मीडिया में त्वरित प्रतिउत्तर (फीडबैक) का होना उसे अन्य जनमाध्यमों से पृथक करता है?

शोध प्ररचना : प्रस्तुत शोध के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली के आधार पर लखनऊ शहर के प्रमुख दो विश्वविद्यालयों (बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ तथा लखनऊ विश्वविद्यालय) से 300 शोधार्थियों से प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़े एकत्र किये गये।

आप किस सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं ?
(वरीयता क्रम के आधार पर चयन करें)

विकल्प	प्रतिशत
व्हाट्सएप्प	100
फेसबुक	75
टिवट्र	15

कुल उत्तरदाताओं में सभी 100 प्रतिशत उत्तरदाता व्हाट्सएप्प का उपयोग करते हैं। 75 प्रतिशत लोग व्हाट्सएप्प के साथ - साथ फेसबुक का इस्तेमाल करते हैं। 15 प्रतिशत लोग ट्विटर का उपयोग करते हैं। इस प्रश्न में सबसे अधिक प्रचलित तीन माध्यमों को ही रखा गया है।

सोशल मीडिया के सदस्य हैं क्योंकि- ये द्विपक्षीय संवाद का अवसर देती है ?

विकल्प	प्रतिशत
पूर्णतया असहमत	0
असहमत	1
तटस्थ	3.5
सहमत	20
पूर्णतया सहमत	75.5

75.5 प्रतिशत लोग इस बात से पूर्णतया सहमत हैं कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स द्विपक्षीय संवाद (Two Way Communication) का अवसर देती है। 20 प्रतिशत लोग इस तथ्य से सहमत हैं। 3.5 प्रतिशत लोग तटस्थ हैं तथा 1 प्रतिशत लोग इस तथ्य से असहमत है।

क्या सोशल मीडिया सूचना प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	95
नहीं	5

95 प्रतिशत उत्तरदाताओं का ये मानना है कि सोशल मीडिया सूचना प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है वहीं 5 प्रतिशत मतदाता इससे सहमत नही हैं।

क्या सूचना तथा विचारों के आदान-प्रदान में सोशल मीडिया अन्य मास मीडिया से ज्यादा प्रभावी है ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	91
नहीं	9

91 प्रतिशत उत्तरदाता ये मानते हैं कि सोशल मीडिया सूचना तथा विचारों के आदान-प्रदान में सोशल मीडिया अन्य मास मीडिया से ज्यादा प्रभावी है जबकि 9 प्रतिशत लोग इससे सहमत नहीं हैं।

सोशल मीडिया अन्य मास मीडिया से अधिक प्रभावशाली है क्योंकि?

विकल्प	प्रतिशत
त्वरित प्रति उत्तर संभव है	30
विचारों की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता देता है	50
कोई विषय, मुद्दा का घटना पूर्णरूप से बिना सम्पादन के लोगों तक पहुंचती है।	12
किसी विषय या मुद्दे के बहुत सारे विश्लेषण एक साथ मिल जाते हैं।	08

सोशल मीडिया अन्य मास मीडिया से अधिक प्रभावशाली क्यों है इसे निर्धारित करने के लिए चार विकल्प दिये गये जिसमें से प्रथम विकल्प कि विचारों की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता देता है को 50 प्रतिशत उत्तरदातों ने प्रथम स्थान पर रखा द्वितीय विकल्प पर सोशल मीडिया त्वरित प्रतिउत्तर को संभव बनाता है को 30 प्रतिशत लोगो ने दूसरे स्थान पर रखा तथा 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तृतीय विकल्प कोई विषय, मुद्दा या घटना पूर्णरूप से बिना सम्पादन के लोगो तक पहुँचती है को तीसरे तथा 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने चर्तुथ विकल्प किसी विषय या मुद्दे के बहुत सारे विश्लेषण एक साथ मिल जाते हैं, को भी तीसरे स्थान पर सहमति दी।

क्या आप सोशल मीडिया से प्राप्त सूचनाओं पर विश्वास करते हैं ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	67
न्हीं	33

67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का ये मानना है कि वे सोशल मीडिया से प्राप्त सूचनाओं पर विश्वास करते हैं वहीं 10 प्रतिशत मतदाता इससे सहमत नही हैं।

क्या सोशल मीडिया किसी घटना या मुद्दे पर लोगों की सक्रियता को प्रेरित करती है ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	96.4
नहीं	4.6

96.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया किसी घटना या मुद्दे पर लोगों की सक्रियता प्रेरित करती है जबकि 4.6 प्रतिशत उत्तरदाता इससे सहमत नही है।

सोशल मीडिया अन्य संचार माध्यमों के लिए किस तरह की भूमिका निभा रहा है ?

विकल्प	प्रतिशत
सहयोगी	46
प्रतिद्वन्द्वी	54

46 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया को अन्य मास मीडिया के लिए सहयोगी के रूप मे देखते हैं। जबकि 54 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया को अन्य मास मीडिया के लिए प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे देखते हैं।

क्या किसी घटना, व्यक्ति, विषय या मुद्दे पर सोशल मीडिया में होने वाली चर्चा का आपके मत पर प्रभाव पड़ता है ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	59
नहीं	26
कभी कभी	15

59 प्रतिशत उत्तरदाता ये मानते हैं कि किसी घटना, व्यक्ति, विषय या मुद्दे पर सोशल मीडिया में होने वाली सामूहिक चर्चा उनके मत को प्रभावित करती है जबकि 26 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ऐसा नही लगता। वहीं 15 उत्तरदाताओं के मतों को सोशल मीडिया में होने वाली सामूहिक चर्चा कभी कभी प्रभावित करती है।

सोशल मीडिया अन्य संचार माध्यमों की अपेक्षा उपभोक्ता रूप में अधिक सन्तुष्टि देता है-

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	81
नहीं	19

81 प्रतिशत उत्तरदाता उपभोक्ता के रूप में अन्य मास मीडिया की अपेक्षा सोशल मीडिया से अधिक सन्तुष्ट हैं जबकि 19 प्रतिशत उत्तरदाता इससे सहमत नही है।

क्या सोशल मीडिया किसी घटना, मुद्दा या व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में लोगों के विचार बदलने में सफल है ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	63.9
नहीं	36.1

63.1 उत्तरदाता मानते हैं कि सोशल मीडिया किसी घटना, मुद्दे या व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में लोगों के विचार बदलने में सफल रहा हैं जब 36.1 लोग इस बात से सहमत नहीं है।

क्या आप सोशल मीडिया द्वारा प्रेरित किसी सामाजिक आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	61
नहीं	39

61 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सोशल मीडिया द्वारा प्रेरित किसी सामाजिक आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं जबकि 39 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रकार की कोई भागेदारी नही की है।

क्या सोशल मीडिया द्वारा किसी विषय या मुद्दे पर कोई कैंपेन आयोजित की है ?

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	72
नहीं	28

72 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सोशल मीडिया द्वारा किसी विषय या मुद्दे पर कभी न कभी कैंपेन आयोजित की है जबकि 28 प्रतिशत उत्तरदाताओ ने सोशल मीडिया द्वारा कभी किसी कैंपेन का आयोजन नहीं किया है।

किसी नेता, अभिनेता या सेलीब्रिटी द्वारा किसी घटना या विषय पर सोशल मीडिया में दी जाने वाली प्रतिक्रिया आपके विचारों को प्रभावित करती है-

विकल्प	प्रतिशत
हाँ	71
नहीं	29

71 प्रतिशत उत्तरदाता ये मानते है कि किसी नेता या अभिनेता या किसी सेलिब्रिटी या किसी अन्य प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा किसी घटना या विषय पर सोशल मीडिया में दी जाने वाली प्रतिक्रिया उनके विचारों को प्रभावित करती है जबकि 29 प्रतिशत उत्तरदाताओं पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

किसी फोटो, ब्लॉग, स्टेट्स, वीडियो आदि को शेयर करने के पीछे क्या कारण है? (वरीयता क्रम के आधार पर चयन करें)

विकल्प	प्रतिशत
उस मुद्दे को सपोर्ट करते हैं।	26
प्रतिक्रिया का एक तरीका है	49
अच्छी छवि बनाने के लिए	14.5
अपनी वॉल के माध्यम से उस विषय पर बहस को बढ़ावा देना चाहते हैं।	11.5

किसी फोटो, ब्लॉग, स्टेटस, वीडियो आदि को शेयर करने के पीछे क्या कारण हैं यह जानने के लिए चार विकल्प दिये गये 49 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने द्वितीय विकल्प को उस मुद्दे पर यह हमारी प्रतिक्रिया का एक तरीका है को प्रथम स्थान पर रखा। 26 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रथम विकल्प इस तरह हम उस मुद्दे को सर्पोट या समर्थन करते हैं को द्वितीय स्थान पर रखा तथा 14.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं में तृतीय विकल्प अपने दोस्तों के बीच में अच्छी छवि बनाने के लिए को तीसरे स्थान पर तथा 11.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने चतुर्थ विकल्प के

माध्यम से उस विषय पर बहस को बढ़ावा देना चाहतें हैं, को चौथे स्थान पर रखा।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं।

1. युवाओं में सोशल मीडिया का क्रेज लगातार बढ़ रहा है।
2. सोशल नेटवर्किंग साइट्स द्विपक्षीय संवाद को बढ़ावा देती है चूंकि मॉस मीडिया में प्रतिउत्तर या तो नही होता या देर से प्राप्त होता है। अतः युवाओं को सोशल मीडिया का द्विपक्षीय संवाद लुभा रहा है।
3. युवा सूचना प्राप्त करने के लिए तथा अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए, सोशल मीडिया को लाभदायक माध्यम मानते हैं।
4. सोशल मीडिया त्वरित प्रतिउत्तर देता है, विचारों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है, विषय या मुद्दे का पूरा विश्लेषण हमारे सामने रख देता है, इसलिए युवा इसे प्रभावशाली माध्यम मानते हैं।
5. सोशल मीडिया ने समाचारों के प्रसारण को गति दी है। साथ ही आम- आदमी को पत्रकार की भूमिका में खड़ा कर दिया है। आज वह पत्रकार की भांति किसी भी मुद्दे को सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुँचा रहा है।
6. संग्रहित आंकड़ों के आधार पर उत्तरदाता सोशल मीडिया के उपयोग में जितने उतावले दिखे उसकी विश्वसनीयता के प्रश्न पर वे उतने उतावले नही थे। अतः अभी भी सोशल मीडिया को अपने विश्वसनीयता को बनाये रखने के लिए प्रयासरत रहना होगा।
7. अधिकतर उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि सोशल मीडिया मे जहां एक ओर मॉस मीडिया के सहयोगी के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है वहीं वह मासमीडिया का प्रतिद्धन्दी भी है।
8. उत्तरदाता उपभोक्ता के रूप में मास मीडिया की अपेक्षा सोशल मीडिया से अधिक संतुष्ट हैं क्योंकि सोशल मीडिया ने उपभोक्ताओं को अपने विचार रखने की त्वरित सुविधा दी है जिससे वे किसी भी मुद्दे या विषय पर पर्याप्त चर्चा-परिचर्चा तक पहुँचते हैं जो उनके मत निर्माण में सहायक होती है।
9. सोशल मीडिया परस्पर चर्चा के माध्यम से किसी भी विषय या मुद्दे पर लोगों के विचार बदलने में सफल रहा हैं ये आम जन को किसी भी सामाजिक आन्दोलनों के लिए, लोगों को प्रेरित करने का, एक मंच प्रदान करता है साथ ही सामाजिक आंदोलन में भाग लेने के लिए, आमन्त्रित भी करता है।
10. सोशल मीडिया विस्तृत रूप से किसी विषय पर नेता, अभिनेता, राजनेता, वरिष्ठ एवं बैंकिंग वर्ग आदि की प्रतिक्रियाओं से अवगत कराता है साथ ही आमजन को कभी फोटो या स्टेटस शेयर करने, लाइक करने, कमेंट के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया का अवसर भी देता है।

सुझाव

1. सोशल मीडिया के लिए कुछ नियम-कानूनों की आवश्यकता है ताकि गलत सामग्री तथा नकारात्मक प्रस्तुतिकरण, देश की अखंडता को चोट पहुंचाने वाली बातें सोशल मीडिया द्वारा आमजन में अराजकता न फैलायें।
2. चूंकि सोशल मीडिया त्वरित प्रतिउत्तर की सुविधा रखता है अतः सामाजिक विकास में यह एक बहुत सकारात्मक भूमिका निभा सकता है।
3. मॉस मीडिया सोशल मीडिया को यदि अपने सहयोगी के रूप देखे तो सोशल मीडिया उसके लिए, बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।
4. सरकारी विभाग एवं अन्य संस्थान सोशल मीडिया के माध्यम से आम जनता के बीच द्विपक्षीय संवाद के माध्यम से अपनी कार्यप्रणाली में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं जिससे आम जनता के बीच में उनकी अच्छी एवं जिम्मेदार छवि बनेगी।

सन्दर्भ

1. Francis G. Wilson, James Bryce on Public Opinion: Fifty Years Later, Public Opinion Quarterly, Volume 3, Issue 3, July 1939, pp 420-435, https://doi.org/10.1086/265315
2. Kiesler, Sara; 'Culture of the Internet', N.J: Lawrence Erlbaum Associates Publishers, New Jersey: Mahwah, 1997.
3. Padmanabk and Kumar; 'Effects of Facebook on the political ideology of the youth' Media Mimansa, 2017, p.31.
4. श्रीवास्तव एवं कुमार 'सोशल मीडिया और युवा विकास' मीडिया मीमांसा, 2017, पृ. 37-42.
5. Hardy, Jonathan. (2014). Critical Political Economy of the Media: An introduction. 10.4324/9780203136225
6. Ali, I. (2014 June 06) Voanews. Retrieved July 11, 2019, from https://www.voanews.com/:https:/www.oanews.com/silicon-valley-technology/social_media_0played_big_role_indias_election.
7. Narayan, S.S. and S. Narayanan, 'An Overview of New Media in India', 2016 in S.S. Narayan & S. Narayanan, India Connected sage, new Delhi, pp. 4-10

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

आधुनिक तकनीक के दौर में मीडिया संस्थानों की भूमिकाः एक अध्ययन

❑ प्रोफेसर त्रिशु शर्मा
❖ डॉ. विशाल शर्मा

सूचक शब्द : भारतीय मीडिया, मीडिया संस्थान, तकनीकी विकास, संचार माध्यम।

मीडिया संस्थान काल के नए क्रम में स्वयं को परिभाषित कर रहे हैं। नयी अवधारणाएं गढ़ रहें हैं। संचार के नए प्रतिमान समाज व संचार की दशा और दिशा को प्रभावित करने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। भारत में मीडिया संस्थानों का उद्भव सामाजिक जन जागरण व विचार चेतना के लिए जाना जाता है। समाज निर्माण मीडिया के अतीत के सुनहरे साथ को प्रकट करता है। वर्तमान दौर तकनीक आधारित है। ऐसी तकनीक जो आज महत्वपूर्ण है तो कुछ समय पश्चात अर्थहीन प्रतीत होने लगती है। ऐसे में मीडिया संस्थानों के पास इस आधुनिक दौर के साथ कदमताल करने की नितांत आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय मीडिया और आधुनिक तकनीक के समन्वय की उपयोगिता, प्रभाव और परिणाम को व्यक्त करने की कोशिश भर है। इस शोध आलेख के माध्यम से भारतीय मीडिया संस्थानों का सिंहावलोकन व उनके सुनहरे अतीत के साथ भविष्य की दूरगामी योजनाओं पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

प्रस्तावना : मीडिया शिक्षण एक अनूठा कार्यक्षेत्र है। ऐसा क्षेत्र जो नित नए विचारों, तर्कों, परिभाषाओं एवं बदलाव से स्वयं को आत्मसात करता रहता है। हर दिन की घटना शिक्षकों एवं छात्र-छात्राओं के विमर्श का विषय रहता है। यह विमर्श मात्र कक्षाओं में कुछ घंटों के साथ सीमित रहने वाला नहीं होता अपितु सामाजिक संचार के सभी माध्यमों पर परिलक्षित भी होता है जिससे समाज के साथ संचार का समन्वय स्थापित होता है। सीधे तौर पर कहा जाए तो यह एक ऐसा विषय है जो हर दिन अपनी कक्षाओं में होने वाले वैचारिक एवं सैद्धांतिक विमर्श में सामाजिक सरोकार को केन्द्रित रखता है। वैसे तो समाज विज्ञान के विषय सामाजिक अर्थ में ही अपना अस्तित्व रखते हैं। परन्तु संचार आधारित विषय विशेषकर जनसंचार एवं पत्रकारिता को केन्द्र में रखते हुए जो पाठयक्रम हमें दिखायी देते हैं वह सामाजिक सरोकार के साथ-साथ समाज निर्माण व वैचारिक प्रतिबद्धता से भी अंगीकृत हैं। वैचारिक प्रतिबद्धता से आशय यह है कि पाठयक्रम, पठन-पाठन एव पाठशालाएं विचार निर्माण की दिशा में किस प्रकार महत्वपूर्ण हैं। मीडिया की पाठशालाएं, अर्थात संस्थान इसी परिपाटी को अपने स्थापत्य काल से लेकर आधुनिक तकनीक के दौर में विकसित करते जा रहे हैं।

भारतीय अध्ययन पुरातन काल से ही संचार प्रधान रहा है। समृद्ध संचार की सुनहरी व ज्ञानोन्मुखी परंपरा हमारे अध्ययन-अध्यापन का प्रकटीकरण माना गया है। यही कारण है कि शास्त्रार्थ के माध्यम से प्रभावी संचार, संचारक व विचार को भारतीय ज्ञान दर्शन के विमर्श में सम्मिलित किया गया है। गुरुकुल व्यवस्था में संचार की महती भूमिका रही है।[1] शास्त्र-वेद व कौशल आधारित शिक्षा में भी संचार का प्रवाह विचार व व्यक्ति निर्माण को केन्द्रित कर किया जाता था। ऐसे में संचार की भारतीय व्यवस्था व्यापक, प्रभावी, सांस्कृतिक व व्यक्तित्व निर्माण के साथ-साथ सामाजिक दायित्व का बोध भी कराती थी। संचार की यह व्यवस्था शनै-शनै काल के क्रम के अनुसार परिवर्तित होती रही। यथा राजा तथा प्रजा, तथा व्यवस्था को संचार के क्रम में अंगीकृत किया जाने लगा। संचार परंपरा व उनके वाहकों हालांकि इस दौर में भी किसी संस्थान विशेष से अलंकृत या निरूपित संभवतः नहीं हो रहे थे। लोक संचार, परंपरा व लोक माध्यम के आधार पर समाज व शासन व्यवस्था के मध्य एक सेतु का प्रतिमान देखा जा सकता था। इन माध्यमों में क्षेत्रीयता को प्रधानता दी गयी थी लेकिन भाव राष्ट्रीय व सामाजिक जागरण का देखा जा सकता है। कारण स्पष्ट है कि हर क्षेत्र, स्थान या समुदाय को राष्ट्रीय भाव के साथ सम्मिलित कर के एकीकरण का

❑ **निदेशक, यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट ऑफ मीडिया स्टडीज, चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ (पंजाब)**
❖ **सहायक आचार्य, यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट ऑफ मीडिया स्टडीज, चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ (पंजाब)**

क्षेत्र विस्तृत किया जाए। लोक कलाओं के माध्यम, लोक गाथा, लोक कथा, शिलालेख से लेकर पौराणिक ग्रंथों के संदेशों को संचार के माध्यम के रूप में भी देखा जाता रहा है। भारत में इन माध्यमों ने लोक चेतना के तौर पर जनमानस के बीच में अपनी पहचान बनाई है। देश के सुदूर क्षेत्रों में लोक गायन व लोक कला के कलाकारों ने संदेश सम्प्रेषण के माध्यम से राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों को समाज के बीच प्रभावशाली तरह से प्रस्तुत किया है। संचार के इन माध्यमों ने भारतीय समाज को सूचना देने तक ही खुद को सीमित नहीं रखा है अपितु उसमें एक जागरण का भाव पैदा करने का काम कुशलता के साथ किया है। लोक माध्यमों का यह भाव अतीत के पन्नों में जाकर देखें तो अद्वितीय दिखाई देता है।[2]

संचार की यह ज्ञान और लोक परंपरा वर्तमान समय में तकनीकी समन्वय के साथ प्रदर्शित हो रही है। संचार साधनों की उपयोगिता भी मात्र वैचारिक या सामाजिक न होकर तकनीक प्रधान होनी चाहिए। यही व्यवस्था संचार के संस्थानों ने भी स्वीकार की है। अब संस्थानों में संचार के शिक्षण- प्रशिक्षण की व्यवस्था में तकनीक सर्वप्रथम है। बिना तकनीकी कौशल के संचार के अध्ययन-अध्यापन को पुरातन व अविकसित पद्धति के तौर पर देखा जाता है। सैद्धांतिक ज्ञान व कौशल के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान व कौशल आधारित पाठयक्रम मीडिया संस्थानों की प्राथमिकता में सम्मिलित किए जा रहे हैं। वैश्विक परिदृश्य को केन्द्र में रखकर शिक्षण व्यवस्था विकसित हो रही है। मीडिया एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में नए-नए विषय शोध व अध्ययन का आकर्षण बनते जा रहे हैं। एक समय में प्रिंट माध्यमों को पत्रकारिता में अग्रणी समझा जाता था लेकिन समय बदला और उसी के साथ माध्यमों का वर्चस्व भी बदलता चला गया।[3] वर्तमान समय इंटरनेट आधारित माध्यमों का है। ये माध्यम हर किसी के लिए सुलभ व उपयोगी हों, प्रभावी हों तथा समाज के मध्य एक बेहतर समन्वय बना सकें, ऐसी व्यवस्था मीडिया संस्थानों के उद्देश्य में होनी चाहिए।

मीडिया संस्थान एवं उनके उद्देश्य : स्वतंत्रता से पहले भारत में पत्रकारिता के क्षेत्र में संस्थागत शिक्षण की व्यवस्था शुरु हो गयी थी। हालांकि पत्रकारिता का समाज में पदार्पण इस संस्थागत व्यवस्था से कहीं पहले हो गया था। लेकिन इसके व्यवहारिक पक्ष को समझते हुए इसे शिक्षण संस्थानों में लाने में एक लंबा समय लग गया था। देश में मीडिया शिक्षण की सर्वप्रथम व्यवस्था अंग्रेजी शासन काल में की गयी जिसे शुरु करने का श्रेय श्रीमति ऐनी बेसेन्ट को दिया जाता है जिन्होने साल 1920 में सबसे पहले संचार के क्षेत्र में पहला विश्वविद्यालय स्तर पाठयक्रम संचालित करने का प्रयास किया। थियोसोफिकल सोसायटी के बैनर तले दक्षिण भारत के चैन्नै (तत्कालीन मद्रास) स्थित मद्रास विश्वविद्यालय में पत्रकारिता का पहला पाठयक्रम शुरु हुआ।[4] पहली बार शुरु हुए इस पाठयक्रम में तब दूसरे विषयों के छात्र-छात्राओं ने रूचि दिखायी थी। साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत लोगों को भी इससे जोड़ने का प्रयास किया गया था। मद्रास विश्वविद्यालय के बाद देश के दूसरे राज्यों में भी पत्रकारिता से सम्बन्धित पाठयक्रम शुरू किए जाने लगे। स्नातक स्तर पर तथा परास्नातक पाठयक्रमों के साथ-साथ डिप्लोमा आधारित पाठयक्रम भी विश्वविद्यालयों व मीडिया संस्थानों ने संचालित करने शुरू कर दिए थे। इसी परंपरा के अंतर्गत साल 1965 में भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के निर्देशन में भारतीय जन संचार संस्थान की स्थापना की गयी।[5] इस संस्थान के पेशेवर लोगों को संचार के शैक्षणिक तौर-तरीकों के साथ नए प्रवेश भी स्वीकृत किए गए थे। धीरे-धीरे देश के अन्य क्षेत्रों में भी जनसंचार एवं पत्रकारिता के नए-नए संस्थान, पाठयक्रम व पठन-पाठन की नयी व्यवस्था आरंभ होने लगी। पत्रकारिता को केन्द्र में रखकर इसके लिए अलग से विशेष विश्वविद्यालयों का स्वरूप भी सामने आया। मध्य प्रदेश में माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, जयपुर में हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय तथा रायपुर स्थित कुशाभाव ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय इसका उदाहरण है।[6]

पत्रकारिता विश्वविद्यालयों से संचालित होने वाले इन पाठयक्रमों में सिर्फ प्रिंट आधारित पाठयक्रमों को ही वरीयता नहीं दी जा रही थी अपितु संचार के सभी माध्यमों जैसे विज्ञापन, जनसम्पर्क, फिल्म, ऐनिमेशन, डिजाइन व विषय विशेष संचार से सम्बन्धित पाठयक्रम भी विश्वविद्यालयों में संचालित हो रहे थे। ये सभी पाठयक्रम अंग्रेजी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को अंगीकृत करने के लिए स्वतंत्र थे। भाषायी आधारित पत्रकारिता को केन्द्र में रखते हुए क्षेत्र विशेष के विश्वविद्यालयों में इसे शोध के दायरे में भी लाया जाने लगा था, जिसका

सबसे बड़ा कारण यह था कि बहुभाषायी देश भारत में क्षेत्र विशेष की भाषाओं का संचार के माध्यमों पर गहरा प्रभाव व नियंत्रण था। ऐसे में मीडिया विश्वविद्यालयों में जो पाठयक्रम संचालित होते थे वह अपने क्षेत्र विशेष को भी ध्यान में रखते थे ताकि संस्थान की शैक्षणिक व्यवस्था से निकलने के बाद छात्र-छात्राएं रोजगार के अवसरों को भी प्राप्त कर सकें। जनसंचार एवं पत्रकारिता के अधिकतर पाठयक्रमों को रोजगार केन्द्रित मानकर ही मीडिया संस्थानों में इसे संचालित किया जा रहा था। हालांकि यह दिलचस्प था कि जो वैचारिकी या अकादमिक विमर्श संचार के क्षेत्र में आवश्यक था वह इन संस्थानों की प्राथमिकता में उतना प्रभावी नहीं दिखायी देता था। कारण, मीडिया के नए माध्यम विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आकर्षण ने छात्रों के मध्य एक विशेष जगह प्राप्त की हुई थी। पत्रकारिता की पढ़ाई कर रहे अधिकतर छात्र-छात्राएं टीवी मीडिया के कलेवर से प्रभावित हो रहे थे। इसी के चलते मीडिया संस्थानों ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से सम्बन्धित अलग-अलग विधाओं के पाठयक्रम संचालित करने शुरू कर दिए थे। प्रिंट आधारित पाठयक्रम भी विश्वविद्यालयों व मीडिया संस्थानों में दिखायी तो देते थे मगर लोकप्रियता नए माध्यमों के साथ बढ़ती जा रही थी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के तकनीकी कौशल पर आधारित शैक्षणिक कार्यशालाएं, संगोष्ठी, उन्नयन कार्यक्रम दूसरे विषयों की तरह अकादमिक जगत में लोकप्रिय हो रहे थे।

मीडिया पाठयक्रमों की इस लोकप्रियता ने सरकारी संस्थानों के साथ-साथ निजी क्षेत्र के संस्थानों का भी आकर्षण प्राप्त किया। भारत में सामान्य तौर पर मीडिया से सम्बन्धित पाठयक्रम विश्वविद्यालयों व कॉलेजों के स्तर पर निम्नलिखित तरह से वर्गीकृत किए जा सकते हैं। सबसे पहले सरकारी विश्वविद्यालय या कॉलेजों में मीडिया से सम्बन्धित शिक्षण को स्वीकार किया गया। दूसरे स्थान पर ऐसे संस्थान आते हैं जो विश्वविद्यालयों से सम्बद्धता रखते हैं और एक समुचित प्रशासनिक व अकादमिक व्यवस्था के अंतर्गत संचालित हो रहे हैं। तीसरे स्थान पर ऐसे संस्थान आते हैं जो भारत सरकार या राज्य सरकारों से स्वायत्ता प्राप्त किए हुए हैं। उसके बाद निजी संस्थान, डीम्ड विश्वविद्यालय या दूसरे निजी संस्थान जो किसी मीडिया समूह के नाम व पहचान के आधार पर स्थापित हुए हैं।[7] इन संस्थानों से संचालित होने वाले पाठयक्रमों ने मीडिया शिक्षा के क्षेत्र में एक चेतना या जागरण का काम तो किया है लेकिन साथ ही कई प्रकार की चुनौतियां भी प्रकट की हैं जिसमें सबसे पहले हम शैक्षणिक गुणवत्ता व पाठयक्रम को समझते हैं। भाषायी चुनौतियां इसके बाद व तकनीकी कौशल के लिए आवश्यक ज्ञान व संसाधन भी इसका हिस्सा हैं। इन सभी संस्थानों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के मध्य यह एक अनसुलझा सवाल था जिसका संपूर्ण व समुचित निराकरण किसी एक के स्तर पर होता दिखायी नहीं पड़ता था। मीडिया संस्थान रोजगारपरक व्यवस्था को अंगीकृत किए हुए थे। सामाजिक सरोकार, वैचारिकी विशेष से सम्बन्धित विमर्श या अकादमिक क्षेत्र की चुनौतियां इन सभी से कहीं अलग थीं। समाज विज्ञान के दूसरे विषयों की तरह जनसंचार एवं पत्रकारिता के पाठयक्रमों की अकादमिक स्वीकार्यता सैद्धांतिक पक्ष से अलग व्यवहारिकता में अधिक दिखायी दे रही थी। इसलिए संस्थान सिद्धांत को समझते हुए व्यवहारिकता को अपने प्राथमिक उद्देश्य में सम्मिलित किए हुए थे।

डिजिटल मीडिया का आगमन : टीवी मीडिया के इस प्रभाव को इंटरनेट आधारित मीडिया के उदय से चुनौती मिली। इंटरनेट आधारित मीडिया जिसे मीडिया की शब्दावली में डिजिटल के तौर पर स्वीकार किया जा रहा है। डिजिटल मीडिया ने टीवी से अलग एक विशेष जगह इस क्षेत्र में हासिल की है। प्रिंट मीडिया के आने के बाद ऑडियो प्रारूप में रेडियो एक नए जनसंचार के माध्यम के तौर पर सामने आया था। रेडियो के बाद ऑडियो-विजुअल के तौर पर टेलीविजन को नए व सशक्त मीडिया के नाम से जाना गया।[8] ठीक उसी परंपरा का विकसित रूप डिजिटल मीडिया बनता जा रहा है। डिजिटल मीडिया, ऐसी व्यवस्था जहां मीडिया के सभी प्रारूप एक ही मंच पर सुलभ हो सकें। डिजिटल मीडिया के आगमन ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के स्वरूप को सर्वाधिक प्रभावित किया है। सभी प्रमुख मीडिया संस्थानों ने डिजिटल मीडिया के महत्व को समझते हुए वहां पर अपनी पहचान बनाए रखने के लिए हरसंभव प्रयास किए हैं। डिजिटल के महत्व का यही असर है कि वैश्विक स्तर पर यह कहा जाने लगा कि अगले कुछ दशकों में प्रिंट आधारित मीडिया के प्रारूप अपना अस्तित्व खो देंगे।

मीडिया के इस नए स्वरूप को पहचानते हुए शैक्षणिक संस्थानों नें भी अपने पाठयक्रमों में बदलाव कर दिया। सोशल मीडिया, डिजिटल पत्रकारिता को केंद्र में रखते हुए नए-नए विषय व विभाग संचालित होने लगे। इंटरनेट

आधारित मीडिया का अध्ययन-अध्यापन मीडिया शिक्षण व्यवस्था का एक नया विकसित प्रारूप था। इन पाठयक्रमों में प्रवेश के लिए भी आकर्षण दिखायी देने लगा। डिजिटल मीडिया से सम्बन्धित ऐसे सभी पाठयक्रम जो नए मीडिया के हिस्से में आए वह शैक्षणिक जगत में लोकप्रिय होने लगे। सोशल मीडिया के विमर्श, उनकी योजनाएं, उनकी साज-सज्जा, तकनीक मीडिया के क्षेत्र में आने वाले नवागंतुकों के अध्ययन का हिस्सा बन रहा था, जो सोशल मीडिया के मंच मात्र एक अनौपचारिक वार्तालाप का हिस्सा भर थे वह वर्तमान दौर में अकादमिक जगत की प्राथमिकता बन गए।

मीडिया के इन नए माध्यमों के शिक्षण के लिए भी एक विशेष प्रकार का कौशल आवश्यक था। यह परंपरागत शिक्षण व्यवस्था से कहीं अलग था। मीडिया की परंपरागत शिक्षण व्यवस्था जहां वैचारिकी के साथ दिखायी देती थी वहीं डिजिटल ने इसे पूरी तरह तकनीक प्रधान बना दिया था। तकनीकी कौशल इस विधा की पहली आवश्यकता बन गयी थी। इसलिए मीडिया संस्थानों ने अपने यहां शिक्षण के प्रारूपों में बड़ा बदलाव करते हुए तकनीक आधारित ज्ञान को प्राथमिकता देना शुरू किया। क्योंकि डिजिटल के क्षेत्र में अभिरूचि रखने वाले छात्र-छात्राओं के लिए यह प्राथमिक आधार दिखायी देने लगा था। विश्वविद्यालय स्तर पर इस बदलाव को देखते हुए मीडिया के क्षेत्र में डिजिटल माध्यमों की भीड़ रोजगार के नए अवसर भी प्रदान कर रही थी। डिजिटल मीडिया के लिए संचालित हो रहे पाठयक्रमों में विमर्श से अधिक तकनीकी कौशल को महत्व दिया गया। मीडिया समूहों ने डिजिटल को पत्रकारिता का भविष्य कहा तो शैक्षणिक संस्थानों ने भी इसका अनुसरण करते हुए मीडिया शिक्षा के डिजिटल प्रारूप को स्वीकार किया। यही नहीं बल्कि मीडिया के क्षेत्र में अध्ययन की ऑनलाइन सुविधा भी दी जाने लगी। जिससे कोई भी व्यक्ति घर बैठे ऑनलाइन प्रारूप में जनसंचार एवं पत्रकारिता की डिग्री प्राप्त कर सकता है। यह बदलाव पिछली एक शताब्दी के दौरान आया है। साल 1920 में जिस मीडिया के पाठयक्रम के लिए गिनती के प्रवेश हुए थे वर्तमान समय में वह कहां से कहां पहुंच गया है। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि देश भर में मीडिया संस्थानों की संख्या 1500 के आस-पास है, जिसमें हजारों छात्र-छात्राएं हर साल संचार के अलग-अलग पाठयक्रमों की दक्षता हासिल कर इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। मीडिया के पठन-पाठन से जुड़े सभी संस्थानों में पत्रकारिता के विविध प्रारूपों को पाठयक्रमों से जोड़ा भी जा रहा है। अध्यापन के तौर-तरीकों में भी बदलाव आ रहा है। पत्रकारिता का विषय जो एक समय में समाचार पत्रों की दुनिया तक सीमित था वह डिजिटल के दौर में आकर्षक, विकसित व विविधता के साथ दिखायी पड़ रहा है। साहित्यिक पत्रकारिता, विचार आधारित पत्रकारिता से अलग अब तकनीक आधारित पत्रकारिता का चलन है। अब पत्रकारिता मात्र सूचना देने तक सीमित नहीं रह गयी है बल्कि सूचना किस प्रारूप में, कितने समय में और किस प्रकार से दी जा रही है यह भी महत्वपूर्ण है। डिजिटल मीडिया के दौर की पत्रकारिता ने मीडिया शिक्षण संस्थानों को तकनीक के विषय में विस्तार किया है। इस विस्तार के क्रम में पत्रकारों की नयी पीढ़ी भी सुसंस्कृत होकर सामने आ रही है। डिजिटल पत्रकारिता के लिए तकनीकी कौशल सिर्फ एक विधा में ही नहीं अपितु तमाम विधाओं को एक साथ प्रस्तुत करने की कला के साथ उभर रहा है। पत्रकारिता के विषय में हुआ यह बदलाव सिर्फ विषय तक सीमित नहीं है। इसने संचार की एक परंपरागत व्यवस्था को बदल दिया है। ऐसा बदलाव जिसमें सूचना संप्रेषण के तौर-तरीके तो बदलें ही है साथ में उसे प्रस्तुत करने वाली पीढ़ी में भी बदलाव आया है जिसे लाने में मीडिया शिक्षण संस्थानों का बड़ा योगदान है। इंटरनेट के दौर में हर व्यक्ति जो इसका उपभोग करता है वह स्वयं को सूचना संप्रेषण से जुड़ा हुआ पाता है। ऐसे में पत्रकारों की विशिष्टता बनी रहें इसके लिए शिक्षण संस्थानों का कौशल बेहद महत्वपूर्ण है। डिजिटल की दुनिया ने ऐसे सभी प्रकार के कौशल व ज्ञान को एक अनूठा मंच प्रदान किया है। जहां छात्र-छात्राएं, शिक्षक, पेशेवर व शिक्षण संस्थान एक दूसरे के साथ विचार, तकनीक, सूचना, पेशेवर तौर-तरीके व विशिष्टता को सीखने का अवसर प्राप्त कर रहे हैं। यह बहुआयामी प्रकिया है जो एक दूसरे से जुड़ी हुई है।

आधुनिक दौर में मीडिया शिक्षा : उस दौर में जब मीडिया शिक्षा की तकनीक मात्र छपाई की मशीनों तक सीमित थी तक पत्रकारिता की दुनिया को आसानी से विभेद किया जा सकता था। समाचार संग्रहण व उसके प्रस्तुत करने का कौशल एक अलग विधा थी तो पृष्ठ सज्जा व उसकी रूपरेखा उसके साथ अंगीकृत की जाती थी।[9] छपाई से जुड़ी तकनीकी दक्षता एक विशेष विभाग के

साथ सम्बद्ध होती थी। लंबे समय तक यह व्यवस्था बनी रही। बाद में जैसे-जैसे नए माध्यमों का सृजन हुआ तो सूचना संप्रेषण के तौर-तरीकें उसी प्रकार से विकसित होते चले गए।[10] वर्तमान समय में इंटरनेट आधारित सूचना तंत्र का प्रभावी रूप है। ऐसे में सभी दक्षता एक ही मंच पर आवश्यक है। इसलिए मीडिया की दुनिया में विशिष्टता का अनुभव भी आवश्यक समझा जा रहा है। मीडिया के शिक्षण संस्थान इसी विशेष शैली के निर्माण की ओर अग्रसर हैं।

भारत में मीडिया के शिक्षण संस्थानों ने अपने 100 वर्ष पूरे किए हैं। इतने वर्षों में शिक्षण संस्थानों ने अपनी कक्षाओं को ही बदलाव के लिए तैयार नहीं किया अपितु पाठयक्रम की विशिष्टताओं, नई-नई विधाओं, नए कौशल व नए विचारों के साथ-साथ आधुनिक तकनीक को भी मीडिया पाठयक्रम का हिस्सा बनाया है। इसके लिए संस्थान के स्तर पर पेशेवर व्यवहार किया गया तो शिक्षण प्रशिक्षण पर भी महत्व दिया गया है। मीडिया का शिक्षण एक सामान्य कार्य नहीं है क्योंकि यहां हर दिन नया घटित होता है। जिसका विषय के साथ-साथ वैचारिक महत्व है। नित नए घटनाक्रम मीडिया शिक्षण के क्षेत्र में एक चुनौती भी है जिसे स्वीकार करना व उसके अनुसार शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था करना भी आसान नहीं है। इसके लिए संसाधनों की उपलब्धता, प्रशिक्षण के अवसर, कौशल, ज्ञान व अन्य कारक आवश्यक हैं।

वर्तमान दौर निःसंदेह तकनीक प्रधान है। इंटरनेट प्राथमिक ज्ञान का स्त्रोत बना हुआ है। मगर इस सबके बाद भी शिक्षण प्रशिक्षण मीडिया संस्थानों के लिए स्वयं को महत्ता साबित करने का अवसर है। ये संस्थान अपने संसाधनों के आधार पर जो पीढ़ी पत्रकारिता के लिए तैयार कर रहे हैं वह समाज को एक बेहतर दृष्टिकोण से समझने का अवसर प्रदान करेगी। आज मीडिया के पाठयक्रम सिर्फ किताबी दुनिया तक सीमित नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि अगर किताबों से दूरी बना ली जाए तो पत्रकारिता पूरी हो जाएगी। अपितु इसके बेहतर प्रबंधन और सकारात्मक उद्देश्य के साथ इस विषय को समृद्ध किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही एक उचित प्रबंधन जो सभी मीडिया के शैक्षणिक संस्थानों को व्यवस्थित कर सके नितांत आवश्यक है। मीडिया के शैक्षणिक संस्थानों में प्रतिस्पर्धा का भाव रहे यह अच्छा है लेकिन इसका सकारात्मक होना भी महत्वपूर्ण है। संसाधनों के स्तर पर भी यह जानना जरूरी है कि समय की मांग के साथ एक समुचित साझा व्यवस्था बन सके जिससे सभी संस्थान एक दूसरे के साथ अपने अनुभवों, प्रशिक्षण व तकनीकी समझ को जान सकें।

ऑनलाइन पाठयक्रमों व स्मार्टफोन आधारित संस्कृति ने पढ़ाई की जिस परंपरा को बदला है वह एक लंबे समय से चली आ रही व्यवस्था थी। अब स्मार्टफोन क्लासरूप की जगह ले रहे हैं। इसलिए संस्थानों ने भी इस व्यवस्था के साथ स्वयं को जोड़ लिया है। यह शिक्षण की दुनिया का एक नया स्वरूप है। नए-नए प्रतिमान गढ़े जा रहे हैं। शिक्षण अब विविधता के साथ, तकनीक के साथ व आकर्षण के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यह आकर्षण तकनीक ने दिया है। इस तकनीक की भाषा को मीडिया ने अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं को समझते हुए संस्थानों की दीवारों पर लाकर खड़ा कर दिया है। अब पत्रकारिता की दुनिया मिशन आधारित नहीं दिखायी पड़ती है, ना ही उस व्यवस्था की आवश्यकता इस दौर को है। तकनीक से रोजगार का सृजन हो रहा है। सामाजिक ताने-बाने भी तकनीक से प्रभावित हो रहे हैं। ऐसे में मीडिया के शैक्षणिक संस्थानों ने एक नई व्यवस्था को जिसमें विविधता है, आकर्षण है और प्रभाव भी है उसे सहजता के साथ स्वीकार किया है।

भविष्य की चुनौतियांः अपने 100 साल की यात्रा में मीडिया के शैक्षणिक संस्थानों में अभूतपूर्व बदलाव आया है। विषय के तौर पर, करियर के हिसाब से, अकादमिक उपलब्धियों के आंकड़े व अपने प्रभाव के चलते मीडिया के संस्थान अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। परंपरागत माध्यमों को साथ लेकर चलना व तकनीक के लिए हर संभव आत्मसात करने का प्रयास इस दिशा में महत्वपूर्ण है। पिछले एक दशक में ही अगर देखा जाए जो मीडिया के तौर तरीकों में जो बदलाव आया है वह शोध के विभिन्न बिंदुओं की ओर रेखांकित करता है। क्षेत्र के हिसाब से मीडिया के नए माध्यम सशक्त होते जा रहे हैं तो पत्रकारों व पत्रकारिता में भी नयापन या अनूठापन आता जा रहा है। यही स्थिति मीडिया के शिक्षण संस्थानों की है। एक समय में उन संस्थानों की विशिष्टता सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी जो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से सम्बन्धित संसाधनों में अग्रणी थे। देश भर में कुछ ही विश्वविद्यालय व मीडिया संस्थान इन संसाधनों को सहेज पाते थे। आजकल यह भी एक सामान्य बात हो गयी है। अब स्टूडियो कल्चर से

आगे की बात हो रही है। भविष्य उससे भी लंबी रेखा खींच रहा है। नए-नए सॉटवेयर छात्रों के साथ-साथ शिक्षण प्रशिक्षण से जुड़े समुदाय के लिए भी कुछ नया करने का अवसर दे रहे हैं। ऐसे में यह तो स्पष्ट है कि पत्रकारिता का विषय किसी परंपरागत विषय की तरह ठहराव के मोड़ पर नहीं रुकेगा। यहां निरंतर नया सीखने का जो दबाव फील्ड में काम करने वाले पत्रकारों पर रहता है वही अपेक्षाएं अब मीडिया संस्थानों में शिक्षण प्रशिक्षण की जिम्मेदारी संभाल रहे पेशेवरों पर रहेंगी। समय के साथ समन्वय और तकनीक का ज्ञान अगर पठन-पाठन का हिस्सा नहीं रहेगा तो विषय या उसके जानकार अर्थहीन हो सकते हैं। ऐसे में अपनी उपयोगिता बनाए रखने व उसे सार्थक सिद्ध करने के लिए इस कौशल में प्रवीणता आवश्यक रहेगी। पत्रकारिता अब कुछ सीमित विषयों या क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रह गयी है। पहले समाचार पत्रों में या टीवी चैनलों में विषयों के साथ बीट रिपोर्टिंग की जिम्मेदारी को प्रमुख समझा जाता था।[11] अब उसके विस्तार का दौर है। मल्टीमीडिया के दौर में मल्टीटैलेंटिड पत्रकारों की आवश्यकता है। इंडस्ट्री की मांग भी कौशल की विविधता होना है। ऐसे में शैक्षणिक संस्थानों पर इस मांग के अनुरूप कार्य करने का दबाव बना रहेगा। एक तरह से देखा जाए तो यह अत्यधिक सकारात्मक पक्ष है कि मीडिया इंडस्ट्री और शैक्षणिक संस्थानों के बीच का समन्वय इस प्रारूप में आ जाए, क्योंकि अगर शैक्षणिक संस्थान मीडिया में काम की आवश्यकताओं के अपने यहां पर प्रशिक्षण का कार्य करेंगे तो मीडिया के क्षेत्र में एक नया आकाश देखने को मिलेगा। नए अवसर मिलेंगे। इंटरनेट आधारित मीडिया के प्रारूपों ने अगर परंपरागत माध्यमों से लोगों को अलग किया है तो अपने साथ नए सम्बन्ध भी जोड़े हैं। नए मीडिया के सभी प्रारूपों को और अधिक विस्तार मिलेगा। वर्तमान समय में कॉलेज, विश्वविद्यालय पत्रकारों की नर्सरी का काम कर रहे हैं। पेशेवर व कुशल अकादमिक अनुभव के साथ शिक्षक पत्रकारों की नयी पीढ़ी को प्रशिक्षित कर रहे हैं। यह विस्तार अगले कुछ वर्षों में स्कूल स्तर पर देखा जाएगा, क्योंकि जिस प्रकार से इंटरनेट ने हमारी पठन-पाठन की दुनिया को बदल दिया है उससे विषय के लिए आवश्यक न्यूनतम परिधियां भी बदल रही हैं। इंटरनेट के दौर में, विशेषकर सोशल मीडिया ने जिस प्रकार से लोगों को अपनी बात रखने का मंच दिया है उससे हर व्यक्ति सूचना देने में सक्षम हो रहा है। बस आवश्यकता है तो थोड़े से तकनीकी कौशल व सीमित संसाधनों की। इसलिए आने वाले समय में यह व्यवस्था और प्रभावी होगी। शिक्षण संस्थानों में पेशेवरों की मांग तो होगी ही साथ में यह जिम्मेदारी भी रहेगी कि वह पत्रकारिता के बुनियादी मूल्यों को भी बनाए रखें। क्योंकि भारत के विषय में अगर पत्रकारिता के उद्भव को देखा जाए तो वह एक मिशल आधारित, विचार आधारित, समाज आधारित संकल्पित प्रयास है जिसका प्राथमिक उद्देश्य समाज को जागृत करने का रहा है। तकनीक के प्रभाव में शैक्षणिक संस्थानों ने संसाधनों को तो बदला है लेकिन अभी भी मूल्यों को पठन-पाठन में सम्मिलित किया है। आने वाले समय में भी इन संस्थानों की यह जिम्मेदारी रहेगी कि वह पत्रकारिता की नैतिकता को हर हाल में बनाए रखें।

सन्दर्भ

1. बाजपेयी, ए.पी. 'समाचार पत्रों का इतिहास', ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, 2010, पृ. 36-38
2 सरदाना, वी.के., मेहता, के. ऐ. 'जनसंचार कल आज और कल', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 53-54
3. वैदिक, वेद प्रताप, 'हिन्दी पत्रकारिता के विविध आयाम', हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ. 23-25
4. द्विवेदी, संजय, 'कम्युनिकेशन टुडे', पॉपुलर प्रिंटर जयपुर, 2021, पृ. 1-2
5. वही, पृ. 1-2
6 परमार, मानसिंह, 'भारत में मीडिया शिक्षा- समकालीन आकलन', कम्युनिकेशन टुडे, पॉपुलर प्रिंटर, जयपुर, 2021, पृ. 9-10
7 नंदा, वर्तिका, 'दो मिनट का मीडिया प्रशिक्षण, मीडिया शिक्षाः मुद्दे और अपेक्षाएं', यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 65-66
8. भानावत, एस., 'पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम', यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, जयपुर, 2000, पृ. 110-112
9. मिश्र, कृष्ण बिहारी, 'हिन्दी पत्रकारिता', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, 2011 पृ. 84-87
10 तिवारी, अर्जुन, 'स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी पत्रकारिता', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1982, पृ.27-29
11. पंत, नवीन चंद्र, 'पत्रकारिता के मूल सिद्धांत', कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004, पृ. 47-48

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य में शिव : एक अनुशीलन

❑ डॉ. मोहन लाल चढ़ार

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं पुरातात्विक पुरावशेषों में शिव की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। प्राचीन भारत में साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं कलात्मक दृष्टिकोण से भगवान शिव का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय कला एवं पुरातत्व में शैव धर्म की प्राचीनता सात हजार बर्ष पुरानी हड़प्पा सभ्यता से सिद्ध हुई है। हड़प्पा संस्कृति के पुरास्थलों से अनेक शिवलिंग एवं पशुपति शिव की कलात्मक आकृतियाँ मिली हैं। शिव के प्राचीनतम् उल्लेख ऋग्वेद की ऋचाओं में रुद्र के रुप में मिलते हैं। प्राचीन भारतीय धार्मिक एवं धर्मोत्तर साहित्य जैसे वेद, उपनिषदों, सूत्र साहित्य, महाकाव्यों, पुराणों, कालीदास के साहित्य, संगम साहित्य एवं मध्यकालीन ग्रन्थों में शिव से सम्बधित अनेक उल्लेख मिलते हैं। प्राचीन भारत में निर्मित मंदिरों की बाह्य दीवारों पर शिव की मूर्तियों को उत्कीर्ण किया गया है। भारतीय कला एवं वास्तुकला में शिवलिंग निर्माण परम्परा विविध रुपों में देखने को मिलती है। प्राचीन भारतीय अभिलेखों में शिव व शैव धर्म से सम्बधित उल्लेख मिलते हैं। प्रस्तुत लेख में साहित्य, अभिलेख, मूर्तिकला, वास्तुकला एवं स्थापत्य कला में शिव के विविध स्वरुपों से सन्निवद्ध योग, संगीत, आध्यात्म, विज्ञान एवं कला के विषय में विशद् एवं मूल्यांकनपरक विश्लेषण किया गया है।

सम्पूर्ण भारत में शिव पूजा के प्रमाण हमें प्राचीन ललितकलाओं, संस्कृति, धर्म, आध्यात्म, सिक्कों, अभिलेखों एवं उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों से मिले हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में शिव को योग, नृत्य, संगीत एवं शल्य चिकित्सा का भी जनक माना गया है। हड़प्पा संस्कृति से संबंधित अनेक पुरास्थलों के उत्खनन में शिवलिंग एवं योनी आकार के पाषाण खण्ड मिले हैं जिन्हें अनेक विद्वानों ने शिवलिंग पूजा के प्रमाण माना है। मोहेनजोदाड़ों से प्राप्त एक सील पर एक योगी मूर्ति का अंकन मिला है। इस आकृति को पुरातत्वविदों ने पशुपति शिव माना है।[1] हड़प्पा से प्राप्त इस मुद्रा पर अंकित पशुपति आसनाधीष्ठित मूर्ति योगासन तथा जानुस्पर्श मुद्रा में उत्कीर्ण की गई है। शिरोभूषण में महीष-श्रृंग लगे हैं। इस मुद्रा में बाईं ओर गज तथा व्याघ्र है, दाहिनी ओर गेंडा तथा वनमहीष बना है। आसन के नीचे मृग है। इससे स्पष्ट है कि यह 'पशुनापतेय' पशुपति अर्थात शिव का ही चित्रण है। नाग पूजा एवं वृषभ पूजा के पुरावशेष हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त हुए हैं। शिव का नाग एवं वृषभ से गहरा सम्बन्ध माना जाता है। वृषभ को शिव के वाहन नंदी के रुप में भी पूजा जाता है। हड़प्पा की समकालीन ताम्रपाषाणकालीन ग्रामीण संस्कृतियों जैसे आहाड़, महेश्वर-नावदाटोली, दंगवाड़ा, नागदा, कायथा एवं एरण इत्यादि के उत्खननों में वृषभाकृतियॉ एवं योनी व लिंगाकार की अनेक मूर्तियां एवं मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों का मानना है कि ताम्रपाषाण संस्कृतियों में भी रुद्र-शिव पूजा प्रचलित थी। विश्व के अनेक देशों में लिंग पूजा के प्रमाण मिले हैं। प्राचीन मिस्र एवं जापान में शिव उपासना के प्रमाण लिंग पूजा के रुप में मिले हैं। प्राचीन बेबीलोनिया में लिंग आकार के पाषाण खण्ड मिले हैं, जिनके माध्यम से शिव पूजा की जानकारी मिलती है।[2] साहित्य में शिव को सर्वव्यापी पूर्णब्रह्म एवं समस्त ज्ञान की राशि कहा गया हैं। सत्, रज्, तम् नामक तीनों गुण और ज्ञान इच्छा और क्रिया नामक तीनों शक्तियां उनके नेत्रों से निकली मानी जानी जाती हैं। कालिदास ने शिव की अखंड सत्ता का बराबर गुणगान किया है। उन्होंने तो यहां तक स्वीकार किया है कि ब्रह्मा विष्णु महेश एक ही मूर्ति के तीन रूप हैं विष्णु पुराण में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को ही ब्रह्मा के तीन रुप बताया गया है।[3]

साहित्य में शिव : प्राचीन भारतीय साहित्य में शिव से सम्बधित अनेक प्रमाण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में मिलते हैं। ऋग्वेद में शिव को रुद्र कहा गया है।[4] वैदिक काल में शिव को रुद्र के रूप में पूजा जाता था। सामान्य देवता की तरह पूजित रूद्र की संज्ञा से विभूषित शिव की पहचान ऋग्वेद में अग्नि तथा इंद्र से की गई है। यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय

❑ सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, इं.गां.रा. जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक (म.प्र.)

का प्रारम्भ इस श्लोक ''नमसस्ते इत्यस्थ परमेष्ठी कुत्स ऋषिः रुद्रों देवता आर्ष गायत्री छन्दः षड़ज स्वतः, नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवे नमः बाहुभ्यासुत ते नमः'' से हुआ है। यजुर्वेद के इस अध्याय में रुद्र के नाम इस प्रकार से उल्लेखित है : गिरिशन्त, शिवा, शिवेन, ताम्रअरुण बभ्रु, नीलग्रीव सहस्त्राक्ष, धन्वन, कपर्दिन शिवों भव, हिरण्य बाहू, दिशापति, बम्लुश जगत्पति, क्षेत्रपति, वनपति, रोहित स्थपति, वृक्षपति, औषधिपति, कक्षपति, अरण्यपति इत्यादि। यजुर्वेद में रूद्र से प्रार्थना की गई है वह बच्चों की रक्षा करें, इस प्रकार वह उत्तर-वैदिक काल में बच्चों के रक्षक माने जाते थे।[5] अथर्ववेद में पशुपति के रुप में परम शक्तिशाली रुद्र की सर्वोच्च स्थिति का वर्णन किया गया है। उत्तर-वैदिक काल में त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की पूजा प्रमुखतः से होने लगी थी। इस प्रकार शैव धर्म का विकास हड़प्पा सभ्यता से लेकर वैदिक काल तक क्रमशः होता रहा। शैव धर्म के साधकों का प्राचीनतम् उल्लेख पाणिनि के अष्टाध्यायी में मिलता है। पाणिनी के अष्टाध्यायी में रुद्र, भव एवं शर्व का प्रयोग मिलता है।[6] सूत्र काल में शिव औषधि के देवता व विघ्न विनाशक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। शिव की मूर्ति और लिंग उपासना का सर्वप्रथम उल्लेख गृहसूत्रों में मिलता है। गृहसूत्रों में शिव को प्रथम बार 'शंकर' के रुप में उल्लेखित किया गया है। बौधायान गृह्यसूत्र में शिव मूर्ति एवं 'शिवलिंग' निर्माण का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। इसी ग्रन्थ में मंदिर के लिए 'देवगार' शब्द प्रयुक्त किया गया है।[7] श्वेताम्बर उपनिषद् में रुद्र को ईशा, महेश्वर, शिव और ईशान कहा गया है। एक श्लोक में शिव के विध्वंसात्मक रुप की आराधना की गई है। इस उपनिषद में शिव को महान योगी, परब्रह्म, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, और त्रिकालदर्शी के रुप में वर्णित किया गया है।[8] उपनिषदों में शिव को तमोगुण से सम्बधित माना गया है। शिव भारतीय महाकाव्यों रामायण एवं महाभारत में प्रमुख देवता के रूप में पूजे जाते थे। महाभारत में शिव को ईशान, महेश्वर, महादेव, भगवान, शिव कहा गया है।[9] महाभारत में शिव के वाहन के रुप में नंदी को बताया गया है। शिव को सृष्टि का विनाशक और हाथों में पिनाक धनुष, शूल और वज्र धारण करने वाले देव कहा गया है। महाभारत के वनपर्व, द्रोणपर्व और अनुशासन पर्व में शिव पूजा का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार महाकाव्यों एवं पुराणों में शिव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का स्वरुप परिलक्षित होता है। पतंजली के महाभाष्य में शिव एवं रुद्र का उल्लेख मिलता है। पतंजली ने शिव का उल्लेख लौकिक देवताओं में किया है। पंतजलि के साहित्य में शिव को 'शिव भागवत' कहा गया है। अश्वघोष रुद्र को वृषध्वज और भव कहता है।[10] शिव का विकसित रूप हमें पुराण काल में देखने को मिलता है। पुराणों में रुद्रशिव को उच्चदेव, सृष्टिकर्ता, विश्वकारण, महात्मना, अनश्वर पुण्यात्मा एवं रचनात्मक कार्य करने वाले देवता कहा गया है। पौराणिक साहित्य में त्रिदेवों में शिव को संहारक के रुप में भी स्थापित किया गया था। शिव को पुराणों में अत्यन्त कृपालु एवं अनुग्रहदाता बताया गया है। पुराणों में शिव को नृत्य, संगीत एवं योग का प्रवर्तक माना गया है। पुराणों में शिव के चण्ड, भैरव और महाकाल स्वरुप की चर्चा मिलती है।[11] पुराणों के अनुसार शिव के आस-पास गण, राक्षस, दैत्य, गन्धर्व,, पिशाच, असुर एवं यक्ष रहते हैं।

सिक्कों में शिव : भारत के प्राचीनतम् आहत सिक्कों पर बृषभ अर्थात नंदी एवं नंदीपद का अंकन किया गया है। आहत सिक्कों पर शिव से सम्बधित अर्द्धचन्द्र भी बना है। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में वत्स महाजनपद का राजचिह्न नंदी था। उज्जैयिनी से दूसरी शती ईस्वी पूर्व के सिक्कों पर शिव आकृति अंकित मिली है। उज्जैयिनी के सिक्कों पर नंदी सहित त्रिमुखी शिव अपने हाथों में दण्ड और कमण्डल लिए बनाये गये हैं।[12] मोइस के सिक्के पर शिव का अंकन मिलता है।[13] सातवाहन शासकों के सिक्कों पर शिव का वाहन नंदी बना है।[14] कुषाणकालीन राजा विम-कैडफाइसेस के सिक्कों पर नंदी सहित त्रिशूलधारी शिव का अंकन किया गया है। उनके सिक्कों पर शिव के पुत्र कार्तिकेय एवं गणेश को भी बनाया गया है।[15] विम-कैडफाइसेस के सिक्कों पर परम 'महेश्वर' की उपाधि लिखी है। शिवलिंग, नंदी व नंदीपद, अर्द्धचन्द्र, सर्पयुग्म का अंकन उज्जैयिनी एवं तक्षशिला से प्राप्त ईसा पूर्व दूसरी शती के सिक्कों पर मिलता है।[16] नाग शासकों के सिक्कों पर नंदी एवं त्रिशूल अंकित है। पह्लव एवं शक क्षत्रप शासकों के सिक्कों पर त्रिशूलधारी शिव के साथ बृषभ एवं त्रिशूल के चिह्न बने हैं।[17] शिव का अंकन यौधेय एवं कुणिन्द शासकों के सिक्कों पर भी मिलता है।[18] औदुम्बर के सिक्कों पर शिव को व्याघ्र चर्म लिये दिखाया गया है। इनके सिक्कों पर त्रिशूल एवं शिव मंदिर के चिह्न भी बने हैं। कुमारगुप्त के सिक्कों पर

शिव के पुत्र कार्तिकेय को बनाया गया है।[19] हर्षबर्द्धन के सिक्कों के पृष्ठभाग पर नंदी पर बैठे पार्वती सहित चतुर्भुजी शिव को ललितासान में अंकित किया गया है। इन सिक्कों पर 'परममहेश्वर' की उपाधि भी लिखी है। बंगाल के गौड़ राजा शशांक के सिक्कों पर नंदी पर बैठे शिव का अंकन किया गया है।[20] हिन्द सासानी सिक्कों पर भी शिव और नंदी को बनाया गया है।[21]

अभिलेखों में शिव : प्राचीन भारत में उत्कीर्ण किये गये अभिलेखों से शिव से सम्बधित अनेक महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। मथुरा से प्राप्त शक क्षत्रपकालीन एक शिलालेख में शिव मंदिर तथा मूर्ति निर्माण की जानकारी मिली है।[22] तक्षशिला उत्खनन में सिरकप टीला से मार्शल महोदय को एक कांसे की मुहर मिली थी जिसमें शिव की मूर्ति सहित ब्राह्मी तथा खरोष्ठी में "शिवरक्षितस" लेख अंकित है। शिव का उल्लेख भारत के प्रमुख निम्न अभिलेखों में मिलता है।[23] समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा शिलालेख, चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरी अभिलेख, कुमारगुप्त का करमदण्डा प्रस्तर लिंग अभिलेख, कुमारगुप्त और बन्धुवर्मा का मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख,[24] यशोधर्मा का मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख,[25] हर्ष का मधुवन ताम्रपत्र, हर्ष का बासखेड़ा अभिलेख, हूण राजा मिहरिकुल का ग्वालियर अभिलेख, आदित्यसेन का अफसड अभिलेख, जीवितगुप्त द्वितीय का देव बरणार्क अभिलेख, ईशान वर्मा का हरड़ा प्रस्तर अभिलेख,[26] अवन्तीवर्मा का नागार्जुन गुहालेख, प्रवरसेन का ताम्रपत्र लेख, हरिहर वर्मा का सांगली ताम्रपत्र, धंगदेव का खजुराहो अभिलेख, नारायणपालदेव का भागलपुर ताम्रपत्र, विजयसेन का देवपाड़ा अभिलेख,[27] गुर्जर प्रतिहार शासक बाउक की ग्वालियर प्रशस्ति, राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष प्रथम का संजन ताम्रपत्र, धर्मपालदेव का खालिमपुर ताम्रपत्र, उदयादित्य की उदयपुर प्रशस्ति,[28] सारभपुरीय राजा सुदेवराज का आरंग ताम्रपत्र, पाण्डुवंशी भवदेव रणकेशरी का भांदक से प्राप्त शिलालेख, पाण्डुवंशी महाशिवगुप्त के लोथिया ताम्रपत्र, महाशिवगुप्त बलार्जुन का मल्लार ताम्रपत्र, सामवंशी राजा महाभवगुप्त जनमेजय का ताम्रपत्र, सोमवंशी नरेश महाभवगुप्त का कुडोपाली ताम्रपत्र, काकरय के सोमवंशी राजा भानुदेव का कांकेर शिलालेख, रतनपुर के कलचुरी राजा पृथ्वीदेव का अमोदा ताम्रपत्र, जाजल्लदेव का रतनपुर शिलालेख, जाजल्लदेव का मल्लार शिलालेख, जाजल्लदेव का अमोदा शिलालेख,[29] पृथ्वीदेव द्वितीय के समय का कोटगढ़ शिलालेख, पृथ्वीदेव द्वितीय का डैकोनी ताम्रपत्र, गोपालदेव का पुजारी पाली शिलालेख, पृथ्वीदेव द्वितीय का रतनपुर शिलालेख, प्रतापमल्ल का बिलैगढ़ ताम्रपत्र, वाहर का कोसगई का शिलालेख, ब्रह्मदेव का रायपुर शिलालेख, त्रिपुरी के कलचुरी राजा शंकरगढ़ का सागर अभिलेख, लक्ष्मणराज का कारीतलाई शिलालेख, युवराजदेव का विलहरी अभिलेख, युवराजदेव का बांधेगढ़ अभिलेख, युवराजदेव का गोपालपुर अभिलेख, शंकरगढ़ का जबलपुर अभिलेख, कोक्ल्लदेव का गुर्गी शिलालेख, गांगेयदेव का मुकुन्दपुर शिलालेख, गांगेयदेव का पियावन शिलालेख, कर्णदेव का बनारस ताम्रपत्र, कर्णदेव का गहरवा शिलालेख, कर्णदेव का रीवा शिलालेख, कर्णदेव का सिमरा शिलालेख, यशःकर्ण का खैरा ताम्रपत्र, यशःकर्ण का जबलपुर ताम्रपत्र लेख, गयाकर्ण का तेवर शिलालेख, गयाकर्ण का बहुरीबन्द शिलालेख, नरसिंहदेव का भेड़ाघाट शिलालेख, नरसिंहदेव का आल्हाघाट शिलालेख, नरसिंहदेव का लालपहाड़ शिलालेख, जयसिंहदेव का जबलपुर ताम्रपत्र लेख, जयसिंहदेव का जबलपुर शिलालेख, जयसिंहदेव का रीवा ताम्रपत्र लेख, जयसिंहदेव का तेवर शिलालेख, जयसिंहदेव का करनबेल शिलालेख, जयसिंहदेव का रीवा शिला लेख, विजयसिंहदेव का भेड़ाघाट शिलालेख इत्यादि में शिव का उल्लेख मिलता है।[30] दक्षिण भारत के राष्टकूट, चालुक्य, चोल, पल्लव शासकों के अभिलेखों में शैव धर्म से सम्बधित अनेक प्रमाण मिले हैं। यह सभी शासक शैव धर्म को राजधर्म के रुप में मानते थें। इनके समय लगभग सभी मंदिरों में शिव के विभिन्न रुपों का अंकन किया गया था।

प्राचीन साहित्य एवं अभिलेखों में शैव सम्प्रदाय के कुछ उप-सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं। इनमें पाशुपत सम्प्रदाय महत्वपूर्ण है। इस सम्प्रदाय में शिव के एक रुप लकुलीश की पूजा की जाती है। आठवी शताब्दी ईस्वी से शैव धर्म में पाशुपत सम्प्रदाय का विकास देखने को मिलता है। इसका प्रमुख केन्द्र भारत में चेदी एवं दक्षिण कोशल का प्रदेश था। कलचुरी-कालीन अभिलेखों के अनुसार शैव मत के पाशुपत सम्प्रदाय की स्थापना कण्ठ ने की थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा अभिलेख में पाशुपत सम्प्रदाय के उदिताचार्य की चर्चा मिलती है। नारायण पाल के भागलपुर ताम्रपत्र में पाशुपत सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। युवराजदेव के बिलहरी अभिलेख में श्री कण्ठ का उल्लेख आया है। लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय के सम्बन्ध

में तेवर से प्राप्त गया कर्ण के अभिलेख में जानकारी मिलती है, कि इस काल में पाशुपताचार्य भावतेज एवं भाव-ब्राह्मण शैव धर्म की पंचार्थ शाखा के अनुयायी होने के साथ पाशुपत दर्शन के महान ज्ञाता थे।[31] कोक्कल देव के गुर्गी अभिलेख में लकुलीशों की पंचार्थ शाखा का उल्लेख मिलता है। शैव धर्म की पंचार्थ उपासना में क्रमशः पाँच क्रियाएँ कार्य, करण, योग, विधि और दुखान्त इन पॉच तत्वों की उपासना की जाती है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी में कापालिक सम्प्रदाय की जानकारी मिलती है। शंकरगण के छोटी देवरी अभिलेख में उल्लेख है कि इस समय कापालिक अस्थियों के आभूषण पहनते थे। वह नाग के कंकन पहनतें थे तथा चिता भस्म लगाते थे। कापालिक सम्प्रदाय के अनुयायी नर-कपाल में भोजन करते, शरीर पर भस्म रमाते, भस्म खाते, लगुड़ धारण करते, सुरापात्र रखते एवं भैरव की पूजा करते थें।[32] इस समय मध्यभारत में शैव धर्म के उप-सम्प्रदाय में सोम सिद्धांत सम्प्रदाय, सिद्ध सम्प्रदाय और शिव सिद्धांत सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय थे। नेपाल और गुजरात के अभिलेखों मे भी इनका उल्लेख मिलता है। सोम सिद्धांत सम्प्रदाय का प्रारम्भ गुजरात के सोमनाथ मंदिर के शैवाचार्यों से हुआ था। ग्यारहवी शती ईस्वी से 84 सिद्ध सम्प्रदाय का भी काफी प्रचार प्रसार हुआ था। कलचुरी नरेश कोक्कलदेव द्वितीय के अभिलेख में शिव सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। इस सम्प्रदाय में तीन प्रमुख शाखाओं में आमर्दक, मत्तमयूर एवं मधुमत्तेय उल्लेखनीय है। आमर्दक शैवमत मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में प्रचलित था। मत्तमयूर एवं मधुमत्तेय शैवमत मध्यप्रदेश के बुदेलखण्ड क्षेत्र में प्रचलित थे। शिव सिद्धांत सम्प्रदाय की मत्तमयूर और मधुमतेय शाखा के बारे में उनकी गुरु शिष्य परम्परा की जानकारी कलचुरी अभिलेखों में मिलती है। शिव सिद्धांत की मत्तमयूरों के तीन सिद्धांत पति, पशु एवं पाश और उनकी चार प्रमुख क्रियाएॅं विद्या, क्रिया, योग और चर्चा प्रमुख थीं।[33] कलचुरी काल में इनके मठों में इस सम्प्रदाय के आचार्यो द्वारा धर्म, दर्शन, तर्क और न्याय की शिक्षा दी जाती थी। इस शाखा का प्रभाव चेदी जनपद, मालव, कोकण, और उड़ीसा में भी था। मालवा क्षेत्र में शैव पाशुपतों का प्रभाव एवं महाकौशल व बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मत्तमयूर एवं मधुमतेय शैव सम्प्रदायों का प्रधान रहा है।[34] इस प्रकार मध्य भारत में दूसरी शती ईस्वी से चौदहवी शताब्दी ईस्वी तक शैव परम्परा में शैव सम्प्रदाय के साथ साथ उप-सम्प्रदायों का विकास दिखाई देता है।

लिंग पूजा : प्राचीन भारतीय साहित्य एवं पुरातत्व में लिंग पूजा के अनेक प्रमाण मिले हैं। महाभारत एवं रामायणं में लिंग उपासना का उल्लेख मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर-पुराण, अग्निपुराण, शिवपुराण में लिंग निर्माण का विस्तार से वर्णन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर-पुराण के अनुसार शिवलिंग को तीन भागों में निर्मित किया जाता है।[35] शिवलिंग के ऊपरी वृत्ताकार भाग को भोगपीठ, मध्य भाग को भद्रपीठ एवं निचले भाग को ब्रह्मपीठ माना जाता है। अभी तक उपलब्ध लिंगों को सामान्य लिंग, सहस्त्रलिंग और मुखलिंग में विभाजित किया गया है। प्रथम शती ईसापूर्व का आंध्रप्रदेश के गुडीमल्लम् से प्राप्त परशुरामेश्वर शिवलिंग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुषाणकालीन मुखलिंग मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। गुप्तकाल में शिवपूजा शिवलिंग के रूप में प्रचलित थी। मध्यप्रदेश में स्थित नाचना कुठारा, भूमरा एवं भीटा उत्तरप्रदेश से गुप्तकालीन कला में निर्मित भारत के प्राचीनतम् मुखलिंग मिले हैं। मध्यप्रदेश के सागर जिला में स्थित एरण से बड़ी संख्या में लिंगोपासना के प्रमाण मिले हैं।[36] गुप्तकाल का प्रारंभिक अभिलिखित शिवलिंग एरण से मिला है। इस शिवलिंग को वर्तमान में गोपाबाई की सती के रुप में पूजा जाता है।[37] प्राचीन भारत में प्रतीक पूजा के रुप में लिंग पूजा की जाती थी। योनी पीठ पर स्थित वस्तुतः शिवलिंग प्रकृति और पुरुष के समन्वय से सृष्टि की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीकात्मक रुपांकन है। इसी में शिव और शक्ति का स्वरुप दिखाई देता है।[38] हमारे प्राचीन चिन्तकों ने इस चिन्तन में व्यापकता दी और धर्म के माध्यम से यह दार्शनिक चिन्तन भारतीय समाज में पहुँचा दिया। धार्मिक दृष्टिकोण से इस शैव परम्परा की विकासधारा में शिव और शक्ति के विभिन्न नामों की कल्पना की गई थी। साहित्य में रुपों एवं गुणों के आधार पर शिव को रुद्र, पशुपति, शम्भू, महादेव, भव, शंकर, नीलकण्ठ, अमरेश्वर, नटराज, चन्द्रशेखर, अर्धनारीश्वर, हरिहर, लकुलीश, महेश्वर, गंगाधर, उमापति, भूतनाथ, भू-पति और ईशान इत्यादि प्रमुख नामों से जाना जाता है। शिव का रुपांकन भारत की समन्वयवादी नीति का परिणाम माना गया है। इसीलिए समाज के प्रत्येक वर्ग ने इनकी समान रुप से उपासना की है। साहित्य में उज्जैन में स्थित शिवलिंग को महाकाल माना गया है। कालिदास के साहित्य में शिव को महाकाल कहा गया है। मध्यकाल में

महाकाल को लोकदेवता के रुप में भी पूजा जाता था। बाणभट्ट के साहित्य में भी महाकाल का उल्लेख मिलता है। पाशुपत परम्परा में महाकाल की विशेष पूजा होती है।[39]

कला एवं स्थापत्य में शिव : प्राचीन कला में शैव सम्प्रदाय के बहुआयामी पक्ष देखने को मिलते हैं। इस समय शिव के सभी कल्याणकारी रुप समाज में फैल चुके थे। भारतीय कला में सर्वाधिक अंकन शिव के विभिन्न रुपों का हुआ है। प्राचीन कला पूर्णरुप से तत्कालीन समाज में उपस्थित भौतिक एवं प्राकृतिक वस्तुओं के साथ साथ कलाकार के मनोभावों पर आधारित थी। उसमें कलाकार के संस्कार, धर्म, मनोगत भावनाओं का अप्रत्यक्ष रुप से अंकन दिखाई देता है। यही कारण है कि कुषाण वंश के शासकों ने शिव का अंकन मूर्तिकला एवं सिक्कों पर करवाया था। कुषाणों के बाद भारशिव नागों का शासन था। यह शैव धर्म के प्रबल समर्थक माने जाते थे। दूसरी एवं तीसरी शती ईस्वी में नाग शासकों के समय में एरण, मथुरा, पद्मावती, विदिशा से शैव धर्म से सम्बधित अनेक प्रमाण मिले हैं। गुप्तकाल, प्रतिहार काल, परमारकाल, चन्देलकाल, कच्छपघातकाल, कलचुरी काल एवं दक्षिण भारत की कला में शिव का अत्याधिक अंकन किया गया है। गुप्तकालीन कला में भी शिव का अंकन मध्यभारत के एरण, उदयगिरी, देवगढ़, सॉची, नचना-कुठार एवं भूमरा इत्यादि में देखने को मिलता है।[40]

मध्यभारत एवं दक्षिण भारत की स्थापत्य कला एवं वास्तुकला में शैव सम्प्रदाय के अनेक प्रमाण मिले हैं। भारत में मंदिर स्थापत्य कला चौथी-पॉचवी शताब्दी ईस्वी से प्रारम्भ होकर बारहवीं शती ईस्वी तक अपने उत्कृष्ट शिखर पर पहुॅच चुकी थी। सर्वप्रथम गुप्तकाल में विष्णु व शिव मंदिरों के प्रमाण मिले हैं।[41] गुप्तकाल में मदिरों के लिए 'शिलाप्रसाद' शब्द प्रयुक्त किया जाता था। इसका उल्लेख तोरमाण के एरण अभिलेख में मिलता है।[42] गुप्तकाल के पूर्व गुहा स्थापत्य कला में मंदिरों के प्रारम्भिक स्वरुप को देखा जा सकता है। भारत के लगभग सभी मंदिरों की बाह्य दीवारों पर किसी न किसी रुप में शिव का अंकन देखने को मिलता है। आठवी शती ईस्वी से लेकर तेरहवी शती ईसवी के मध्य सम्पूर्ण भारत में कला की क्षेत्रीय परम्पराओं ने जन्म लिया। इनमें गुर्जर प्रतिहार, परमार, चंदेल, कलचुरियों के काल में क्षेत्रीय कला में नवीन मापदण्ड दिखाई देते हैं। गुर्जर प्रतिहारों के समय में ग्वालियर और उसके आसपास के क्षेत्रों में पढ़ावली, मितावली, और नरेसर, आदि स्थानों पर प्रतिहारकालीन शैव मंदिरों का निर्माण किया गया था। दसवी एवं ग्यारहवी शती ईस्वी के शिव मंदिरों में मुरैना जिले मे स्थित ककनमठ, सोहानिया, भिण्ड जिले में स्थित बौरेश्वर का शिव मंदिर और अटेर इत्यादि के शिव मंदिर उल्लेखनीय है। गुना जिले में स्थित कदवाहा का शिव मंदिर प्रतिहारकालीन कला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। आठवी शताब्दी ईस्वी में बुन्देलखण्ड में स्थित चंदेल शासकों के राज्यकाल में निर्मित मंदिरों में प्रमुख रुप से शिव मंदिर देखने को मिलते हैं। चंदेलों द्वारा बनाये गये खजुराहों के मंदिरों में विश्वनाथ मंदिर, मांतगेश्वर मंदिर, कंदारिया महादेव मंदिर, नन्दी मंदिर उल्लेखनीय हैं।[43] चन्देल शासकों ने अजयगढ़ एवं कालिंजर के दुर्गो में अनेक शिवलिंग तथा शिव मूर्तियों का निर्माण करवाया था। मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में परमार शासकों द्वारा अनेक शिव मंदिरों का निर्माण भूमिज शैली में करवाया था। यहां पर भोज परमार, उदयादित्य और मुंज इत्यादि ने विशालतम शिव मंदिरों का निर्माण करवाया था। परमारकालीन शिव मंदिरों में मध्यभारत में स्थित उदयपुर, भोजपुर, उज्जैन, ओंकारेश्वर, बदनावर, ऊन, नीमच, नेमावर, जामली एवं हिगलाजगढ़ के भूमिज शैली में निर्मित मंदिर महत्वपूर्ण माने जाते हैं। मध्यकालीन ग्रन्थों समरांगण सूत्रधार एवं अपराजितपृच्छा में भूमिज शैली मंदिर स्थापत्य कला का विस्तार से वर्णन मिलता है। इस क्षेत्र में चंन्देलों एवं कलचुरियों ने अनेक शिव मंदिरों का निर्माण करवाया था, क्योकि वह स्वयं भी शैवमतावंलम्बी थे। चंदेल राजाओं ने खजुराहों में अनेक शिव मंदिरों का निर्माण कार्य करवाया था। कलचुरी शासकों ने अनुपपुर जिले में स्थित अमरकटंक में मच्छेन्द्रनाथ मंदिर, पतालेश्वर मंदिर, रीवा जिले में स्थित गुर्गी का मंदिर, दमोह जिले में स्थित नोहटा का नोहलेश्वर मंदिर, जबलपुर जिले में स्थित भेडाघाट में गोलकीमठ़ नामक मंदिर, शहडोल जिले में स्थित विराटेश्वर मंदिरों को बनवाया था।[44]

प्राचीन भारतीय कला एवं साहित्य में नंदी को शिव का वाहन बताया गया है। साहित्य में शिव के वाहन वृषभ के रुप में नंदी, नंदेश्वर, नंदीकेश्वर आदि नाम मिलते हैं। वृषभ भारतीय कला में प्रागैतिहासिक काल से देखने को मिलता है। मध्यप्रदेश में स्थित भीमबैठका व अन्य पुरास्थलों से भी वृषभ की आकृतियॉ शैलचित्रकला में प्राप्त हुई हैं।

हड़प्पा से प्राप्त सीलों में वृषभ की आकृतियॉ बनी मिली हैं। ऋग्वैदिक ऋचाओं में वृषभ का उल्लेख मिलता है। रामायण एवं महाभारत काल में नंदी का उल्लेख शिव के प्रमुख गण के रुप में मिलने लगता है। रामायण में नंदी को बौना रूप वाला एवं बलशाली बताया गया है। महाभारत के अनुसार नंदीश्वर की मूर्ति के दर्शन करने से मनुष्य पाप मुक्त हो जाता हैं। पौराणिक कथाओं में नंदी के विविध रूपों का उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण में नंदी को शिवलिंग के सामने स्थापित करने का विधान है। अपराजिपृछा में नंदी कों नंदीश्वर कहा गया है। शिव पुराण, लिंग पुराण एवं भागवत पुराण में शिव के प्रमुख गणों में नंदी का उल्लेख मिलता है।[45] जनपदकालीन सिक्कों एवं कुषाणकालीन सिक्कों, नाग सिक्कों, स्थानीय राजाओं के सिक्कों, एवं शक क्षत्रप शासकों के सिक्कों पर नंदी की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। मौर्यकालीन कला में नंदी को स्तम्भों के साथ साथ सिक्कों पर भी बनाया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नंदीकेश्वर को चार भुजाओं वाला कहा गया है। प्रथम शताब्दी ईस्वी में मथुरा कला में शिव के साथ नंदी को भी दिखाया गया है। गुप्तकाल में निर्मित अनेक शिवलिंग और नंदी मूर्तियां प्राप्त हुईं हैं। एरण, जिला सागर मध्यप्रदेश से गुप्तकालीन पाँच शिवलिंग एवं नंदी मिले हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण, वृहत्संहिता और मत्स्य पुराण, वायु व ब्रह्माण्ड पुराण में शिव मूर्ति के साथ नंदी मूर्ति के निर्माण के निर्देश उल्लेखित हैं।[46] मध्यकाल में निर्मित शिव मंदिरों में नंदी की विशाल प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

मध्यप्रदेश में स्थित कालान्जर दुर्ग में चंदेलकालीन शिव की अनेक मूर्तियां एवं शिवलिंग मिले हैं। उत्तरप्रदेश के ललितपुर जिले में मध्यकाल में निर्मित नीलकंठेश्वर मंदिर में सदाशिव की एक सुन्दर मूर्ति स्थापित है, जो भारत की शिव मूर्तियों में अपना विशेष स्थान रखती है इसके अलावा शिव के रूपों में गजासुर की दस भुजी शिव प्रतिमा, शिव की तांडव मूर्ति, नटराज स्वरूप और सदाशिव की अनेक मूर्तियां कालिंजर के अलावा खजुराहों से भी प्राप्त हुई हैं। उमा महेश्वर, अर्धनारीश्वर भैरव, रावणानुग्रह, की मूर्तियां मध्यभारत के अनेक क्षेत्रों से मिलती हैं। चन्देलकालीन कला में अर्धनारीश्वर मूर्तियों की दृष्टि से खजुराहो का विशेष स्थान है। यह मूर्तियॉ अपराजिपृच्छा ग्रन्थ में वर्णित मूर्ति निर्माण परम्परा के अनुसार ही बनी हैं।[47] शिव और पार्वती के संयुक्त होने की कथा शिवपुराण में मिलती है। भारतीय शिल्प संहिता में भी शिव पार्वती के संयुक्त रुप की अवधारणा मिलती है।

मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से शिव के अनुग्रह, संहार, और नृत्य मूर्तियों का विवरण कलचुरी अभिलेखों में मिलता हैं। मल्लार अभिलेख में शिव की तुलना मंगल कलश से एवं उनके जटा-जूटों की तुलना कलश के आम्रपल्लव से की गई है। शिव के जटा-जूट में चन्द्रमा की स्थिति के कारण उन्हे चन्द्रशेखर भी कहा गया है। शिव के किरातार्जुन, त्रिपुरान्तक, गजासुर, कामान्तक एवं दक्षाध्वरध्वंसक स्वरुप की चर्चा कलचुरी अभिलेखों में मिलती है। प्राचीन भारतीय कला में शिव के सौम्य रुप की मूर्तियों में चन्द्रशेखर, पशुपति, उमामहेश्वर, महादेव, माहेश्वर, दक्षिणामूर्ति, हरिहर, कल्याण सुन्दर, नृत्यरत शिव, वृषभ-वाहन, शिव, शंकर, शम्भु, सोमेश्वर, सोमनाथ, ईश, ईशान, पशुपति, चन्द्रशेखर, नीलकण्ठ, श्रीकण्ठ, महादेव, एवं अर्द्धनारीश्वर मूर्तियां मिलती हैं। शिव की अन्य सौम्य रुप या अनुग्रह रुप की मूर्तियों में चण्डेशानुग्रह, किरातार्जुन, लिगोंद्भव, गंगाधर एवं रावणानुग्रह महत्वपूर्ण हैं। शिव के रुद्र स्वरुप या संहार मूर्तियों में भैरव, कामान्तक, गजासुर संहार, कालारि, त्रिपुरान्तक, शरभेष, अन्धकासुर वध, ब्रह्मशिरोच्छेदक्, वीरभद्र, त्रयम्बक, शर्व, रुद्र, उग्र, धूर्जटि एवं जलन्धर हर मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।

प्रथम शती ईसापूर्व का गुडीमल्लम् से प्राप्त शिवलिंग एवं कुषाणकाल में निर्मित मुखलिंग कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।[48] मध्यप्रदेश में स्थित मन्दसौर से गुप्तकालीन अष्ठमुखी शिवलिंग प्राप्त हुआ है। लिंगरुप शिव के अव्यक्त रुप की उपासना है।[49] गुप्तकाल में निर्मित शिव की अर्द्धनारीश्वर की मूर्तियां, हरीहर की मूर्तियां एवं उमामहेश्वर की मूर्तियां मध्यभारत एवं उत्तर भारत के अनेक पुरास्थलों से मिली हैं। पूर्व-मध्यकालीन भारत में शिव की अनेक त्रिमुखी मूर्तियां मिली हैं। ये तीन मुख ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एकरुपता के सूचक माने जाते हैं। यह मुख सत्, रज और तमस एवं इच्छा, ज्ञान और क्रिया के प्रतीक भी माने जाते हैं। शिव की चार मुखी मूर्तियों में एक मुख तत्पुरुष दूसरा वामदेव तीसरा सद्योजात्, और चौथा अघोर के रुप में स्वीकार किया गया है। शिव की पॉच मुखी मूर्तियों में तत्पुरुष, वामदेव, अघोर, सद्योजात्, और ईशान नामक मुख स्वीकार किये गये हैं। इन पॉच मुखों को साहित्य में पंचभूत क्रमशः जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश के प्रतिनिधित्व के रुप में भी माना गया है। कला

में शिव मूर्ति को द्विभुजी एवं चतुर्भुजी, दसभुजी बनाया गया है। शिव के ईशान एवं सदाशिव स्वरुप को दसभुजी बनाया गया है। सदाशिव के दस हाथों में आयुद्ध क्रमशः त्रिशूल, परशु, कृपाण, वज्र, अग्नि, नाग, घण्टा, अंकुश, पाश और अभय मुद्रा में उत्कीण किये गये हैं।[50]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार उमामाहेश्वर की मूर्ति में उमा और शिव को एक पीठिका पर अलिंगन करते हुए दिखाया जाता है। शिव के जटा-जूट के साथ उनके दायें हाथ में नीलोत्पल्ल कमल तथा बायॉ हाथ उमा के कंधे पर होना चाहिए। उमा का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर और बाये हाथ में कमल लिये प्रदर्शित होना चाहिए।[51] रुप मंण्डन के अनुसार उमा महेश्वर को चर्तुभुजी बनाना चाहिए। उनका एक हाथ उमा के कंधे पर दूसरे हाथ में सर्प प्रदर्शित होना चाहिए। उमामहेश्वर मूर्ति में सिंह एवं नंदी के साथ भृंगी ऋषि को प्रदर्शित किया जाना चाहिए। इस प्रकार की मूर्तियां मध्यभारत व दक्षिण भारत के अनेक पुरास्थलों से मिली हैं। शिव के स्वरुप भैरव की द्विभुजी, चर्तुभुजी एवं अष्टभुजी मूर्तियां अनेक पुरास्थलों से मिली हैं। मूर्ति निर्माण कला में त्रिपुरान्तक मूर्ति के अंकन में रथारुढ़ शिव के हाथों में धनुष बाण और त्रिशूल बनाया जाता हैं। शिव के भिक्षाटन रुप में कपाल, दक्षिणामूर्ति रुप मे कमण्डलु, गजान्तक रुप में गजचर्म, नटराज के रुप में डमरु और अंधकान्तक रुप में सप्तमातृकाओं का चित्रण मिलता है। अन्धकान्तक या मृत्युंजय रुप में मृत्यु से रक्षित मार्कण्डेय, उपमन्यु तथा वैश्वानर को उत्कीर्ण किया जाता है। शिव के विवाह रुप की मूर्ति को कल्याणसुन्दर मूर्ति कहा जाता हैं। इस मूर्ति में शिव व पार्वती को स्थानक मुद्रा में एक दूसरे का हाथ पकड़े एवं अलंकृत वेषभूषा में दिखाया जाता है। इस मूर्ति में ब्रह्मा एवं विष्णु को भी बनाया जाता है। दक्षिण भारत में शिव की उग्रदंष्ट्र या भीमदंष्ट मूर्तियों में उनकी दो दाढ़ें बाहर निकली हुई दिखाई जाती हैं। आगम ग्रन्थों के अनुसार अघोर, पशुपति, क्षेत्रपाल और भैरव के रुपों में ही उग्रदंष्ट्र की मूर्तियां मिलती हैं। अघोर और भैरव दोनों रुपों में आठ भुजा वाले रुप को उग्रदंष्ट्र कहा जाता है। यदि आठों भुजाओं में सर्प, अभयमुद्रा, घण्टा और अंकुश हो तो वह भैरव रुप माना जाता है एवं परशु ढाल और धनुष बाण युक्त मूर्ति को अघोर रुप माना जाता है। शेष चार भुजाओं में डमरु, खड्ग, त्रिशूल और कपाल दोंनों मूर्तियों में समान रुप से रहते है।[52]

शिव की चन्द्रशेखर मूर्ति में शिव के मस्तक पर चन्द्रमा की आकृति उत्कीर्ण की जाती है। पशुपति की मूर्ति स्थानक एवं चर्तुभुजी मुद्रा में, सोमस्कन्द मूर्ति में शिव के साथ उमा के जांघ पर स्कन्द, पॉचमुखी महादेव मूर्ति मुण्ड माला के साथ, माहेश्वर मूर्ति दस भुजाओं के सहित बनायी जाती है। शिव की दक्षिणा मूर्ति में उन्हें नृत्य, संगीत एवं योग का जनक भी माना गया है। साहित्य के अनुसार शिव ने यह ज्ञान दक्षिण दिशा की ओर मुख करके दिया था। शिव की व्याख्यान-दक्षिणा मूर्ति में त्रिनेत्र, आसन मुद्रा, चार हाथ एवं ऋषिगण निर्मित किये जाते हैं। ज्ञान-दक्षिणा मूर्ति में द्विभुजी शिव के एक हाथ में नीलोत्पल एवं दूसरे हाथ को अभय मुद्रा में दिखाया जाता है। योग-दक्षिणा मूर्ति में शिव को योग मुद्रा के साथ उनके हाथों में कमण्डल एवं अक्षमाला बनाई जाती है। शिव की वीणाधारी-दक्षिणा मूर्ति में दो हाथों में वीणा लिये दिखाया जाता है। हरिहर मूर्ति में दायां भाग शिव का तथा बायां भाग विष्णु का बनाया जाता है। वृषभ वाहन मूर्ति में शिव को नंदी पर बैठे दिखाया जाता है। अर्द्धनारीश्वर मूर्ति में आधा भाग शिव व आधा भाग पार्वती का होता है। शिव की कुछ अनुग्रह मूर्तियां मिली हैं। उनमें चण्डेशानुग्रह मूर्ति को सुखासन में एवं भक्त-चण्डेश को अंजिली मुद्रा में बनाया जाता है। विष्णवानुग्रह मूर्ति में विष्णु को अंजली मुद्रा में एवं शिव को चर्तुभुजी रुप में चक्र लिये प्रदर्शित किया गया है। किरातार्जुन मूर्ति में अर्जुन को अंजली मुद्रा में एवं शिव को किरात वेष में अर्जुन के लिए पाशुपत अस्त्र देते हुए उत्कीर्ण किया जाता है। शिव की लिंग उद्भव मूर्ति में ब्रह्मा के प्रतीक रुप में हंस एवं विष्णु के प्रतीक रुप में वराह को बनाया गया है। शिव की गंगाधर मूर्ति में स्थानक शिव एवं उनके समीप हाथ जोड़े गंगा को बनाया जाता है। शिव की रावणानुग्रह मूर्ति में कैलास पर्वत पर आसीन उमा-महेश्वर सहित रावण को पर्वत उठाते हुए निर्मित किया जाता है। शिव के संहार रुप की मूर्तियों में भैरव को अष्टभुजी, भयानक मुख एवं कपालमालाधारी एवं इनके समीप कुत्ते को भी उत्कीर्ण किया जाता है। कामान्तक मूर्ति में योगासन शिव के समीप कामदेव व रति को बनाया जाता है। गजासुर संहार मूर्ति में गज रुपी राक्षस का संहार करते हुए शिव को दिखाया जाता है। शिव की कालारि, यमारि या यमान्तक मूर्ति में शिव के पैर के नीचे यम को उत्कीर्ण किया जाता है। शिव की त्रिपुरान्तक मूर्ति को धनुष बाण

लिये शिव को त्रिभंग मुद्रा में निर्मित किया जाता है। शिव की शरभेष मूर्ति में उनका मुख सिंह के समान एवं उनके दो मुख और दो पंख बनाये जाते हैं। शिव की अंधकासुर वध मूर्ति में शिव एवं अंधकासुर के समीप योगीश्वरी को बनाया जाता है। ब्रह्मशिरोंच्छेदक मूर्ति में चर्तुभुजी शिव के त्रिनेत्र के साथ उनके एक हाथ में ब्रह्मा का सिर लिये उत्कीर्ण किया जाता है। शिव की वीरभद्र मूर्ति कों चर्तुभुजी, त्रिनेत्र, बाहर निकले हुए दाँत, भद्रकाली की आकृति एवं समीप ही दक्ष की प्रतिमा बनाई जाती है। शिव की जलन्धर हर मूर्ति में दोभुजी शिव को एक हाथ में कमण्डलु एवं दूसरे हाथ में छत्र लिये दिखाया जाता है।[53] मध्यकालीन भारत में शिव की उपर्युक्त मूर्तियां राजस्थान, उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश, जम्मू एवं काश्मीर, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक मे मिली हैं। दक्षिण भारत में तंजौर, बदामी, ऐहोल, एलोरा, महाबलीपुरम्, कुम्भकोणम्, दारासुरम मदुरै एवं मध्य भारत में रायपुर, छतरपुर, सागर, मण्डला, गुना, जबलपुर, विदिशा, सतना, मन्दसौर से अनेक मूर्तियां मिली हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय सभ्यता के प्रारम्भ से ही संस्कृति के विकासक्रम में शिव पूजा के संकेत मिलने लगते हैं। कला संस्कृति में शिव काफी लोकप्रिय रहे हैं। प्राचीन कला में शिव एवं उनके विभिन्न कल्याणकारी स्वरुप देखने को मिले हैं। प्राचीन भारतीय समाज की अर्न्तरात्मा में शैव धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में कला के माध्यम से जितने रुप शिव के दिखाई देते हैं, उतने अन्य किसी देवता के नही मिले हैं। अतः शिव बहुआयामी होने के साथ साथ भारतीय कला में प्रिय देवता के रुप में दिखाई देते हैं। मध्यभारत की स्थापत्य कला में शिव मंदिरों का प्राबल्य रहा है। शैव धर्म के प्रारम्भिक संकेत हड़प्पा सभ्यता से मिलने लगते हैं। पूर्व-वैदिककाल में शिव को रुद्र के रुप में पूजा जाता था। उत्तर-वैदिक काल में शिव को त्रिदेवों में प्रमुख स्थान दिया गया। उपनिषद काल में शिव को सर्वशक्तिमान एवं योग के जनक के रुप में उल्लेखित किया गया। पौराणिक काल में शिव योग, नृत्य, संगीत एवं महाकाल के रुप में स्थापित हुए। शिव के साथ गौरी, उमा, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय एवं नंदी को भी दिखाया गया है। प्राचीन भारत में शिव को विश्व कल्याण के देवता के रुप में माना जाता था। प्राचीन भारतीय कला में योगीशिव व नंदी की मूर्तियां हड़प्पा सभ्यता से मिलने लगती हैं। ताम्रपाषाणकालीन अनेक पुरास्थलों से वृषभ की मृण्मूर्तियॉ मिली हैं। दूसरी शती ईसा पूर्व में नंदी के साथ शिवलिंग का अंकन उज्जैन से प्राप्त सिक्कों पर मिला है। मूर्तिकला में शिव स्थायी रुप से प्रथम शती ईस्वी में कुषाणकालीन कला में दिखाई देते हैं। सातवाहन काल, नाग शासक, शक क्षत्रप, गुप्त शासक एवं मध्यकालीन भारतीय शासकों के समय कला में शिव के विभिन्न रुप देखने को मिलते हैं। गुप्तकाल में निर्मित प्राचीनतम् शिव मंदिर उत्तरभारत एवं मध्यभारत के अनेक पुरास्थलों से मिले हैं। कला में शिव परिवार के सभी सदस्यों के साथ वाहन एवं आभूषणों के रुप में सर्प, मयूर, चूहा, सिंह एवं बैल का अंकन मिलता है जो एक दूसरे के विरोधी स्वभाव के माने जाते हैं, किन्तु सभी मिलकर रहते हैं। ये सभी पशु पक्षी समन्वय नीति के सूचक माने जा सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Marshal. J., *'Mohenjodaro and the Indus Civilization'*, Arthur Probsthain, London, 1931, part-1, p, 52
2. दुबे नागेश, 'एरण की कला', सुप्रिया प्रकाशन, सागर, मध्य प्रदेश, 1998, पृ. 116
3. कुमारसम्भव, 7/44
4. ऋग्वेद, 6/4/10
5. तैतरीय संहिता, 2/2/10
6. पाणिनी अष्टाध्यायी, 1/19/33-53
7. बौधायन गृहसूत्र, 3/2/16-14
8. श्वेताश्वर उपनिषद, 3/11/4
9. महाभारत, द्रोर्णपर्व, 74/56
10. पंतजंली महाभाष्य, 3-99
11. लिंग पुराण, 2/21-49
12. बाजपेयी, सन्तोष कुमार, 'ऐतिहासिक भारतीय सिक्के', ईस्टर्न बुक लिकर्स, नई दिल्ली, 1997, पृ. 102
13. Allan, J., *'Catlage of Coins in the British Musuam'*, Printed by order of the Trustees, 1986, p, 85
14. बाजपेयी, सन्तोष कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 128

15. वही, पृ. 3
16. वही, पृ. 45
17. वही, पृ. 171
18. वही, पृ. 3
19. वही, पृ. 240
20. वही, पृ. 260
21. वही, पृ. 267
22. बाजपेयी, कृष्णदत्त, 'ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख', पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 2017, पृ. 48
23. वही, पृ. 48
24. वही, पृ. 167
25. वही, पृ. 189
26. वही, पृ. 218
27. वही, पृ. 48
28. वही, पृ., 264
29. जैन बालचन्द्र, उत्कीर्ण लेख, 'संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्व', रायपुर, छत्तीसगढ़, 2005, पृ. 105
30. वही, पृ. 161
31. सिंह, अरविन्द कुमार : कलचुरी अभिलेखों में शिव, पुरातन पत्रिका, अंक 6, भोपाल, 1989, पृ. 159
32. बाजपेयी, कृष्णदत्त, पूर्वोक्त, पृ. 49
33. सिंह, अरविन्द कुमार, पूर्वोक्त, पृ.159
34. शास्त्री, अजयमित्र, त्रिपुरी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1952,पृ. 100
35. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, पृ. 74, 2-4
36. दुबे नागेश, एरण की कला, पूर्वोक्त, पृ. 118
37. चढ़ार, मोहन लाल, 'एरण : एक सांस्कृतिक धरोहर', आयु प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 137
38. शिवपुराण, शतरुद्रीय संहिता, 18-48
39. कथासरितत्सागर, 108/78
40. मिश्रा, ओम प्रकाश, 'शैव मूर्तियां', राज्य संग्रहालय भोपाल, 1991, पृ. 14
41. बाजपेयी, कृष्णदत्त, पूर्वोक्त, पृ. 163
42. चढ़ार, मोहन लाल, पूर्वोक्त, पृ. 132
43. मिश्रा ओम प्रकाश, पूर्वोक्त, 1991, पृ. 14
44. चढ़ार, मोहन लाल, 'अमरकंटक क्षेत्र का पुरावैभव', एसएसडीएन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 32
45. C. Krishna, *'Depiction of Nandi In Indian Art'*, Puratana Journal of Madhya Pradesh State Archaeology, Bhopal, 1989, pp-109-110
46. T.A. Gopinath Rao, *'Elements of Hindu Iconography'*, Vol. 2, Motilal Banarasidas Publisher, New Delhi, 2017, p. 213
47. अपराजितपृच्छा, 213/21-24
48. श्रीवास्तव, ब्रजभूषण, 'प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वराणसी, 2010, पृ. 59
49. लिंग पुराण, 4/35/38
50. शास्त्री गंगाराम, 'मूर्तिकला में शिव के विविध रुप और आयुद्ध', पुरातन, अंक 6, मध्यप्रदेश पुरातत्व संग्रहालय, भोपाल, 1989, पृ. 163
51. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 105/9-10
52. शास्त्री गंगाराम, पूर्वोक्त, 1989, पृ. 164
53. बृजभूषण, पूर्वोक्त, पृ. 60-83

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

गांधी और प्लेटो : राजनीतिक दर्शन में समानताएं और असमानताएं

❑ डॉ. आभा चौहान खिमता

प्लेटो ने 'दी रिपब्लिक' और 'दी लॉज' में राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और शैक्षिक समस्याओं पर विशेष चर्चा की। प्लेटो की सर्वश्रेष्ठ रचना 'रिपब्लिक' में शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसी तरह गांधी ने भी चरित्र निर्माण को शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पहलू माना। गांधी ने अपने शैक्षिक योजना को 'नई तालीम' नाम दिया, जिसका अर्थ है 'नई शिक्षा' जिसके अंतर्गत शिक्षा पाठ्य पुस्तक केंद्रित होने के बजाय जीवन केंद्रित होनी चाहिए। इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि प्लेटो और गांधी दोनों इस बात पर सहमत थे कि राजनीतिक समस्याओं के एक मौलिक समाधान को प्रभावित करने के लिए वर्तमान मानवीय चेतना को बदलना आवश्यक है। लेकिन जब प्लेटो ने द्वंद्वात्मक पद्धति से ज्ञान के प्रकाश को महत्व दिया, तो गांधी ने हृदय परिवर्तन को महत्व दिया। गांधी और प्लेटो के राजनीतिक दर्शन में समानताओं और असमानताओं का आकलन करने पर ज्ञात होता है कि कई असमानताओं के बावजूद दोनों में कई मुद्दों पर व्यापक सहमति है।

पश्चिमी परंपराओं के साथ महात्मा गांधी का सामना एक महत्वपूर्ण घटना थी। कुछ पश्चिमी विचारकों, धर्मग्रंथों एवं शास्त्रों ने उनके जीवन में बहुत विशिष्ट भूमिका निभाई और गांधी पर उसके प्रभाव को समझना मुश्किल नहीं था। इस तरह के प्रभाव के पारस्परिक संबंध का अनुमान उस मौलिक रवैये से लगाया जा सकता है जिसे गांधी ने खुद अपना कर आत्मसात कर लिया था। यह सब इस तथ्य से अधिक प्रमाणित होता है कि गांधी हमेशा खुद के साथ प्रयोग कर विकसित होने का प्रयास करते रहते थे। वह स्वयं के विकास एवं सुधार में सक्रिय रहते थे, लेकिन उन्होंने अपनी विरासत वाली पृष्ठभूमि को कभी नहीं छोड़ा। उनके द्वारा लिखी अनगिनत पुस्तकों में इसकी छाप दिखाई पड़ती है। इसी संदर्भ में, गांधी के बचपन में बने ईसाई धर्म के साथ संपर्क से बने संबंध उनके लिए सुखद अनुभव नहीं था।गांधी ने अपनी आत्मकथा में वर्णन किया हैं, "लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उन दिनों ईसाई मिशनरियों के धर्म-प्रचारक एवं पादरी हाई स्कूल के पास एक कोने में आगे की ओर खड़े होकर हिंदुओं और उनके देवी - देवताओं के लिए अपशब्द का प्रयोग कर दुर्वचन कहते थे जिज्ञासावश, मैं उन्हें केवल एक बार सुनने के लिए वहाँ खड़ा हुआ था किंतु मैं यह सहन नहीं कर सका। लेकिन यह मुझे इस तरह के प्रयोग को दोहराने से रोकने के लिए पर्याप्त था। मेरी अपेक्षा से परे लगभग उसी समय, मैंने एक जाने-माने प्रसिद्ध हिंदू को ईसाई धर्म में परिवर्तित होने के बारे में सुना ...[1] जो उनके लिए एक बड़ा आश्चर्य था, लेकिन 'नया नियम' या 'न्यू टेस्टामेंट', जो कि ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइबिल का दूसरे भाग ने विचारों की एक अलग धारणा कायम की, विशेष रूप से उसमें दिए हुए ईसाई धर्म प्रचारकों के उपदेशों ने उनके मन मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी । जैसा कि गांधी ने अपनी पुस्तक, 'द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विथ ट्रूथ' (सत्य के प्रयोग) में कहा है, मैंने इसकी तुलना गीता से की है। ईसाई धर्म प्रचारकों के इन उपदेशों ने मुझे अत्यधिक आकर्षित किया और उनके विचारों ने मेरे युवा मन पर गहरा प्रभाव डाला। गीता के उपदेश, 'द लाइट ऑफ एशिया', (एशिया के प्रकाश सर एडविन अर्नोल्ड द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें गौतम बुद्ध के जीवनचरित्र का वर्णन है।) एवं ईसाई धर्म प्रचारकों के उपदेश को एकजुट करने का प्रयास किया। यह त्याग धर्म का सर्वोच्च रूप था जिसने मुझे प्रभावित किया।"[2] 'नया नियम' या 'न्यू टेस्टामेंट', इस प्रसिद्ध ग्रन्थ ने इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका में गांधी के प्रारंभिक और मध्य वर्षों में विशेष योगदान किया। अपने जीवन के अंतिम चरणों में, गांधी ने अहिंसा में अपने विश्वास को बनाए रखने के लिए गीता को और अधिक गहराई से अध्ययन किया। यह एक विदित तथ्य है कि गांधीजी ने भगवद्‌गीता में अहिंसा को प्रतिष्ठायित होते हुए देखा था। उनके अनुसार अहिंसा इस ग्रन्थ के मूल में

❑ सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (म.प्र.)

रचा-बसा हुआ सिद्धांत है और बिना इसे समझे गीता को नहीं समझा जा सकता। गांधी इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण को अहिंसा की अनिवार्यता पर विमर्श करता हुआ देखते हैं। वे मानते हैं कि इसके सन्दर्भ में किसी भी अपवाद की सम्भावना स्वीकार नहीं की जा सकती। 20 जनवरी, 1948 को अपनी शहादत से पूर्व भी, गांधी ने श्री विन्सेंट शीन को सलाह दी थी कि वे गीता के साथ ईसा उपनिषद को भी लें को, क्योंकि यह अहिंसा के सिद्धांत का एक निर्णायक और अंतिम पुष्टि का प्रमाण है।[3] गांधीवादी विचारों में बुनियादी बदलावों को समझने के लिए घटनाक्रम के विचारों का अत्यधिक महत्व है। यहां तक कि गांधी ने स्वयं कहा है कि, "सत्य के अनुसरण की मेरी खोज में मैंने कई विचारों को त्याग दिया है और कई नई चीजें सीखी हैं... मुझे ऐसा कोई एहसास नहीं है कि मैं अंदर की ओर बढ़ना बंद कर चुका हूं ...जब किसी भी व्यक्ति को मेरे दो लेखनों के मध्य में कोई भी असंगतता मिलती है, अगर उस व्यक्ति को अभी भी मेरे विवेक पर विश्वास है तो उसके लिए एक ही विषय पर दोनों में से किसी एक का चयन करना अच्छा होगा। पिछले तीस सालों से जिस चीज को पाने के लिये लालायित हूँ वो है स्व की पहचान, भगवान से साक्षात्कार, और मोक्ष। इस लक्ष्य के पाने के लिये ही मैं जीवन व्यतीत करता हूं। मैं जो कुछ भी बोलता और लिखता हूं या फिर राजनीति में जो कुछ भी करता हूँ वह सब इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये ही है।"[4] गांधी टॉल्स्टॉय की पुस्तक 'द किंगडम ऑफ गॉड' से अत्यंत प्रभावित थे। गांधी ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि उनकी अहिंसा टॉल्स्टॉय से अत्यधिक प्रभावित थी।

गांधी को जॉन रस्किन की एक अन्य पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' ने सोचने के लिए विवश कर दिया था। गांधी ने 'अन्टू दिस लास्ट' पुस्तक का 'सर्वोदय' नाम से गुजराती में अनुवाद किया। इस पुस्तक में गांधी रस्किन के सामाजिक संगठन के सिद्धांत से प्रभावित थे, जिसके समर्थन में उन्होंने 'सर्वोदय' में वर्णन किया था। रस्किन का विलक्षण जुनून न्याय के लिए था, लेकिन यह एक प्लेटोनिक (प्लेटो की) खोज की प्रकृति में अधिक था। इसी प्रकार जब गांधी 1908 में दक्षिण अफ्रीका में कारावास के अपनी पहली अवधि की सजा काट रहे थे तब गांधी ने ट्रैफिक हेनरी डेविड थोरो के लेख 'ऑन ड्यूटी ऑफ सिविल डिसओबेडिएंस' (सविनय अवज्ञा) का भी अध्ययन किया। सत्याग्रह अर्थात निष्क्रिय प्रतिरोध के नैतिक गुण पर उनका दृढ़ विश्वास इस अध्ययन के ही परिणामस्वरूप प्रबलित हुआ। इस प्रकार टॉलस्टॉय, रस्किन और थोरो के संदेशों ने गांधी के अहिंसा दर्शन के सार को अपनी कार्यप्रणाली में ढाला।

प्लेटो अपोलॉजी से प्रभावित होकर गांधी ने प्लेटो की माफी का एक संक्षिप्त गुजराती संस्करण तैयार किया। उन्होंने सुकरात के चरित्र को एक अहिंसक प्रतिरोधक के रूप में वर्णन किया। जब वह 1908 के प्रारंभ में जोहान्सबर्ग में जेल की सजा काट रहे थे तब उन्होंने प्लेटो'स अपोलॉजी का अध्ययन किया और फलस्वरूप गांधी दक्षिण अफ्रीका में सुकरात को एक सत्याग्रही के रूप में सोचने लगे। 4 अप्रैल, 1908 को उन्होंने 'सत्यवीर की कथा' (प्लेटो'स अपोलॉजी का गुजराती संस्करण) लिखा। बाद में उन्होंने इंडियन ओपिनियन (गाँधी द्वारा प्रारंभ किया गया समाचार पत्र) में कई किस्तों में इसका गुजराती संस्करण प्रकाशित किया। आगे चलकर 22 नवंबर, 1908 को उन्होंने हिंद-स्वराज की रचना की। संभवतः गांधी के मन-मस्तिष्क पर प्लेटो के विचारों का गहरा प्रभाव था। (प्लेटो' स अपोलॉजी) प्लेटो की माफी ने सुकरात को अहिंसक प्रतिरोधक के रूप में स्थायी आकर्षण बनाया। उसके प्रभाव ने सभ्यता एवं संस्कृति के बाहरी कर्मकांड, रीतिरिवाज के आडंबर के प्रति घृणा को सुदृढ़ किया और इससे हिंद-स्वराज में लेखन की संवाद पद्धति के लिए एक संभावित आकर्षण उत्पन्न हो सकता है। हालाँकि, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि संवाद शैली उन्हें भगवद् गीता से भी प्राप्त हुई होगी क्योंकि वह गीता से अत्यधिक प्रभावित थे।[5] गांधी की अनुवाद की हुई 'एक सत्यवीर की कथा' में सुकरात कई बार अभिव्यक्त करते हैं जैसे कि वह एक उपदेशक थे या जैसे कि उनका परमात्मा से विशेष रूप से घनिष्ठ संबंध था उसी प्रकार गांधी को भी एक मरहम लगाने वाले और चिकित्सक (कल्याणकारी आरोग्यसाधक) के रूप में सोचना मुश्किल नहीं है, बावजूद इसके कि वह पारंपरिक 'पश्चिमी चिकित्सा' के विषय में संदेह व्यक्त करते थे। 'प्लेटो'स अँपॉलँजी' के अनुवादित संस्करण की प्रस्तावना में गाँधी लिखते हैं कि भारतीय समुदाय राजनीतिक व्याधिग्रस्त है। जब रोग का निदान किया जाता है और इसकी वास्तविक प्रकृति सार्वजनिक रूप से सामने आती है और जब उपयुक्त उपचार के माध्यम से,

भारत के शरीर (राजनीति) को ठीक किया जाता है और दोनों को अंदर और बाहर से साफ किया जाता है, तो यह रोग के कीटाणुओं के लिए प्रतिरक्षा बन जाएगा, अर्थात् अंग्रेजों और अन्य लोगों द्वारा उत्पीड़न से प्रतिरक्षा हो जाएगी उनके व्यक्तिगत विचार उनकी दूरदर्शिता का आकलन करते हैं।[6] गांधी के इस कथन में, सुकरात की तरह एक अमृत या पारसमणि (सत) के गुणों का पता लगाया जा सकता है। जिस प्रकार यह अमृत या सुधा लिया जाता है, उसी प्रकार गांधी के पाठक बीमारी से लड़ने और पीड़ित शरीर को ठीक करने में सक्षम हो सकते हैं यदि वे उनके विचारों एवं सिद्धांतों का अनुकरण करें। गांधी/सुकरात को एक विशेष प्रकार का चिकित्सक एवं आरोग्यसाधक घोषित किया जा सकता है जो अपने अनुयायियों और शिष्यों को नैतिक बीमारी से उबरने में मदद करते हैं जो उनके आध्यात्मिक विकास को सीमित करता है और उनके बौद्धिक विकास में अड़चन डालता है।[7]

गांधी और प्लेटो का मनुष्य और समाज की समस्याओं के लिए एक व्यापक अभिन्न दृष्टिकोण है। प्लेटो ने 'दी रिपब्लिक' और 'दी लॉज' में राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और शैक्षिक समस्याओं पर विशेष चर्चा की। गांधी ने भी इन सब पहलुओं पर चर्चा की क्योंकि वे मानवीय समस्याओं के सभी आयामों को लेकर चिंतित थे। उनके राजनीतिक सिद्धांत का कोई अध्ययन उनके आध्यात्मिक, धार्मिक और नीतिपरक मूल सिद्धांत के सामाजिक और आर्थिक निहितार्थों की जांच के विश्लेषण बिना संभव नहीं है।

गांधी और प्लेटो मनुष्य के नैतिक चरित्र में पूर्ण विश्वास रखते थे और उनका विश्वास था कि मनुष्य के चरित्र का निर्माण कुछ नैतिक गुणों के विकास से होता हैं। उन्होंने यह विचार रखा कि जब किसी व्यक्ति में कोई सदगुण विकसित होता है, तो वह उस सदगुण के अनुरूप आचरण करने का प्रवृत्त हो जाता हैं। गांधी और प्लेटो का मानना था कि स्वतंत्रता को आंतरिक शुद्धि और ज्ञान के प्रकाश के विकास के माध्यम से पाया जा सकता है। गांधी और प्लेटो के अनुसार नैतिकता मात्र बाहरी सामाजिक अनुरूपता का विषय नहीं है, बल्कि ज्ञान पर स्थापित किया जाना है। जॉर्ज एच.सबाइन का मानना था कि प्लेटो को 'रिपब्लिक' का मूलभूत विचार 'सद्‌गुण ही ज्ञान है' उन्हें उनके गुरु (सुकरात) के सिद्धांत के रूप में आया था। यहां तक कि उनके अपने स्वयं के दुखद एवं कटु राजनीतिक अनुभवों ने भी इस विचार को और अधिक सुदृढ़ किया और एक दार्शनिक राज्य की नींव के रूप में सच्चे ज्ञान की भावना को विकसित करने के लिए अकादमी अर्थात शिक्षण संस्थान की स्थापना में इसे क्रिस्टलीकृत किया। प्लेटो का प्रस्ताव है कि सद्‌गुण ज्ञान का तात्पर्य ऐसा ज्ञान जिसे आत्मा को सन्तुष्टि मिले न कि इन्द्रियों को, क्योंकि यह वास्तव में अंतर्ज्ञान, अनुमान या नियति एवं संयोग के बजाय तर्कसंगत या तार्किक जांच द्वारा जाना जा सकता है। यह अनुकूल एवं उद्देश्यपूर्ण निष्पक्ष रूप से वास्तविक है, जो कोई भी इसके बारे में सोचता है और इसे सिद्ध करता है क्योंकि अधिकतर मनुष्य इसे चाहते हैं, क्योंकि यह अच्छा है। इसके अलावा, प्लेटो और गांधी दोनों ने माना कि एक सामंजस्यपूर्ण समाज के लिए उनका मौलिक गुण एवं नैतिक चरित्र होना आवश्यक हैं।

दूसरे शब्दों में, इस मामले में यह केवल गौण रूप से रूप से आता है मनुष्य क्या चाहते हैं यह इस बात पर आश्रित करता है कि वे किसी भी चीज में कितनी अच्छाई देखते हैं न कि वो कितना देखना चाहते हैं। इस से यह ज्ञान होता है कि मनुष्य अपनी योग्यता अनुसार जिसका अधिकारी है - दार्शनिक या विद्वान या वैज्ञानिक- उसे सरकार में निर्णायक शक्ति प्राप्त होनी चाहिए और यह उसका ज्ञान ही है जो उसे इसके लिए प्रेरित करता है एवं अधिकार देता हैं। यह वह विश्वास है जो 'रिपब्लिक' में बाकी सब को ज्ञान एवं शिक्षा के आधार पर एक समान स्थापित करता है और प्लेटो को राज्य के हर पहलू को त्यागने का कारण बनता है जिसे प्रबुद्ध तानाशाही एवं निरंकुशता के सिद्धांत के अंतर्गत अमल में नहीं लाया जा सकता है।[8]

दार्शनिक शासक प्लेटो के सिद्धांत की तुलना में कुछ हद तक रामराज्य की गांधीवादी धारणा से की जा सकती है। रामराज्य की गांधीवादी अवधारणा एवं संकल्पना को पारंपरिक भारतीय अर्थों में परिभाषित किया गया है ताकि सभी लोगों के परोपकार के लिए उदार राजशाही को व्यक्त किया जा सके। रामराज्य की व्याख्या के अनुसार, रामराज्य एक राजनीतिक व्यवस्था है जो परोपकार, सद्‌बुद्धि, शांति, सामाजिक सौहार्द एवं एकता के विचार पर आधारित है। यह पृथ्वी पर एक न्यायपूर्ण और पूर्ण समाज या धार्मिकता की स्थापना थी। गांधी ने 1937 में अपने

रामराज्य की व्याख्या का वर्णन करते हुए कहा कि यह स्पष्ट नैतिक शक्ति पर आधारित लोक संप्रभुता (आधिपत्य) हैं यह अंग्रेजों के साम्राज्य, सोवियत संघ या नाजी शासन प्रणाली से अलग हैं। अनेक अवसरों पर स्वयं उन्हें इस पर स्पष्टीकरण देना पड़ा, इसलिए विभिन्न अवसरों पर उनके रामराज्य संबंधी वक्तव्यों का पुनर्पाठ इस अर्थ में बहुत ही महत्वपूर्ण हो सकता है। उन्होंने स्पष्ट किया "मैं कहना चाहता हूं कि मेरे सपनों की स्वतंत्रता का अर्थ रामराज्य है। यानी पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य। मुझे नहीं मालूम कि वह स्वर्ग में कैसा होगा। मेरी इच्छा भी उतनी दूर की व्यवस्था को जानने की नहीं है। अगर वर्तमान आकर्षक है तो भविष्य निश्चित ही उससे बहुत अलग नहीं होगा।"[9] गांधी के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्रता के आयाम राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक हैं। गांधी के लिए आदर्श समाज एक अहिंसक समाज होगा, जहां व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय का एक समान उपयोग कर सकेगा। उनके अनुसार, रामराज्य का प्राचीन आदर्श निस्संदेह सच्चे लोकतंत्र में से एक था, जिसमें निर्धन-निकृष्ट नागरिक विस्तृत और महंगी प्रक्रिया के बिना त्वरित न्याय सुनिश्चित कर सकेंगे। इस प्रकार प्लेटो और गांधी ने सामाजिक संरचना में अनुकूल और न्यायपूर्ण शासन की स्थापना के बारे में एक ही राय साझा की थी।

वी.पी. वर्मा ने कहा कि इसमें कोई संशय नहीं है कि दार्शनिकों का शासन इस अर्थ में एक सुधारित राजनीतिक व्यवस्था के आवश्यक अस्तित्व की मांग करेगा। दूसरी व्याख्या में, रामराज्य एक प्रबुद्ध अराजकता की परिस्थिति का संकेत देता है जो सरकारी दबाव की अनुपस्थिति की विशेषता होगी। व्यक्ति की प्रबुद्ध अंतरात्मा की आवाज राज्य के कानूनों के अधिकारियों के आदेश से बेहतर थी। इस संबंध में वह महान दार्शनिक थोरो के समान था, जिसने नागरिकों से उन कानूनों के खिलाफ विद्रोह में उठने का साहस करने का अनुरोध किया जो उनके लिए अनैतिक थे एवं अनुचित थे। इसी प्रकार, टॉल्स्टॉय जैसे अराजकतावादियों का प्रभाव रामराज्य की इस गांधीवादी संकल्पना पर देखा जा सकता है। वी.पी. वर्मा के अनुसार, यदि इस दूसरी व्याख्या पर जोर दिया जाता है, तो रामराज्य की तुलना दार्शनिक-शासक की धारणा से नहीं की जा सकती।[10]

प्लेटो के 'रिपब्लिक' में मुख्य मुद्दा न्याय है। प्लेटो मनुष्य के हृदय में न्याय को प्रतिष्ठित करना चाहते थे और आत्मा के तर्कसंगत और तर्कहीन हिस्सों के बीच एकीकरण एवं अखंडता चाहते थे। सामाजिक संरचना एक मनुष्य के हृदय में प्रमुख गुणों का आभास एवं परिचायक होती है। न्याय, वह है जो मनुष्य के सामान्य सार्वजनिक हित में कार्य करता है। यहां तक कि चोरों के गिरोह के एक संप्रदाय को भी खुद को बनाए रखने के लिए न्याय के सिद्धांतों की अपरिहार्यता होती है। किसी भी सामान्य प्रयास में, उस प्रयास के लाभ का उचित वितरण होना चाहिए, यदि परियोजना को जारी रखना है, तो न्याय के सिद्धांत परिभाषित करेंगे कि यह उचित वितरण क्या है। एक राज्य कई व्यक्तियों द्वारा किया गया सामान्य एवं सार्वजनिक प्रयास है। इसलिए प्रत्येक राज्य को अपनी नींव के रूप में न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता होती है। किसी भी राज्य के व्यक्तिगत सदस्यों को आश्वस्त होना चाहिए कि उनका राज्य एक न्यायपूर्ण राज्य है और उन्हें स्वयं अपने राज्य के विशेष न्याय के सिद्धांतों का पालन करना चाहिए। प्लेटो ने न्याय के अपने विलक्षण सिद्धांत दिए, जिनका परस्पर निर्भरता और विशेषज्ञता के पहले उल्लेखित वर्णित विचारों के साथ स्पष्ट करना है।[11] न्याय एक ऐसा बंधन है जो एक समाज को एक साथ रखता है। प्लेटो के प्रयत्क्ष न्याय की प्रधानता की परिभाषा का विस्तार हर मनुष्य को उसे अपनाने के अपने व्यक्तिगत कारण दे रहा है। उसके कारण यह हैं कि स्थान की आवश्यकतानुसार उन कार्यों के ईमानदार प्रदर्शन पर उसकी क्षमता और उसके प्रशिक्षण के आलोक में उसके साथ वैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। सबीन के मतानुसार, इस प्रकार प्लेटो ने अभिव्यक्त किया कि एक मनुष्य के लिए अपना काम करने और उसे करने के लिए उपयुक्त होने से बेहतर कुछ भी नहीं है। इसी तरह अन्य व्यक्तियों के लिए और पूरे समाज के लिए इससे बेहतर कुछ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में इस प्रकार उस स्थिति को भर दे, जिसका वह अधिकारी है अर्थात अपनी योग्यतानुसार अपने गंतव्य तक पहुंचे।[12]

सामाजिक संरचना के अंतर्गत ज्ञान एवं तर्कबुद्धि की विशेषता वाले लोगों को संरक्षक नियुक्त किया जाना चाहिए, जबकि साहस की विशेषता वाले लोगों को सैनिक नियुक्त किया जाना चाहिए और भूख एवं तृष्णा की प्रबलता वाले सहायक (उत्पादक) होना चाहिए। गांधी न्याय के भी बड़े समर्थक थे। अपने प्रारंभिक दिनों में एक

वकील के रूप में वह हमेशा न्याय के पक्षधर थे। उन्होंने समाज के दबे-कुचले और पिछड़े वर्गों के लिए न्याय करने का अनुरोध किया। गांधी के सच्चे स्वराज में, समाज के किसी भी वर्ग या किसी भी स्तर को बाहर नहीं किया गया था। गांधी का यथार्थवादी मन और संवेदनशील आत्मा उच्च वर्ग और अन्य वर्गों के मध्य स्वराज - धनवान व्यक्तियों और शिक्षित वर्ग के स्वराज की अपर्याप्तता के माध्यम से देख सकता था। यही कारण है कि उन्होंने हमेशा गरीब व्यक्तियों या जनता के स्वराज पर जोर दिया।[13] गांधी का स्वराज निर्धन का स्वराज था गांधी ने जनता को उच्च वर्ग को अपना दुश्मन मानने की शिक्षा नहीं दी, लेकिन उन्होंने उन्हें सिखाया कि वे (जनता) स्वयं अपने दुश्मन थे। उनके अनुसार, उच्च वर्गों द्वारा उनके प्रति किए गए अनुचित कार्यों की चेतना को उनमें समाहित किया जाना था। गांधी का मानना था कि न्याय का उचित वितरण तभी संभव है, जब निर्धन व्यक्ति भी राजकुमारों और संन्यासी पुरुषों द्वारा भोगे गए जीवन की बुनियादी एवं मूलभूत आवश्यकताओं का उपभोग करे उसमे कोई भेदभाव न हो। उन्होंने कहा है, ‘लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनके पास उनके जैसे स्थान और भोग विलास के साधन होने चाहिए। वे मनुष्य की प्रसन्नता के लिए आवश्यक नहीं हैं। आप या मैं उन भौतिक वस्तुओं में खो जाएंगे। लेकिन, आपको जीवन की सभी सामान्य मूलभूत सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए, जो एक अमीर आदमी को प्राप्त होती हैं। मुझे इस बात में जरा भी संदेह नहीं है कि जब तक ये बुनियादी एवं मूलभूत सुविधाएं आपके अधीन नहीं है, तब तक स्वराज्य पूर्ण स्वराज्य नहीं है।”[14] इस प्रकार गांधी के अनुसार न्याय तभी दिया जा सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन का साधन ईश्वर के रूप में सभी वर्गों के लिए स्वतंत्र रूप से एक समान उपलब्ध हो। जैसे हवा और पानी है वैसे ही मूलभूत आवश्यकताओं को सभी वर्गों के लिए उपलब्ध होना चाहिए। इस प्रकार गांधी और प्लेटो ने लोगों को न्याय प्रदान करने के लिए एक आदर्श सामाजिक संरचना की आकांक्षा की।

हालाँकि यह तर्क दिया जा सकता है कि प्लेटो के ‘रिपब्लिक’ में न्याय पर विशेष महत्व था जो कि गांधी के भीतर नहीं था। दूसरी ओर गांधी की नैतिकता और राजनीति में मुख्य अवधारणाएं सत्य और अहिंसा हैं। तथापि, यह कहा जाना चाहिए कि गांधी और प्लेटो दोनों सामाजिक संरचना के आधार पर श्रम विभाजन की अवधारणा पर आधारित ढांचे के पक्ष में थे। यद्यपि, प्लेटो अपने सामाजिक दर्शन में अधिक कट्टरपंथी थे क्योंकि वह अपने समाज में सैनिकों के पुनर्व्यवस्थापन एवं स्थानांतरण की संभावना में विश्वास करते थे। दूसरे शब्दों में, प्लेटो के अनुसार, मनुष्य का जन्म सामाजिकता या सामाजिक स्तरीकरण को निर्धारित करने का मापदंड नहीं है। दूसरी ओर गांधी के अनुसार वर्ण का सिद्धांत किसी के जन्म से निर्धारित होने वाले व्यावसायिक संगठन पर आधारित है उसी के अनुसार मनुष्य को जीवनयापन करना चाहिए।[15] हालांकि यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्लेटो की सामाजिक स्तरीकरण की भावना और गांधी की वर्ण व्यवस्था अंततः पूर्ण और न्यायपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली के लिए आकांक्षित थी।

सुकरात, प्लेटो और अरस्तू की राजनीतिक विश्वास संरचना में एक आम परिप्रेक्ष्य के दृष्टिकोण की संभावना को देखा जा सकता है। वे मूल रूप से अभिजात वर्ग के रूढ़िवादी थे जिन्होंने एक अभिजात वर्ग के मूल्यों, जीवनयापन के तरीकों और दृष्टिकोणों की चर्चा की एवं उनका समर्थन किया। अभिजात वर्ग अपने पतन पर था और वे अभिजात वर्ग के पुनरुत्थान और सुधार के लिए उत्सुक थे ताकि यह एक बार फिर नागरिक जीवन का आधार बन सके। प्लेटो ने नैतिक भ्रष्टाचार और निम्नीकरण (गिरावट) के साथ लोकतंत्रीकरण की बराबरी की और मानव जीवन की सामान्य गुणवत्ता में सुधार और क्रांति लाने के लिए यथासंभव प्रयत्न किया। एथेंस में पांचवीं शताब्दी में अभिजात वर्ग ने सामाजिक स्थिति और धन का उपभोग किया और राजनीतिक शक्ति के एकाधिकार का प्रयोग नहीं किया। अभिजात वर्ग को त्रुटिहीन व्यवहार के माध्यम से शक्ति का प्रदर्शन और अधिग्रहण करना पड़ा।[16] ‘रिपब्लिक’ में, प्लेटो ने लोकतंत्र की निंदा की। नेताओं की अक्षमता और अज्ञानता ने गुटबाजी, अत्यधिक हिंसा और पक्षपातपूर्ण राजनीति को जन्म दिया, जो राजनीतिक अस्थिरता का प्रमुख कारण था। इन्हीं सब कारणों से प्लेटो ने अपने लेखन में लोकतंत्र पर अपने विचारों से हमला किया। इसके अतिरिक्त, प्लेटो का मानना है कि लोकतंत्र अत्यधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों को सहन नहीं करता है, ऐसा विचार जो सुकरात के फांसी के दंड निष्पादन से प्रबल हुआ था।[17]

दूसरी ओर गांधी, प्रत्यक्ष चुनाव और सार्वभौमिक वयस्क

मताधिकार के आधार पर संसदीय लोकतंत्र की आधुनिक प्रणाली के पूर्ण प्रशंसक नहीं थे। गाँधी का मानना था जहां तक भारत का संबंध था, संसदीय लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार का एक पक्ष-समर्थक था। उन्हें उद्धृत करने के लिए, 'मेरा स्वराज इस समय की आधुनिक अर्थों में पूर्ण रूप से भारत की संसदीय सरकार है।'[18] यह माना जा सकता है कि तात्कालिक राजनीतिक उद्देश्य के रूप में, लेकिन इसके लिए प्रयास करने के लिए एक आदर्श के रूप में, उन्होंने 'हिंदी स्वराज', में सभी लोगों की भूमिका या न्याय के शासन में अपना विश्वास जताया, जैसा कि उन्होंने कहा था। निश्चित रूप से उनके सपनों के भारत और राष्ट्र के तत्काल उद्देश्य के बीच एक गहरी खाई थी। इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि प्लेटो की तुलना में गाँधी लोकतांत्रिक संस्थाओं के संचालन के प्रति अधिक समर्थन करते थे, जैसे कि एक विधानमंडल या विधानसभा की कार्य पद्धति, न्यायिक प्रणाली की स्वतंत्र कार्यप्रणाली और संसदीय लोकतंत्र के सिद्धांतों का संचालन प्लेटो की तुलना में भी सम्मिलित था। दोनों लोकतांत्रिक ज्यादतियों से चिंतित एवं भयभीत थे। ऑपरेटिव (क्रियाशील) और संस्थागत स्तरों पर, प्लेटो एक संभ्रांतवादी था। प्लेटो संज्ञानात्मक और नैतिक गुणों एवं सदाचार के आधार पर चयनित कुछ लोगों का शासन चाहते थे। वहीं दूसरी ओर, गांधी एक जन साधारण के नेता थे और वे नागरिकों की व्यापक संभावित भागीदारी के आधार पर एक राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण चाहते थे। प्लेटो जहाँ असमानता के समर्थक थे, वहीं गांधी एक कट्टरपंथी समानतावादी थे।[19]

गांधी प्लेटो की तुलना में अधिक मानवतावादी थे। जबकि प्लेटो ने रक्षात्मक युद्धों को स्वीकृति दी, गांधी काफी हद तक शांतिवादी एवं युद्धविरोधी थे। प्लेटो के अनुसार, संरक्षक/शासक द्वंद्वात्मक तर्कपद्धति के अधिग्रहण के बाद भी सैन्य गतिविधियों में संयुक्त हो सकते हैं। द्वंद्वात्मक पद्धति चिन्तन की वह पद्धति है, जिसके द्वारा प्रश्नोत्तर एवं तर्क-वितर्क के आधार पर किसी सत्य की खोज की जाती हैऔर निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।यह तर्क दिया जा सकता है कि प्लेटो के उच्चतम संरक्षक आक्रामकता और रक्षा की भावना से ऊपर नहीं उठते हैं। उन्हें अनिवार्य रूप से शहर का रक्षक माना जा सकता है। लेकिन गांधी ने अनुभव किया कि सृष्टि संबंधी भाईचारे का प्रारंभ अहिंसा के पालन एवं सृजनात्मक स्नेह और सक्रिय परोपकार से होता है।

गांधी हमेशा अंतरात्मा की आवाज सुनते थे, वे सत्य और अहिंसा की तलाश में एक दृढ़ सत्याग्रही थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है, 'सत्य के लिए आग्रह करना' अर्थात 'सत्य बल या आत्मबल'। सत्याग्रह का अनुयायी सत्याग्रही अहिंसा का पालन करते हुए शान्ति व प्रेम का लक्ष्य सामने रखकर सत्य की खोज द्वारा किसी बुराई की वास्तविक प्रकृति को देखने की सही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेता है। इसका अभिप्राय सामाजिक एवं राजनीतिक अन्यायों को दूर करने के लिए सत्य और अंहिसा पर आधारित आत्मिक बल का प्रयोग था। यह एक प्रकार का निष्क्रिय प्रतिरोध था, जो व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से कष्ट सहने एवं विरोधी का हृदय परिवर्तन करने में सक्षम था। इसने हिंसा के उपयोग को बाहर रखा क्योंकि मनुष्य पूर्ण सत्य को जानने में सक्षम नहीं था और इसलिए दंडित करने में भी सक्षम नहीं था।[20] प्लेटो नगर के सामुदायिक जीवन का एक प्रमुख प्रशंसक था। सामूहिकता की जीवन-व्यवस्था को प्लेटो ने पत्नियों व सम्पत्ति को साम्यवाद का नाम दिया है। उदाहरण के लिए, उनका मानना था कि पत्नियों और संपत्ति के समुदाय ने उन सभी नकारात्मकताओं को समाप्त करने का प्रयास किया, जो व्यक्ति के समुचित विकास में बाधा बनती हैं। चूँकि महत्व एकगुणात्मक एवं प्रतिभाशाली समाज बनाने पर था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण एवं सामर्थ्य के अनुरूपकार्य करेगा, पत्नियों और संपत्ति के समुदाय (साम्यवाद)ने यह सुनिश्चित किया कि भाई-भतीजावाद, दुर्घटना, पारिवारिक संबंध और वंशावली या धन, सामाजिक स्थिति और उनके सौंपे गए उनके नियत कार्यों को चयन का मापदंड नहीं माना जायेगा। यह सुनिश्चित किया कि चूंकि शासन एक चयनात्मक और विशिष्ट कार्य था, इसलिए केवल सर्वश्रेष्ठ और योग्य ही इसे बनाएंगे।[21]

प्राचीन ग्रीक काल (यूनानी काल) में प्लेटो ने शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया। प्लेटो की सर्वश्रेष्ठ रचना 'रिपब्लिक' में शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। प्लेटो के दृष्टिकोण से, शिक्षा की अच्छी व्यवस्था के साथ लगभग कोई भी सुधार संभव है, अगर शिक्षा की उपेक्षा की जाती है, तो यह बहुत कम मायने रखता है कि राज्य और क्या करता है। उनका मानना था कि शिक्षा वह सकारात्मक साधन है जिसके द्वारा शासक एक सामंजस्यपूर्ण स्थिति

उत्पन्न करने के लिए मानव स्वभाव को सही दिशा में आकार दे सकता है ताकि सामंजस्यपूर्ण राज्य का निर्माण हो सके।[22] प्लेटो ने अनिवार्य शिक्षा की राज्य नियंत्रित प्रणाली के लिए योजना बनाई। उनकी शैक्षिक योजना दो भागों में आती है, प्रारंभिक शिक्षा और उच्च शिक्षा। प्रारंभिक शिक्षा का पाठ्यक्रम दो भागों में विभाजित किया गया था - शरीर के प्रशिक्षण के लिए व्यायाम संबंधी और मस्तिष्क के प्रशिक्षण के लिए संगीत संबंधी। प्रारंभिक शिक्षा समाज के सभी तीनों वर्गों को दी जानी थी किंतु 20 वर्ष की अवस्था के बाद जिन लोगों का उच्च शिक्षा के लिए चयन होता था वे वह लोग थे जिन्हें संरक्षक वर्ग में 20 से 35 वर्ष की आयु के बीच उच्च पदों पर कार्य करना था। संरक्षक वर्ग के अंतर्गत सहायक तथा शासक दोनों आते थे। शिक्षा की अनिवार्य राज्य-निर्देशित योजना संभवतः एथेनियन कार्यप्रणालियों में सबसे महत्वपूर्ण नई पद्धति थी, जो कि प्लेटो का सुझाव था, और 'रिपब्लिक' में अनिवार्य तथा नियंत्रित शिक्षा के आग्रह की व्याख्या की जा सकती है जो कि लोकतांत्रिक रीति-रिवाज एवं प्रथा की आलोचना करता है अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा प्रदान करे जिसे देने में समर्थ हो जिसमें उन्हें रुचि हो या जो उनकी कल्पना हो।[23] दूसरी ओर, गांधीवादी शिक्षा में चरित्र निर्माण का पहला स्थान था। उनका मानना था कि विद्यालय को घर का विस्तार होना चाहिए। विद्यार्थियों के जीवन, घर, ग्राम के बीच में सामंजस्य एवं समझौता स्थापित होना चाहिए जहाँ एक बच्चा घर और विद्यालय में सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए एकत्रित होता है। विदेशी प्रकार की शिक्षा शिक्षित वर्ग और जनता के बीच एक गहरी खाई पैदा करती है। गाँधी ने कहा कि ऐसी स्थितियाँ पैदा की जानी चाहिए जिससे सबसे गरीब भारतीय को भी सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि साहित्यिक ज्ञान और धर्म में तालमेल होना चाहिए। लोगों को दी जाने वाली शिक्षा का अभिप्राय आवश्यक रूप से जीवन की स्थितियों से संबंधित होना चाहिए। गांधी ने अपने शैक्षिक योजना को 'नई तालीम' नाम दिया, जिसका अर्थ है 'नई शिक्षा' जिसके अनुसार शिक्षा पाठ्य पुस्तक केंद्रित होने के बजाय जीवन केंद्रित होनी चाहिए। 'नई तालीम' को जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से और पूरे जीवन में शिक्षा के रूप में परिभाषित किया गया है। इसे पूर्व-बुनियादी (पूर्व प्राइमरी-आरंभिक शिक्षा), बुनियादी, पोस्ट-बेसिक, विश्वविद्यालय और सामाजिक शिक्षा में विभाजित किया गया है। इस प्रकार प्री-बेसिक (प्रारंभिक शिक्षा) नर्सरी स्कूल का हिस्सा है, बुनियादी प्रारंभिक शिक्षा 7 वर्ष से 15 वर्ष के बीच की प्रारंभिक शिक्षा है। पोस्ट बेसिक (प्रारंभिक शिक्षा के उपरांत) माध यमिक हाई स्कूल शिक्षा और सामाजिक शिक्षा वयस्क शिक्षा बन गई है।[24]

इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि प्लेटो और गांधी दोनों इस बात पर सहमत थे कि राजनीतिक समस्याओं के एक मौलिक समाधान को प्रभावित करने के लिए वर्तमान मानवीय चेतना को बदलना आवश्यक है। लेकिन जब प्लेटो ने द्वंद्वात्मक पद्धति कारण से ज्ञान के प्रकाश को महत्व दिया, तो गांधी ने हृदय परिवर्तन को महत्व दिया। उन्होंने बाद में महसूस किया कि इस तर्क को कष्ट सहने की शक्ति से प्रमाणित किया जा सकता है। उन्हें अनुभव हुआ किया कि केवल अकादमिक प्रशिक्षण और बौद्धिक शोधन बहुत अधिक उपयोगी नहीं है,क्योंकि यह चरित्र की उस दृढ़ता को प्रदान नहीं करता है जो किसी व्यक्ति द्वारा प्रलोभनों और भय का सामना करने के लिए नैतिक शक्ति प्रदान करने के लिए आवश्यक है। वह कभी भी उच्च गणित और द्वंद्वात्मक दर्शन के प्रशिक्षण को महत्व नहीं देंगे जैसा कि प्लेटो ने किया है। अतःगांधी ने शिक्षा दी कि समाज और राजनीति के नैतिकताकरण के लिए व्यक्तिगत चरित्र का परिवर्तन आवश्यक है।[25]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सरकारी संगठन, सार्वजनिक लोक प्रशासन और सामाजिक व्यवस्था के संबंधों में विचारों के स्तर पर अंतर के बावजूद राजनीति में सदाचार एवं सद्गुणों के महत्व के संबंध में इन दोनों विचारकों में व्यापक सहमति है और दोनों ने ही समाज के हर वर्ग के लिए शिक्षा को महत्व दिया हैं।

सन्दर्भ

1. Gandhi M.K., *'AnAutobiography or The Story of my experiments with truth'* Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1927, p. 29.
2. Ibid., p. 58.
3. Sheean Vincent, *'Lead, Kindly Light'*, London: Cassel & Co. Ltd., 1950), p. 203.
4. Murti V.V. Ramana, *'Influence of the Western Tradition on Gandhian Doctrine'*, Philosophy East And West, Jan-Apr. 1948, Vol. 18, No. 1-2, pp. 55-65, http://www.istor.org/stable/1398036.Accessed on 1st October, 2020.
5. Varma Vishwanath Prasad, *'The Political Philosophy of Mahatma Gandhi And Sarvodaya'*, Lakshmi Narain Agarwal, Agra, 1959, p. 239.
6. Vasunia Phiroje, *'Gandhi And Socrates'*, Africa Studies, 74(2), August 2015, TaylorAnd Francis Group Ltd., 2015. http://dx.doi.org/10.1080/00020184.2015.1045722. Accessed on 1st October, 2020.
7. Ibid.
8. Sabine George H., *'A History of Political Theory',* Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi, 1973, p. 53.
9. Anand T. Hingorani, ed., *'M.K. Gandhi - Towards Lasting Peace',* Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1966, pp. 219-220.
10. Varma V.P., op. cit., p. 241.
11. Jha Shefali, *'Western Political Thought: From theAncient Greeks to Modern Times'*, Pearson India Education Services Pvt. Ltd., 2020), p. 37.
12. Sabine George H., op. cit., p. 64.
13. Bhattacharya Buddhadeva in *'Gandhi's Concept of Freedom: People's Swaraj'* in B.C. Biswas, ed., Gandhi: Theory And Practice, Social Impact And Contemporary Relevance, Indian Institute of Advanced Study, Shimla, 1969, p. 281.
14. Bose Nirmal Kumar, *'Selections from Gandhi'*, Navavidhan Publication Committee, Calcutta, 1934, p. 88.
15. Varma V.P., op.cit., p. 240.
16. Mukherjee Subrata And Sushila Ramaswamy, *'A History of Political Thought: Plato to Marx'*, PHI Learning Private Limited, Delhi, 2014, p. 60.
17. Ibid.
18. Mahale K.J., *'Society And State (RamrajAnd Swaraj)'*, in S.C. Biswas, ed., Gandhi: TheoryAnd Practice, Social Impact And Contemporary Relevance, Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1969, p. 314.
19. Varma V.P., op.cit., p. 241.
20. Khimta Abha Chauhan, *'LokmanyaTilakAnd Mahatma Gandhi: Evolution of Concept of Swaraj'*, Anamika PublishersAnd Distributors P. Ltd., Delhi, 2014, p. 111.
21. Mukherjee Subrata And Sushila Ramaswamy, op.cit., p. 86.
22. Sabine George H., op.cit., p. 68.
23. Ibid., p. 69.
24. Rao C.H. Subba, *'Educational Philosophy of Mahatma Gandhi'*, International Journal of Multidisciplinary Education Research, Vol. 1, Issue 4, Sept. 2012, p. 89.
25. Varma V.P., op. cit., p. 243.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

वैश्विक शांति की स्थापना में बौद्ध दर्शन का महत्त्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ कोमल तूनवाल

मानव जगत के इतिहास में मानव का अस्तित्व एवं सभ्यता उतनी ही पुरानी है जितना पुराना शांति का संदेश है। मनुष्य के ऊपर जब कभी संकट आया किसी न किसी उद्धारक ने शांतिदूत के रूप में जन्म लिया। भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, ईसा मसीह, पैगम्बर मुहम्मद, कन्फ्युशियस, राजा राम मोहन राय, महात्मा गांधी आदि ने शांति प्रसार हेतु कई प्रयास किए थे। मानवता की प्रगति का प्रमुख कारक शांति को ही माना जाता है। आज वर्तमान जगत के समक्ष कई विकराल समस्याएं हैं जैसे हथियारों की होड़, मानवीय मूल्यों (अहिंसा, सत्य, बंधुत्व की भावना, न्याय) का अभाव, आतंकवाद, जातीय नस्लीय भेदभाव, स्त्री-पुरूष असमानता, पर्यावरण प्रदूषण आदि हैं जिनसे छुटकारा पाने के लिए राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं।

मनुष्य जगत के इतिहास में मानव का अस्तित्व, सभ्यता उतनी ही पुरानी है जितना पुराना शांति का संदेश है। मनुष्य के ऊपर जब कभी संकट आया किसी न किसी उद्धारक ने शांतिदूत के रूप में जन्म लिया। भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, ईसा मसीह, पैगम्बर मुहम्मद, कन्फ्युशियस, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी आदि ने शांति प्रसार हेतु कई प्रयास किए थे। मानवता की प्रगति का प्रमुख कारक शांति को ही माना जाता है। आज पूरे विश्व में हिंसा व अशांति का वातावरण बना हुआ है। विश्व शांति के मार्ग में घृणा व हिंसायुक्त मानसिकता प्रमुख बाधक है जो राष्ट्रों के मध्य संघर्ष की स्थिति पैदा करती है। भगवान बुद्ध के विचार आज 21वीं सदी में उतने ही प्रांसगिक हैं जितने ढाई हजार वर्ष पहले थे। चतुर्दिक में व्याप्त सामाजिक बुराईयों से सम्पूर्ण मानव जाति दुःखों के जाल में फंसती जा रही है। वर्तमान में अनिश्चतता के जाल में फंसी मानव जाति को इन रूग्णताओं से उबारने हेतु भगवान बुद्ध के उपदेशों की महती आवश्यकता है। तत्कालीन वातावरण मे जिनमें बौद्ध धर्म की उत्पति हुई, इनके सिद्धान्त, विचार निःसन्देह महत्वपूर्ण थे एवं आज भी ये उतने ही प्रांसगिक हैं।

वर्तमान युग को आधुनिक युग कहा जाता हैं क्योंकि इस युग ने मानव व समाज को कई जीवन मूल्यों के साथ प्रेरणा, चेतना, आदर्श, नई सोच आदि दिये हैं। एक समाज में, देश में शांति व संतुलन बनाये रखने हेतु आधुनिक मूल्यों यथा लोकतंत्र, समाजवाद, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, मैत्री, समान अवसर की प्राप्ति, लैंगिक समानता एवं मानवीय संवेदनशीलता आवश्यक हैं। लेकिन वर्तमान युग में लैंगिक विषमता, वंश की विषमता, जातिवाद, आंतकवाद, असमानता, अस्पृश्यता, भ्रष्टाचार आदि कई समस्यायें व्याप्त हैं। बौद्ध धर्म एवं दर्शन उन सिद्धांतों पर आधारित हैं जिनकी आधारशिला ही अहिंसा एवं शांति हैं। भगवान बुद्ध के उपदेश तथा देश विदेशों में इसके व्यापक प्रसार का एवं बौद्ध दर्शन की निरंतरता का मूल कारण भगवान के उपदेश ही हैं जो बिना किसी को कष्ट पहुंचाये दया, शील, करूणा और शांति की ओर प्रेरित करते हैं। तथागत के उपदेश आज कहीं अधिक प्रासंगिक हैं और आज के अशांत वातावरण में शांति की स्थापना एवं प्रसार में इनकी प्रांसगिकता के बारें में प्रस्तुत शोध-पत्र में चर्चा की गई हैं।

अध्ययन की आवश्यकता : विश्व के वर्तमान परिदृश्य में कई ऐसी समस्यायें व्याप्त हैं, जो मानवता एवं संस्कृति के लिये काफी हानिकारक है जिसमें जातिवाद, संम्प्रदायवाद, आंतकवाद, परमाणु युद्ध, क्षेत्रीय असंतुलन, बेरोजगारी, मानवाधिकारों का हनन, लिंगभेद जैसे प्रमुख मुद्दे सम्मिलित हैं। इन्हीं समस्याओं को समाप्त करने हेतु आवश्यक है कि बौद्ध दर्शन के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप दिया जाये।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांतों

❑ **शोध अध्येत्री, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान लाडनू, नागौर (राजस्थान)**

का अध्ययन करते हुये विश्व शांति के व्यापक आधारों का अध्ययन करना।

2. विश्वशांति एवं सद्भाव के संबंध में भगवान बुद्ध के उपदेशों का अध्ययन करना।
3. शांति स्थापना के मार्ग में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करना।

उपकल्पनाएँ

1. बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त व्यक्ति के हृदय परिवर्तन व मानव कल्याण में सहायक हैं।
2. मानव कल्याण हेतु भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेशों से मस्तिष्क की स्थिरता व शांति प्राप्त की जा सकती है।
3. विश्व के कई देशों में व्याप्त हिंसा के वातावरण में शांति की स्थापना की जा सकती है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए सामाजिक विज्ञानों में उपयोग होने वाली अध्ययन पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध प्रविधि मुख्यतः पुस्तकालयीय अध्ययन पर आधारित है। शोधकार्य में आवश्यकतानुसार विवेचनात्मक, समालोचनात्मक पद्धति का आश्रय लिया गया है। अध्ययन के दौरान विषय से सम्बन्धित सार्थक पुस्तकों, लेखों, इंटरनेट एवं अन्य स्त्रोतों की सहायता ली गई है।

साहित्यावलोकन : मीनाक्षी सिंह[1] के द्वारा किये गये अपने अध्ययन ''भारत में बौद्ध धर्म'' में भारतवर्ष में स्थित बौद्ध धर्म से सम्बन्धित स्मारक और पवित्र स्थानों का उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही डा. अम्बेडकर के द्वारा बौद्ध धर्म का अंगीकरण एवं प्रसार का उल्लेख मिलता है तथा बौद्ध धर्म के महान साधक सारिपुत, मोद्गल्यायन, आनंद, महाकश्यप्प आदि का बौद्ध धर्म में विशेष स्थान का विवरण दर्शाया गया हैं।

धर्मचन्द जैन, श्वेता जैन[2] ने अपनी पुस्तक ''बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धांत'' में बौद्ध दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों अर्थात चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, निर्वाण, क्षणिकवाद, अनात्मवाद आदि का संक्षिप्त उल्लेख किया है। इसके साथ बौद्ध धर्म के प्रमुख सम्प्रदायों हीनयान, महायान, वैभाषिक, सौत्रान्तिक आदि का भी वर्णन मिलता है।

श्रीकृष्णदत्त भट[3] ने अपनी पुस्तक ''बौद्ध धर्म क्या कहता है?'' में सिद्धार्थ गौतम के प्रारम्भिक जीवन से संबधित घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख किया गया है एवं बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों अर्थात् आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, निर्वाण, पारमिता मार्ग आदि का अति संक्षेप में वर्णन मिलता है। इनके अलावा पिटक एवं धम्मपद में संकलित बुद्ध के उपदेशों पर भी प्रकाश डाला गया है।

भरतसिंह उपाध्याय[4] ने अपनी पुस्तक ''बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन'' में ऐतिहासिक पद्धति से बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन किया है जिसमें लेखक ने भारतीय दर्शन की सामान्य पद्धतियों और उसकी चिन्ता के मुख्य विषयों के साथ ही बौद्ध धर्म के भारत में उद्भव और विकास का संक्षेप में उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए वैदिक दर्शन से लेकर आधुनिक भारतीय विचार तक विभिन्न विचार पद्धतियों का बौद्ध दर्शन के साथ तुलनात्मक तात्विक विवेचन किया गया है।

विश्व शांति की आवश्यकता : हिंसा से अशांति अराजकता एवं पाशविकता का वातावरण उत्पन्न होता है जबकि अहिंसा से सामाजिकता, मानवीयता, शांति, सौहार्दपूर्ण व्यवहार आदि का। जैविक दृष्टि से तो मानव को भी प्राणी की श्रेणी में रखा जाता है लेकिन अहिंसा की चेतना एवं भावना के कारण उसमें मानवीय एवं सामाजिक भावना का विकास हुआ है। आदिम युग में जब मनुष्य जंगलों में रहते हुए पशुवत व्यवहार एवं अपने अस्तित्व हेतु संघर्ष करता था तो अराजकता की इस स्थिति में हर मनुष्य के जीवन में अनिश्चयात्मकता बनी रहती थी। इस संघर्ष से उबरने के लिए जब दो व्यक्तियों के मध्य सह अस्तित्व की भावना का उदय हुआ तभी से उसके मन में प्रेम, सौहार्द, विश्वास, मैत्री की भावना आदि ने जगह बनाई एवं मानव समूह के रूप में समाज निर्माण की आधारशिला रखी गई। समाज में रहकर मनुष्य में परस्पर मानवीय एवं सामाजिक भावना का उदय होता है और जब उसके हृदय में यह भाव उत्पन्न होता है कि जिस प्रकार उसे अपना जीवन प्रिय है उसी प्रकार दूसरों को भी अपने प्राण प्रिय हैं। अन्यों के दुःख, वेदना, पीड़ा से द्रवित होकर उन्हें दूर करने हेतु प्रयास करता है और जब यह आचरण समाज के सदस्यों का सहज स्वभााव बन जाता है तब व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में न केवल स्थायी शांति आती है बल्कि सद्भाव एवं मैत्री भाव स्थायी भाव बन जाते हैं। समाज में शांति स्थापना हेतु सदस्यों में जिस व्यवहार की अपेक्षा की जाती उसी व्यवहार की अपेक्षा विश्व के राष्ट्रों से विश्व शांति की स्थापना हेतु की

जाती है। युद्ध एवं युद्ध का भय इस विकास एवं प्रगति में बाधक है। मानव इतिहास के रक्त रंजित पृष्ठ युद्ध की भयानकता एवं विनाश के जीवन्त उदाहरण हैं। 20वीं शताब्दी के पूर्व विश्वशांति के प्रयासों में निरन्तरता का अभाव था मध्ययुग तक शांति का विचार एवं प्रयास इतना महत्वपूर्ण एवं प्रांसगिक नही था जितना आज हो गया है। सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध से उद्वेलित होकर अहिंसा के मार्ग पर चलने का निश्चय किया। इतिहास साक्षी है कि विश्व के बड़े महाद्वीपों अर्थात् एशिया, यूरोप आदि में युद्ध के पश्चात हुई संधियों का उद्देश्य द्विपक्षीय विवादों को समाप्त कर क्षेत्रीय शांति को कायम करना था। प्रथम विश्व युद्ध के भंयकर परिणामों को ध्यान में रखते हुए युद्ध रोकने एवं शांति कायम करने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की गई लेकिन युद्ध के मंडराते संकटों को टाला नही जा सका तथा एक बार पुनः विश्व को द्वितीय युद्ध से गुजरना पड़ा। विश्व के समक्ष उपस्थित इन चुनौतियों का प्रभावकारी ढंग से सामना करने हेतु देशों की गतिविधियों में समरसता स्थापित करने के लिए और बहुपक्षीयवाद की अवधारणा को सुदृढ़ करने एवं विश्व शांति व मौलिक अधिकारों की स्थायी रूप से पुनर्स्थापना हेतु संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की गई। इसके उद्देश्यों[5] का उल्लेख इसके घोषणा पत्र की धारा एक में मिलता है-

क. अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखना।

ख. सभी राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रोत्साहित करना।

ग. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।

घ. इन समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न राष्ट्रों की गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करने वाले केन्द्र की भूमिका अदा करना।

वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि की है कि सीमित नाभिकीय युद्ध की अवधारणा भ्रांतिपूर्ण है। यदि भविष्य में कभी युद्ध होगा भी तो वह अंतिम युद्ध होगा क्योंकि आज नाभिकीय प्रौद्योगिकी की क्षमता इतनी विध्वसंक है कि सम्पूर्ण मानवीय जीवन एवं भूमण्डल का विनाश संभव है। इस टकराव में न तो कोई विजेता होगा और न ही कोई पराजित, इसका परिणाम मानवता, प्रकृति एवं भूमण्डल से सभी प्रकार के जीवन का अन्त ही होगा।[6] अतः विश्व शांति की सार्थकता एक नए विश्व के निर्माण में है जिसके लिए विश्व के सभी देशों में सद्भावना का विकास आवश्यक है। मानव जाति के अस्तित्व, विकास एवं उन्नति के लिए विश्व शांति अत्यन्त आवश्यक है।

बौद्ध दर्शन एवं शांति : जगतगुरू की उपाधि से विभूषित भारत देश ने लम्बी अवधि तक वाह्य शक्तियों के दंश को सहन किया है। अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक दृष्टि से सदृढ़ता को जीवित रखते हुये देश ने विभिन्न शक्तियों के प्रहारों को भोगा लेकिन स्वयं को टूटने-बिखरने नही दिया। भारत को विभिन्न प्रकार की समस्याओं व दुराचारों को दूर करने के लिये भगवान किसी न किसी रूप में स्वयं अवतरित होते हैं और समाज के समक्ष आदर्श स्थापित करते हैं। छठी शताब्दी ई.पू. में लुम्बिनी वन में कपिलवस्तु के राजा शुद्धोद्धन के घर में भगवान बुद्ध का जन्म हुआ। मानव कल्याण में लीन भगवान बुद्ध को 483 ईसा पूर्व में निर्वाण की प्राप्ति हुई। भगवान के महानिपरिनिर्वाण से पूर्व उनकी प्रसिद्धि उनके संघ से लेकर सोलह महाजनपदों में फैल गई और दीक्षित भिक्षुओं से इस संघ ने एक विशाल रूप ले लिया। दीक्षित होने से पूर्व तीन वाक्यों के उच्चारण के साथ दीक्षा लेना होता था-

''बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्म शरणं गच्छामि।।
संघ शरणं गच्छामि।।।[7]

यहां बुद्ध शरणं गच्छामि का अर्थ हैं मैं ज्ञान की शरण में जाता हूं। ज्ञान से अंतर्मन में प्रकाश हो जाने से अन्धकार मिट जाता है और स्वतः हमें उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे की पहचान होने लगती हैं। बुद्ध की शरण ग्रहण करने से पूर्व भिक्षुओं द्वारा यह स्तुति की जाती है-''मैं जीवन पर्यन्त बुद्ध की शरण में जाता हूं, भूतकाल में जितने बुद्ध हुए हैं और भविष्य काल में जितने बुद्ध होंगे तथा वर्तमान काल में जितने बुद्ध हैं- मैं उन सबकी सदा वन्दना करता हूँ। मेरी दूसरी कोई शरण नही है, केवल बुद्ध ही मेरी शरण है, इस सत्यवचन से मेरा जयमंगल (कल्याण) हो। मैं उन भगवान बुद्ध की उत्तम चरण धूलि की सिर से वन्दना करता हूं। यदि अज्ञानवश बुद्ध के प्रति मुझसे कोई दोष हुआ हो तो बुद्ध उसको क्षमा करें।''[8] बुद्ध एक सर्वश्रेष्ठ पुरूष है जो पूर्व बुद्धों की भांति सम्यक सम्बुद्ध सद्विद्धाओं और आचरण युक्त हैं तथा वह सुन्दर गति

अर्थात मोक्ष प्राप्त करने वाला और लोक को जानने वाला है। जिस प्रकार एक बेकाबू अश्व को सारथी सही मार्ग पर लाता है उसी प्रकार राग-द्वेष और जगत मिथ्या में भ्रमित मनुष्यों को सही रास्ते पर लाने वाले देवता व मनुष्यों के शिक्षक है।[9] बोधिचित्त ग्रहण करने का अभिप्राय है सब जीवों के कल्याण हेतु बुद्धत्व प्राप्ति के लिए सम्यक बोधि में चित्त का प्रतिष्ठित होना। यह बोधिचित इस भवचक्र से निर्वाण प्राप्ति का साधन है और जगत की दरिद्रता को दूर करने वाली अक्षय निधि है। यह चित्त जगत में व्याप्त क्लेशों को शान्त करने वाला एवं जीवन चक्र के मार्ग में थके हुए प्राणियों के लिए सुलभ सेतु है जो दुर्गतियों के भवसागर से पार कराने में सहायक है।

बुद्ध को वैद्यराज की उपमा दी गई है। जिस प्रकार वैद्य रोगी को रोग के बारे में बताकर सलाह एवं औषधि देता है और इनके सेवन से रोगी स्वस्थ हो जाता है। ठीक उसी प्रकार भगवान बुद्ध दु:खों के कारणों से परिचित कराकर जाति-मरण के रोग से हमें मुक्त करते है। बुद्ध की शरण में जाने का अभिप्राय यही है कि बुद्ध, जिसने राग-द्वेष, मोह को जीत लिया है वो दूसरों के लिए भी पथ प्रदर्शक बनते हैं और व्यक्ति इनके सानिध्य में दुख मुक्त या बन्धन मुक्त हो सकता है। पाप पुण्य से विमुक्त जाग्रत पुरूष (बुद्ध) के मन में किसी के प्रति राग-द्वेष आदि न होने से और लाभ हानि की व्याकुलता न होने से उसे किसी प्रकार का भय नही होता अतः जगत में व्याप्त दुःख भय मोह आदि से मुक्ति हेतु बुद्ध की शरण ग्रहण करनी चाहिए।[10]

धम्म शरणं गच्छामि से तात्पर्य है धर्म की शरण लेना। धम्म की शरण ग्रहण करने से पूर्व भिक्षुओं द्वारा यह स्तुति की जाती है-''मैं यावज्जीवन धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ। भूतकाल, भविष्य व वर्तमान के बुद्धों द्वारा उपदिष्ट जो धर्म है उनकी सदा वन्दना करता हूं। सद्धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई मेरे लिए शरण भूत नही है, केवल धर्म ही उतम शरण है। इस सत्य कथन से मेरी जय हो और मेरा मंगल हो। द्विविध श्रेष्ठ धर्मों (गृही धर्म और भिक्षु धर्म) की मैं मस्तक झुकाकर वन्दना करता हूं। यदि धर्म से स्खलित होकर मुझसे कोई दोष हुआ हो तो धर्म मुझे क्षमा करें।''[11]

धम्म की शरण से आशय उस मार्ग पर चलने से है जो भगवान बुद्ध ने दु:ख के सर्वनाश हेतु दिखलाया। मन, काय, वाचा से हिंसा नही करना तथा अपने चित की पवित्रता को बनाए रखते हुए कुशल कर्मों को करना ही बुद्ध की शिक्षा है। भगवान बुद्ध के अनुसार नियम से चलना ही धर्म का अर्थ है अर्थात् प्रकृति के नियम की शरण में जाना। प्रकृति के नियमों का जब व्यक्ति अनुसरण करता है तो स्वभावतः गलत काम होना बंद हो जाता है और मनुष्य स्वतः ही एक सुखात्मक स्थिति का अनुभव करने लगता है, वह कोई अनिष्ट नही कर सकता। धर्म के आचरण हेतु मनुष्य को तत्पर रहना चाहिए। इस संबंध में धम्मपद में तथागत उल्लेख करते हैं-''उठें आलसी न बने और सुचारित धर्म का आचरण करे। दुश्चरित कर्म न करे। धर्मचारी इस लोक और परलोक में सुखी रहता है।''[12]

'संघ शरणं' गच्छामि का अर्थ है मैं संघ की शरण में जाता हूं अर्थात सत्य के अन्वेषण हेतु प्रयास करना। इस स्तुति द्वारा संघ की शरण ग्रहण की जाती है- ''मैं जीवन पर्यन्त के लिए संघ की शरण में जाता हूं। अतीत में जो संघ रहे, भविष्य में जो संघ होंगे और वर्तमान में जो संघ है- मैं उन सबकी वन्दना करता हूं, अन्य कोई मेरे लिए शरण भूत नही है, केवल संघ ही उतम शरण है, इस सत्य कथन से मेरी जय हो, मेरा मंगल हो। मैं तीन प्रकार (मन, वचन, काया) से उत्तम और पवित्र संघ की मस्तक झुकाकर वन्दना करता हूं। यदि संघ के प्रति अनजाने में मुझसे कोई गलती हुई हो तो संघ मुझे क्षमा करे।''[13]

''जो बुद्ध धर्म संघ की शरण ग्रहण करता है, जो चारों आर्य सत्य को भली प्रकार प्रज्ञा से देखता है- 1. दुःख 2. दुःख की उत्पति 3. दुःख का विनाश 4. दुःख का उपशमन करने वाला आर्य अष्टांगिक मार्ग, उसका यह शरण ग्रहण करना कल्याणकारी है, यही शरण उत्तम है। इस शरण को ग्रहण करके (मनुष्य) सब दुःखों से मुक्त होता है।''[14] इस संघ में उपासक, उपासिका, भिक्षु, भिक्षुणी सभी सम्मिलित थे। संघ की शरण में आकर पुद्गल पुरूष भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आर्यसत्यों का साक्षात्कार कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। संघ के सदस्य मन वचन शरीर से पाप कर्म करे तो उन्हें छिपा नही पाता है और पापकर्म को समझकर शीघ्र पापमुक्त हो जाता है। अतः संघ की शरण ग्रहण करना चाहिए।

भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्य[15] का सिद्धांत संसार मे व्याप्त तृष्णा, दुःख आदि को दूर करने का मार्ग दिखाता है और यह मार्ग विश्व को भ्रातृत्व, विश्वास, सहयोग व प्रेम की ओर ले जाता है। भगवान

बुद्ध ने अपने साधना काल के दौरान चेतना जागृति के कारण चित्त के केन्द्रीकरण की महान् शांति को प्राप्त किया जिसका प्रयोग चित्त तथा देह को जगाने और देखने में किया गया। इस दौरान भगवान ने अपने शरीर के प्रत्येक अणु-परमाणु के परिवर्तन और अतीत-वर्तमान-भविष्य काल के तीनों आयामों को जाना तथा देश-काल की सभी अवस्थाओं को देखा तथा इसी अनुभूति से भगवान बुद्ध ने जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने का मार्ग देखा जिसे उन्होनें चार-आर्य सत्य के रूप में अभिव्यक्त किया।

प्रथम आर्य सत्य है कि जीवन में 'दुःख' है। क्षण-क्षयी होना अर्थात् विनाशशील होना दुःखदायी है, रोग दुःखदायी हैं, मृत्यु दुःखदायी है, अतृप्तकामना दुःखदायी है। संक्षेप में जो भी प्रतिकूल है, वेदनीय है वे पीड़ादायक हैं, दुःखरूप हैं।''[16] दुख की प्रकृति है उदय होना, व्यय होना। जो इस तथ्य को प्रज्ञापूर्वक जानते-जानते पूरी तरह से जान लेता है और जानने के लिये अब कुछ बाकी नही रहा है, वह व्यक्ति दुःख को यथाभूत जानता है, अनुभूति के स्तर पर जान जाता है। तब यही दुःख 'आर्य सत्य' बन जाता है।[17]

द्वितीय आर्य सत्य- 'दुःख समुदय' को मंझिमनिकाय में परिभाषित करते हुये कहा गया है ''पांचो उपादानों में स्वेच्छाचार, राग, इन्हें पाने की चाह, इनके लिये अध्यवसाय दुःख समुदय हैं।''[18] जिसमें दुःख उत्पन्न हो अर्थात् जो दुःख का कारण है वही समुदय हैं। दुःख किसी भी जीव को प्रिय नही हैं लेकिन सभी प्राणी दुःख से जकड़े हैं। अतः इससे मुक्ति पाने हेतु आवश्यक है कि तृष्णा से मुक्ति पायी जाए। भगवान ने दुःख का मूल कारण - तृष्णा को बताया है जो मुख्यतया तीन प्रकार की है - कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा। इन्द्रियों के विषय की पूर्ति या कामनाओं की पूर्ति की प्रबल लालसा काम तृष्णा हैं। इस संसार को बनाये रखने की इच्छा एवं प्रसार भवतृष्णा है। विभव का अर्थ है- उच्छेद या संसार का नाश/बार-बार जन्म मरण न हो इसके लिये व्याकुल हो उठना विभव तृष्णा है।

तृतीय आर्य सत्य - 'दुःखनिरोध अर्थात् दुःख की समाप्ति'। भगवान बुद्व ने मंझिमनिकाय के सच्चविभंग सुत में कहा ''दुःख निरोध तृष्णा का अशेष (संपूर्ण) विनाश है, वैराग्य, त्याग, परित्याग, प्रतिसर्ग, मुक्ति, अनालय या निर्वाण है।''[19]

चतुर्थ आर्य सत्य 'दुःख निरोध मार्ग' को आष्टांगिक मार्ग या मध्यम मार्ग भी कहा जाता है जो कि नैतिक या आध्यात्मिक साधना का मार्ग है जिस पर चलकर व्यक्ति समस्त दुःखों को जड़ से मिटाकर पुर्नजन्म से मुक्त हो जाता है। महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति हेतु घोर तपस्या एवं भौतिकवाद को छोड़कर मध्यम मार्ग अपनाने की बात कही। बौद्ध दर्शन में इन चार आर्यसत्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका अज्ञान विद्या का अभाव है, भवचक्र में भटकाने का मार्ग है लेकिन इनका ज्ञान भवचक्र से मुक्ति दिलाने का साधन है। आधुनिक युग में विश्व शांति और सद्भाव के लिये चार आर्य सत्यों का अनुपालन प्रासंगिक हैं। समाज को शांतिपूर्वक प्रगति पथ पर अग्रसर करने हेतु आवश्यक है इन उदात सिद्धांतों का विधि निर्माण और समाज निर्माण में प्रयोग किया जाए।

बुद्ध के अनुसार दुःख का निरोध कायिक, मानसिक एवं वाचिक साधना से ही किया जा सकता है। इस साधना हेतु आठ आचरणों (अष्टांगिक मार्ग) का प्रत्येक साधक को पवित्रता से पालन करना चाहिये। एक मानव को दूसरे मानव के प्रति संवेदनशील व्यवहार करने तथा मानवाधिकारों की रक्षा के लिये भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अष्टांगिक मार्ग[20] पर बल देना चाहिये जो इस प्रकार हैः-

सम्यक् दृष्टि अर्थात् यथार्थ को समझने की दृष्टि। अगर इस बात को ध्यान में रखकर कोई कार्य किया जाये कि मानवता के लिये क्या उचित, अनुचित है तो निश्चित ही मानवता की हानि नही होगी और न ही किसी के मानवाधिकारों का उल्लघंन होगा।

सम्यक् संकल्प- हिंसा, राग-द्वेष, दुराचार, क्रोध, मोह आदि दुर्गुणों का त्याग करने का दृढ़ निश्चय ही सम्यक संकल्प है। यदि व्यक्ति दृढ़निश्चय के साथ तय करे किसी भी स्थिति में वह ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिससे किसी की स्वतंत्रता, समानता को कोई ठेस पहुंचे।

सम्यक् वाक- अनुचित एवं मिथ्या वचनों का त्याग कर सत्य के अनुसार आचरण करना सम्यक वचन है। इससे व्यक्ति की वाणी संयम से पूर्ण व पवित्र हो जाती है एवं मनुष्यों के साथ मधुर संबंध स्थापित किये जा सकते हैं।

सम्यक् कर्मान्त अर्थात् व्यक्ति को द्वेष, क्रोध, दुराचार आदि दुर्भावों को त्यागकर ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे दूसरों को कष्ट न पहुंचे।

सम्यक आजीविका- उचित एवं न्यायपूर्ण तरीके से आजीविका कमाना ही सम्यक आजीव है। किसी व्यक्ति द्वारा दूसरों का हक छीनकर या अन्यायपूर्ण तरीके से

जीवन जीने के साधन जुटाना दूसरों के मानवाधिकारों का हनन ही है। अतः भगवान बुद्ध ने सम्यक् आजीविका का विचार दिया जिसके अंतर्गत बिना किसी को हानि पहुंचायें आजीविका कमाकर संपूर्ण मानवता का कल्याण किया जा सकता है।

सम्यक् व्यायाम- जीवन में शुभ के लिये प्रयासरत रहना चाहिये और यह मानव का नैतिक दायित्व हो कि अपने आस-पास अच्छे कार्यों का प्रयास करे।

चित्त में एकाग्रता का भाव लाने व शारीरिक, मानसिक भोग-विलास की वस्तुओं से स्वयं को दूर करने हेतु अष्टांगिक मार्गो में से एक है सम्यक स्मृति।

सम्यक् समाधि-जीवन की यथार्थता पर गहन अध्ययन कर चित की एकाग्रता प्राप्त करना सम्यक समाधि है।

अष्टांगिक मार्ग का सिद्धांत मानव को महत्ता प्रदान करने के साथ ही मानवीय समता स्थापित करता है। भगवान बुद्ध का प्रमुख उद्देश्य मानवता का कल्याण था, उन्होनें सभी मनुष्यों को समान मानने तथा उसमें ऊंच-नीच, छूत-अछूत, जातियों में भेद करने को अनुचित ठहराया। भगवान बुद्ध ने कहा था कि ''मनुष्य होने का अर्थ है- बीमार मानवता की सेवा, दया, ममता, मैत्री, तथा करूणा से सींचना । इसी दया, क्षमा, करूणा तथा मैत्री का संदेश ईश्वरीय संदेश है और यही संदेश धर्म का भी होता है। धर्म वे सभी हैं जिनके अंदर प्रेम, मैत्री, करूणा और मुदिता की अंर्तधारा बहती रहती है त्रिधारा की धारा बनकर।[21]

महावग्ग में भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा है ''हे भिक्षुगण संसार का परित्याग कर निवृति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को चाहिए दोनों अन्तों का सेवन न करे। कौन से दो अन्त- एक काम्य वस्तुओं में भोग की इच्छापूर्ति में सदैव रत रहना। यह विषयानुयोग हीन, ग्राम्य एवं आध्यात्मिकता से दूर ले जाने वाला अनार्य तथा अनर्थ उत्पन्न करने वाला है। दूसरा अन्त है शरीर को कष्ट देना - यह भी दुःख अनार्य तथा अनर्थ उत्पन्न करने वाला है। अतः निर्वाण का मार्ग इन दोनों अन्तों को छोड़कर मध्यममार्ग है। बुद्ध ने इसी मार्ग का प्रतिपादन किया। यह मार्ग नेत्र-उन्मीलन करने वाला, ज्ञान उत्पन्न करने वाला है। सम्यक् ज्ञान उत्पन्न करता है, निर्वाण उत्पन्न करता है। यही सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं।[22]

भगवान बुद्ध के उपदेशों में अनीश्वरवादी सिद्धान्त[23] को पढ़ने से प्रतीत होता है कि वे अनजाने और अनसुने ईश्वर के भरोसे अपने अनुयायियों को छोड़कर उन्हें कर्मण्य रहित एवं अनात्मविश्वासी बनाना नही चाहते थे। इस सिद्धान्त में मानव कल्याण की भावना निहित है चूंकि इसमें मानव को केन्द्र में रखा गया है जिससे मानवतावादी भावना का विकास होता है। वर्तमान में मानव जाति पर नस्लवाद, राष्ट्रवाद, जातिवाद के नाम पर कई अत्याचार किए जा रहे हैं और इनसे मुक्ति मानव कल्याण की भावना से ही पाई जा सकती जिसमें मनुष्य का स्थान सर्वेसर्वा होता है।

भगवान बुद्ध ने निर्वाण हेतु त्रिशिक्षा अर्थात् प्रज्ञा, शील और समाधि का सिद्धान्त[24] प्रतिपादित किया। सांसारिक युग में मोक्ष प्राप्त करना कठिन है लेकिन मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित करके यदि त्रिशिक्षा का अभ्यास किया जाए तो संसार को सुखमय बनाया जा सकता है। प्रज्ञा का अर्थ है बुद्धि अर्थात् प्रज्ञा से व्यक्ति को परमज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और ऐसा व्यक्ति राग, द्वेष से मुक्त होकर अपने ज्ञान से समाज को लाभान्वित करेगा जो निश्चित रूप से एक सभ्य, शांत, स्थिर व सहिष्णु समाज का विकास करेगा। शील का संबंध सदाचार अर्थात् नैतिक आचरण से है। सम्यक वाक, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका और सम्यक व्यायाम एक मनुष्य को नैतिक कर्म की ओर ले जाते है और इन्हीं से व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है जिससे समाज प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है चूंकि शील का संबंध केवल व्यक्तिगत नही बल्कि सामाजिक भी है।

भगवान बुद्ध ने संसार को परिवर्तनशील माना है, कोई भी वस्तु शाश्वत नही है। जगत की समस्त वस्तुएं अनित्य है। महापरिनिर्वाण सूत्र में कहा गया है कि ''पांच बातें आवश्यक हैं जो वृद्ध हो सकता है वह अवश्य वृद्ध होगा, जो रोगी हो सकता है वह अवश्य रोगी होगा, जो मृत्यु के अधीन है वह अवश्य मरेगा, जो नश्वर है उसका नाश अवश्यम्भावी है और जो अनित्य है वह अवश्य चला जाएगा।''[25] उन्होनें उपदेश दिया कि भव अनित्य, दुःख और अनात्म है। इस जगत में इन तीनों लक्षणों से मुक्त कोई वस्तु नही है। उत्पत्ति के यह लक्षण अपरिवर्तनशील है, इन्हें किसी प्रकार बदला नही जा सकता। तथागत चाहे उत्पन्न हो या न हो, यह सत्य, यह धर्म सदैव रहना ही है।[26] बुद्ध के इस क्षणिकवाद के सिद्धान्त का अर्थ यही है कि किसी वस्तु या परिस्थिति के साथ सुख दुःख के भाव जोड़ना उचित नही है। आज पूरा विश्व उपभोगवाद,

संरक्षणवाद में लिप्त है वह इन विचारों में उलझा हुआ है कि अमुक सम्पति, वस्तु, क्षेत्र आदि मेरे हैं अर्थात् मोह माया के जाल में फंसा हुआ है और यही कारण है कि आज न सिर्फ व्यक्ति-व्यक्ति, समाज-समाज के मध्य बल्कि दो या अधिक राष्ट्रों के मध्य वैमनस्य, घृणा, द्वेष, नफरत की भावना फैल रही है। आधुनिक युग में पूर्ण तटस्थता की स्थिति अपनाना शायद संभव नही है लेकिन अति लगाव की भावना से प्राप्त दुःख को कुछ मात्रा में कम जरूर किया जा सकता है। क्षणिकवाद भिन्न परिस्थितियों में समभाव, स्थिर, तटस्थ व निष्पक्ष रहने के लिए प्रेरित करता है।

भगवान बुद्ध की धर्माचरण की व्याख्या को व्यावहारिकता प्रदान कर समाज में शांति स्थापित की जा सकती है। एक बार भगवान बुद्ध ने कोसल जनपद में ब्राह्मण गृहस्थों को धर्म का उपदेश देते हुये तीन तरह के शारीरिक अधर्माचरण, चार तरह का वाणी का अधर्माचरण एवं मन का अधर्माचरण तीन तरह का बताया अर्थात् प्राणातिपात (हिंसा करना, मारकाट करना, प्राणियों के प्रति निर्दय होना), अदिन्नादान (चोरी) काम में मिथ्याचार। वाणी का अधर्माचरण-झूठ बोलना, चुगलखोरी करना, कड़वी भाषा बोलना, प्रलाप करना है। मन का अधर्माचरण-अभिध्या अर्थात् दूसरों के धन का लोभ करना, व्यापन्न चित (द्वेषपूर्ण संकल्प करना) एवं मिथ्यादृष्टि है। भगवान ने अधर्माचरण के विरूद्ध आचरण करने वाले को स्वर्ग में स्थान दिया है।[27]

बौद्ध दर्शन में इस जगत को कई प्रकार के दुःख एवं कष्टों से ग्रसित माना है लेकिन यह भी स्वीकार्य है कि इन दुःखों का अन्त सम्भव है और इस अन्त की स्थिति अर्थात् दुःखों एवं कष्टों के नष्ट हो जाने की स्थिति को ही निर्वाण कहा गया है। बौद्ध दर्शन के अनुसार निर्वाण का अर्थ है - बुझा हुआ अर्थात निर्वाण प्राप्ति होने के साथ विभिन्न वासनाओं की आग बुझ जाती है एवं मनुष्य के स्वभावगत् लालच, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा आदि की अग्नि शांत हो जाती है। सयुंक्तनिकाय से जानकारी मिलती है कि निर्वाण को सितिभाव अर्थात् शीतलता की अवस्था माना गया है क्योंकि इस स्थिति में कामासव, भवासव, अविद्यासव आदि मन की अशुद्धियां समाप्त हो जाती हैं।[28]

बौद्ध मत में निर्वाण के विषय पर प्रश्न उठता है कि क्या शरीर रहते हुए भी निर्वाण की अवस्था की प्राप्ति संभव है। इसकी सहमति में उतर है कि निर्वाण की प्राप्ति का तात्पर्य अस्तित्व का विनाश नही है क्योंकि निर्वाण की स्थिति में व्यक्ति कर्मण्य रहते हुए बौद्धिक व सामाजिक जीवन को भी निरन्तर रख सकता है और समस्त तृष्णाओं से मुक्ति पा सकता है। निर्वाण की दशा में व्यक्ति के कर्म वीतरागी (अनासक्त) कर्म होते हैं और ऐसे कर्मों से किसी प्रकार के फल नही होते, वे उसी प्रकार निष्प्रभावी होते हैं जैसे कि भुने हुए बीज अंकुरित नही हो सकते। निर्वाण की दशा में मनुष्य मुक्त पुरूष हो जाता है क्योंकि उसका अहंकार नष्ट हो जाता है। धम्मपद में कहा गया है कि मुक्त पुरूष में पूर्ण अर्न्तदृष्टि, पूर्ण वासनाहीनता, विशुद्ध शान्ति, पूर्ण संयम, शान्त मन, शान्त शब्द एवं क्रियाएं होती हैं।[29]

निर्वाण को शान्ति की अवस्था के रूप में भी स्वीकार किया जाता है क्योकि निर्वाण मन की पापहीन शान्त अवस्था के समान है जिसे पूर्ण शान्ति, पवित्र एवं प्रज्ञा कहा जा सकता है। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद में निर्वाण को आनन्द एवं पवित्र मन की अवस्था, लोभ, राग-द्वेष, ईर्ष्या तथा भ्रम से मुक्ति के रूप में वर्णित किया गया है।[30]

महायानी साधक को बोधिचित ग्रहण करने के पश्चात पारमिताओं का सेवन आवश्यक माना गया है क्योंकि इन की शिक्षा से बोधिसत्व की साधना सफल हो जाती है और बोधिसत्व सब सत्वों के उद्धार हेतु कार्य में संलग्न हो जाता है। अब वह स्वार्थ रहित होकर अपने जीवन के प्रत्येक क्षण प्राणियों के कल्याण तथा मंगल के साधन में व्यय करता है। पारमिता शब्द परम से बना है जिसका अर्थ है सबसे ऊंची अवस्था। छः पारमिताए मुख्य हैं[31]-

दान पारमिता में दूसरों के हित हेतु अपना स्वत्व त्याग की बात कही गई है। दान पारमिता तीन बातों से होती है- पहली, जब दान के पात्र की कोई सीमा नही रहती और प्राणीमात्र दान का पात्र बन जाता है। दूसरी, जब दान की कोई सीमा नही रहती और मानव अपना सर्वस्व दूसरों के हित में लगाने को तैयार हो जाता है तथा तीसरी बात है जब दान के बदले में कुछ भी पाने की आकांक्षा नही रहती।

शील का अर्थ सदाचार है। शील पारमिता, अहिंसा, सत्य, सहिष्णुता आदि नैतिक मूल्यों को शीर्ष पर पहुंचाने का नाम है।

क्षान्ति पारमिता का प्रमुख लक्षण क्षमा व सहनशीलता है। चाहे जितना कष्ट हो धैर्य को बनाए रखना चाहिए। इस

पारमिता का उद्योग द्वेष के नाश हेतु किया जाता है। द्वेष के जैसा अन्य कोई पाप नही और क्षान्ति के समान कोई तप नही है।

वीर्य पारमिता में वीर्य का तात्पर्य उत्साह से है अर्थात् अशुभ का त्याग कर पूरे उत्साह के साथ आगे बढ़ने का नाम ही वीर्य पारमिता है। कुशल कर्म में उत्साह का होना ही वीर्य है। बोधिसत्वों ने चित्त में उत्साह भरकर निर्वाण की प्राप्ति की। बोधिसत्व के पास एक बल व्यूह है जो सत्व की अर्थसिद्धी में सहायक है। इस व्यूह में छन्द, स्थाम, रति, और मुक्ति की गणना की जाती है। जहां छन्द का अर्थ कुशल कार्यों में अभिलाषा। स्थाम का अर्थ है आरब्ध कार्यों में दृढ़ता। रति का तात्पर्य सत काम में आसक्ति से है। मुक्ति का अर्थ है उत्सर्ग या त्याग। इन सबके द्वारा आलस्य आदि शत्रुओं को दूर भगाकर उत्साह में वृद्धि हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

ध्यान पारमिता में ध्यान का अर्थ चित को एकाग्र करने से है। बोधिसत्व को जगत की प्रिय वस्तुओं से अपने मन को हटाकर एकान्तवास में जाकर अनर्थकारी कार्यों के निवारण के लिए चित की एकाग्रता तथा दमन का अभ्यास करना चाहिए। चित्त की एकाग्रता से प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होता है और यथाभूत सत्य का ज्ञान होता है।

प्रज्ञा पारमिता में दुःख का एक कारण अविद्या भी है और इस अविद्या को दूर करने का उपाय प्रज्ञा है। जगत की सता पारमार्थिक नही अपितु केवल व्यावहारिक है। जगत का स्वरूप जो हमारे समक्ष है वह इसका मायिक स्वरूप है अर्थात शून्य है। यही ज्ञान आर्य ज्ञान है और इस ज्ञान के उदय से ही अविद्या की निवृति होती है।

इन पारमिताओं के ज्ञान से बोधिसत्व की साधना सफल होती है और वह बुद्धत्व की प्राप्ति कर सभी प्राणियों के उद्धार के महान कार्यों में सम्मिलित हो जाता है। उसके जीवन का प्रत्येक क्षण प्राणि मात्र के कल्याण में व्यतीत होता है।

निष्कर्ष : वर्तमान समय में हमारी दुविधा का एक कारण भौतिक विकास पर अनुचित बल देना है। जिसके चलते सबसे आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं प्रेम, सहयोग, दया, सहिष्णुता, सहानुभूति, मैत्री आदि को दरकिनार कर दिया है। आज आंतकवाद, परमाणु शस्त्रीकरण, बेरोजगारी, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक मंदी आदि समस्याओं में लोग अपने आप को अकेला, अशक्त व असहज अनुभव कर रहा है। विज्ञान की प्रगति ने आज मानव के हर काम को सहज बना दिया है। विभिन्न आविष्कृत उपयोगी वस्तुओं के साथ-साथ कई प्रकार के खतरनाक हथियार अर्थात् परमाणु जैविक हथियार ऐसे हैं जिनसे दुनिया को अत्यधिक खतरा है। आज विभिन्न धर्मों, जातियों के नाम पर जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसे प्रदूषक सामाजिक परिवेश को प्रदूषित कर रहे हैं। अतः आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक हो गया है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करते हुए क्रोध, ईर्ष्या, राग द्वेष, नफरत, हिंसा आदि भावनाओं का त्याग करे तथा बौद्ध दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का अनुसरण करें ताकि बढ़ते आंतकवाद, संरक्षणवाद, चौरी, तानाशाही, अमीर-गरीब के मध्य की खाई नफरत, राग द्वेष, असहिष्णुता आदि वैश्विक समस्याओं को खत्म किया जा सके।

आज संपूर्ण मानव जाति अपने संपूर्ण विनाश की तैयारी कर चुकी है। संपूर्ण मानव जाति का अस्तित्व किसी देवता या ईश्वर के हाथ में न होकर स्वयं उसी के हाथ में है। मनुष्य की प्रवृति में साधुता व असाधुता दोनों ही प्रवृति का निवास हैं। अतीत का मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि मनुष्य ने अपने मन में अंतर्निहित शत्रुता की प्रवृति को युद्ध के माध्यम से अभिव्यक्त किया हैं जिसका प्रतीक है शस्त्र। आदिम काल में मनुष्य शस्त्र के रूप में नाखून एवं दांत का प्रयोग लेता था। फिर पाषाण युग में आते आते वह पत्थर में नुकीले पत्थरों का प्रयोग हथियार के रूप में लेने लगा। धातुयुग में वह धातु से बने परशु, कृपाण, भाले आदि का प्रयोग करने लगा। अब आधुनिक गोला, बम-बारूद, तोप आदि का निर्माण हुआ। अब इतने अणुबम, आणविक सबमेरिन, आणविक प्रक्षेपास्त्र आदि की ही बात होती हैं इन अणु बम के आविष्कार बाद इस युग को अणु युग के नाम की संज्ञा दे दी हैं। इस तरह दो विश्वयुद्ध की कड़ी में तृतीय विश्वयुद्ध हुआ तो संपूर्ण विश्व में मानवजाति का अस्तित्व काल की गर्त में समा जायेगा। इसलिये आज विभिन्न राष्ट्रों के बीच बढ़ती शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में भगवान बुद्ध के संदेशों को समझकर उनका अनुसरण कर शांति व अंहिसा का वातावरण बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. सिंह मीनाक्षी, 'भारत में बौद्धधर्म', महेन्द्र बुक कम्पनी, गुढ़गाँव हरियाणा, 2013
2. जैन धर्मचंद, जैन श्वेता, 'बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धांत', बौद्ध अध्ययन केन्द्र, जोधपुर, 2009
3. भट्ट श्रीकृष्णदत्त, 'बौद्ध धर्म क्या कहता है?' सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1968
4. उपाध्याय भरतसिंह, 'बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन', बंगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता, 2011
5. बासु रूमकी, 'संयुक्त राष्ट्र एक अन्र्तराष्ट्रीय संगठन की रचना एवं कार्य', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996, पृ. 25
6. जैन महावीर सरन, 'विश्व चेतना तथा सर्वधर्म समभाव' ,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 12
7. मीणा, रामावतार, 'वैश्विक शांति की स्थापना में चार आर्य सत्यों की भूमिका', International Research Journal of Commerce मासिक पत्रिकाएं Arts & Science, Shree Param Hans Education & Research Foundation Trust, Delhi, अंक – नवम्बर, 2014
8. जैन धर्मचंद, जैन श्वेता, पूर्वोक्त, पृ. 3
9. वहीं, पृ. 4
10. वहीं, पृ. 5
11. वहीं, पृ. 5
12. कौसल्यायन आनन्द, 'धम्मपद', हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स शाहगंज इलाहबाद, 1946 पृ. 8
13. जैन धर्मचंद, जैन श्वेता, पूर्वोक्त, पृ. 7
14. कौसल्यायन आनन्द, पूर्वोक्त, पृ. 54
15. जैन धर्मचंद, जैन श्वेता, पुर्वोक्त, पृ. 11
16. वहीं, पृ. 12
17. वहीं, पृ. 13
18. वही, पृ. 13
19. वही, पृ. 15
20. श्रीवास्तव सीमा 'नास्तिक सम्प्रदाय में मोक्ष', राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, अंक 2 जुलाई-दिसम्बर 2017, समाज विज्ञान विकास संस्थान, बरेली (उ.प्र.), पृ. 34
21. पाण्डेय शिवदास, 'जगदगुरू आद्य शंकराचार्य', प्रभात प्रकाशन, 2018 पृ. 50
22. जैन धर्मचंद, जैन श्वेता, पूर्वोक्त, पृ. 17
23. उपाध्याय बलदेव, 'बौद्ध दर्शन मीमांसा', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1999, पृ 76
24. माहेश्वरी आर, वीथिका सिंह, 'राष्ट्र गौरव एवं भारतीय चिंत्तन', एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस, देहली, 2020, पृ. 78
25. सिंह मीनाक्षी, पूर्वोक्त, पृ. 55
26. उपाध्याय भरतसिंह, पूर्वोक्त पृ. 701
27. भट्ट श्रीकृष्णदत्त, पूर्वोक्त, 1968, पृ. 38
28. सिंह मीनाक्षी, पूर्वोक्त पृ. 57-58
29. वहीं, पृ. 58
30. वहीं, पृ. 58
31. उपाध्याय बलदेव, पूर्वोक्त, पृ. 110

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021 UGC-CARE List-Social Sciences

विस्थापन का ग्रामीण कृषकों पर प्रभाव

❑ **चांदनी मरकाम**

शब्द संकेतः विस्थापन, पुनर्वास, प्रवासित

नई राजधानी परियोजना के लिए जिन गाँवों का विस्थापन किया गया उनके निवासियों की आजीविका का एकमात्र साधन अपनी कृषि भूमि में खेती करना था। विस्थापन के पश्चात उनके निवास स्थानों के साथ उनकी कृषि योग्य भूमि भी मुआवजे की राशि देकर नया रायपुर निर्माण के लिए छीन ली गई। इस मुआवजे की राशि का उन्होंने किस प्रकार प्रयोग किया तथा विस्थापन के बाद भी क्या उनके पास कृषि योग्य भूमि है, क्या विस्थापन के पश्चात कृषकों में भूमिहीन होने का प्रतिशत बढ़ा है। अथवा भूधारकों में भी कृषि भूमि के आकार में कमी आयी है अथवा वे आज क्या व्यवसाय कर रहे हैं - इन सब प्रश्नों के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के प्रयास पर ही प्रस्तुत शोध पत्र आधारित है।

नया रायपुर निर्माण परियोजना में जिन ग्रामों का विस्थापन किया गया है उनमें लगभग समस्त उत्तरदाताओं के आजीविका का एकमात्र साधन अपनी कृषि भूमि में खेती करना था, जिसमें वह अपने पूरे परिवार के साथ मिलकर कृषि का कार्य किया करते थे, परंतु विस्थापन के पश्चात् उत्तरदाताओं से उनके निवास स्थान के साथ ही साथ उनकी कृषि योग्य भूमि भी नया रायपुर के निर्माण के लिये छीन ली गयी है, जिससे उत्तरदाता बेरोजगार हो गये हैं, बदले में उन्हें मुआवजे की राशि शासन के द्वारा प्रदान की गई है, मुआवजे की राशि का उन्होंने किस प्रकार प्रयोग किया तथा विस्थापन के पश्चात् भी क्या उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि शेष है, इसका इस शोध पत्र में अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा :- विद्यार्थी[1] ने बिहार के औद्योगिक क्षेत्र हटिया के निकट 8 जनजाति गांवों के अध्ययन में इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि औद्योगिक केन्द्र खुलने के बाद भी जनजातीय समुदाय परम्परागत कृषिजन्य व्यवस्था पर ही निर्भर हैं। उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में कोई ज्यादा अंतर नहीं आया है।

Fernandes, Das and Rao[2] ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत में बांध निर्माण के नाम पर अनेक प्रकार के विस्थापन हुए हैं, लगभग 21 मिलियन लोगों का विस्थापन बांध परियोजना के कारण हुआ है।

Cernea's Paper[3] का अध्ययन 40,000-50,000 लोगो के इंडोनेशिया में विस्थापन पर आधारित रहा है जो कि Jabotabek शहर के विकास परियोजना पर आधारित था। इसी प्रकार अन्य अध्ययन जकार्ता तथा उसके निकट के शहर से संबंधित था जिसमें यह पाया गया है कि शहर चौड़ीकरण के नाम पर 15000 लोगों को विस्थापित किया गया। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि विस्थापित परिवारों के समक्ष जीवकोपार्जन, सुरक्षा जैसी मूलभूत समस्याएं बनी रहती हैं।

माथुर[4] ने विस्थापित लोगों की दयनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए बताया है कि यदि विस्थापितों की पूर्णतया मदद नहीं की जाती है तो विकास के नाम पर उनमें से कुछ लोग तो मजे में हो जाते हैं और ज्यादातर लोग मजलूम बन जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें पुनर्स्थापना के कार्य को जनोन्मुखी बनाना चाहिये जिसमें सबका समान हित रखा जा सके। नृ- वैज्ञानिकों ने सबसे पहले विस्थापन के दुष्परिणाम बताए हैं। अनैच्छिक विस्थापन को समाजशास्त्रियों के अध्ययन व लेखन कार्य में काफी लोकप्रियता मिली है।

उद्देश्य :-

1. विस्थापित परिवारों की सामाजिक - आर्थिक पृष्ठभूमि को ज्ञात करना।
2. विस्थापित कृषकों पर विस्थापन के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध पद्धति :- नया रायपुर निर्माण में जिन ग्रामों का विस्थापन किया गया है उन्हीं ग्राम के उत्तरदाताओं को अध्ययन के लिये लिया गया है इनमें अध्ययन के लिये मुख्य रूप से प्रभावित 04 ग्राम राखी, खपरी, नवागांव तथा कयाबंधा को लिया है। इन चारो गांवों से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रविधि के माध्यम से 217 परिवारों का चुनाव किया गया। इन परिवारों के मुखियाओं से तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया, इसके साथ

❑ **शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)**

ही साथ समूह साक्षात्कार प्रविधि की भी सहायता ली गई।

विश्लेषण : सर्वप्रथम सूचनादाताओं की आयु की जानकारी ली गई जो तालिका 1 में प्रस्तुत है।

तालिका 1

उत्तरदाताओं की आयु (वर्षों में)

आयु (वर्षों में)	आवृत्ति	प्रतिशत
20-40 वर्ष	94	43ण्32
40-55 वर्ष	123	56ण्68
योग	217	100

प्राप्त तथ्यों के समग्र विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता (56.68 प्रतिशत) 40-55 वर्ष के हैं 43.32 प्रतिशत उत्तरदाता 20-40 वर्ष की आयु वर्ग वाले हैं।

उत्तरदाताओं का लिंग : समाज में व्यक्ति के कार्य का उनके लिंग भेद के अनुसार ही वितरण किया जाता है। समाज में पुरूष वर्ग के लिये धन अर्जित कर के लाना तथा घर के सभी बाहर के कार्यों को पूरा करने का दायित्व दिया गया है उसी प्रकार महिलाओं को घर के सभी दायित्वों को पूरा करना जैसे बच्चे, भोजन, पानी, साफ सफाई इन सबकी जिम्मेदारियां दी गई हैं। इस प्रकार से समाज में दूसरे अर्थ में लिंग सामाजिक स्तरीकरण का महत्वपूर्ण आधार है। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं के लिंग संरचना को ज्ञात किया गया है जो कि तालिका 2 से स्पष्ट है -

तालिका 2

उत्तरदाताओं का लिंग

लिंग	आवृत्ति	प्रतिशत
पुरूष	188	86.64
महिला	29	13.36
योग	217	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययनगत् उत्तरदाताओं में सर्वाधिक उत्तरदाता (86.6 प्रतिशत) पुरूष हैं तथा केवल 13.4 प्रतिशत उत्तरदाता ही महिला हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अध्ययनगत समूह के बहुसंख्यक उत्तरदाता पुरूष हैं।

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थितिः- विवाह मानव समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था है और इसी संस्था के माध्यम से समाज में एक ओर जहां परिवार की स्थापना एवं विकास होता है वहीं दूसरी ओर समाज के व्यक्तियों के बीच यौन आचरण को नियंत्रित किया जाता है। विवाह स्त्री और पुरूष के बीच होने वाला संबंध है जिसे कानून व प्रथा स्वीकार करता है और जिससे होने वाले संतान को सामाजिक स्वीकृति मिलती है।

''**कश्मीर** प्रवासियों पर विस्थापितों का आर्थिक प्रभाव'' विषय पर सन् 2012 में ''सैनी संतोष कुमार'' ने शोध किया जिसमें यह पाया कि 53.13 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित थे, 44.42 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित थे, विधवा एवं विधुर का प्रतिशत 2.43 था।''[5]

''**राजू सिंह** ने अपने शोध अध्ययन में यह पाया है कि नगरीय विकास विस्थापन में विवाहित लोग ही सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। 28 प्रतिशत अविवाहित लोग विस्थापित हुए हैं। विस्थापन के पश्चात् इन अविवाहित लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दूसरे समुदाय के लोग इनके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं। विस्थापन से आर्थिक स्थिति निम्न हो जाने की सम्भावनाएं अधिक होती है। इसलिए कभी कभी समय पर वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं हो पाते हैं। कुछ विस्थापित लोगों को अविवाहित ही रहना पड़ता है।''[6] इस तथ्य का परीक्षण प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका 3

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

वैवाहिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
विवाहित	193	88.94
अविवाहित	6	2.76
विधवा	13	5.99
विधुर	5	2.30
योग	217	100

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति का विश्लेषण करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता (88.94 प्रतिशत) विवाहित हैं, मात्र 2.76 प्रतिशत अविवाहित तथा 5.99 प्रतिशत विधवा एवं 2.30 प्रतिशत विधुर हैं।

उत्तरदाताओं की शिक्षा :- अध्ययन में विस्थापित उत्तरदाताओं के शिक्षा के स्तर को जानने का प्रयास किया गया है जो तालिका 4 में प्रदर्शित है।

तलिका 4

उत्तरदाताओं की शिक्षा

शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
निरक्षर	76	35.02
प्राथमिक	61	28.11
मिडिल	39	17.97

हाई स्कूल	28	12.90
हायर स्कूल	2	0.92
स्नातक	7	3.23
स्नातकोत्तर	1	0.46
स्नातकोत्तर से अधिक	3	1.38
योग	217	100

उपर्युक्त तालिका में सर्वाधिक उत्तरदाता 35.02 प्रतिशत निरक्षर हैं तथा 28.11 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्राथमिक कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त की है अर्थात् जिन उत्तरदाताओं का विस्थापन किया गया है उनकी शैक्षणिक योग्यता इतनी पर्याप्त नहीं है कि वह अपने निवास स्थान से विस्थापित होने के पश्चात् अन्यत्र स्थान में रोजगार सरलता से प्राप्त कर सकें। विस्थापन से पूर्व राखीग्राम में केवल एक शासकीय विद्यालय था जोकि विस्थापन के पश्चात हटा दिया गया है, जिससे गांव के बच्चों को अध्ययन प्राप्त करने के लिए समस्या का सामना करना पड़ रहा है। उच्च शिक्षा के लिए भी विस्थापित स्थान में अभी तक कोई प्रबंध नहीं किया गया है।

विस्थापित परिवारों की आर्थिक स्थिति : - विस्थापित परिवारों के जीवन में विस्थापन के पश्चात् उनकी आर्थिक स्थिति में क्या परिवर्तन आया है जैसे उनके व्यवसाय, मासिक आय, महिलाओं की भागीदारी, कृषि भूमि, चल-अचल संपत्ति की स्थिति को दर्शाया गया है-

उत्तरदाताओं का व्यवसाय :- व्यक्ति द्वारा जीवकोपार्जन एवं विभिन्न प्रकार के जीवन के आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु मुद्रा की आवश्यकता होती है जिसे अर्जित करने के लिये व्यवसाय किया जाता है। मानव जीवन में व्यवसाय अत्यंत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यवसाय के आधार पर ही व्यक्ति की भूमिका निर्धारित होती है। बिना व्यवसाय के व्यक्ति का समाज में कोई अस्तित्व नहीं होता है, व्यक्ति का संपूर्ण जीवन व्यवसाय से जुडा हुआ होता है क्योंकि सामाजिक स्थिति का निर्धारण करने में व्यवसाय महत्वपूर्ण होता है, आजकल के जीवनशैली मे व्यक्ति के सामने सबसे बडी समस्या के रूप में व्यवसाय ही सामने आता है।

उत्तरदाताओं के व्यवसाय का विवरण संबंधी 217 परिवारों में यह पाया गया कि 53 परिवार ऐसे जिनके पास विस्थापन के पश्चात् कोई भी कार्य नहीं है अर्थात् वह बेरोजगार हैं निम्न तालिका में शेष 164 परिवारों के वर्तमान व्यवसाय को दर्शाया गया हैं।

तालिका 5

उत्तरदाताओं का वर्तमान व्यवसाय

वर्तमान व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
मजदूरी	84	51.22
कृषि	46	28.05
गै.कृ.म.	2	1.22
शासकीय व्यवसाय	2	1.22
निजी व्यवसाय	11	6.71
कुली	11	6.71
मिस्त्री	8	4.88
योग	164	100

उत्तरदाताओं के वर्तमान व्यवसाय संबंधित तालिका से स्पष्ट होता है कि 51.22 प्रतिशत सूचनादाता मजदूरी का कार्य करके अपना जीवन यापन करते हैं, 28.05 प्रतिशत उत्तरदाता कृषि का व्यवसाय करते हैं, 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता कुली का कार्य करते हैं, 4.88 प्रतिशत मिस्त्री का कार्य करते हैं, 6.71 प्रतिशत उत्तरदाता निजी व्यवसाय करके अपना जीवन यापन करते हैं, तथा 1.22 प्रतिशत उत्तरदाता गैर कृषि व्यवसाय का कार्य करते हैं, 1.22 प्रतिशत उत्तरदाता शासकीय व्यवसाय में कार्यरत् हैं। अतः उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता मजदूरी करके अपना जीवन यापन करते हैं।

उत्तरदाताओं की मासिक आय :- व्यक्ति की आर्थिक स्थिति उसकी आय द्वारा निर्धारित होती है। अतः अध्ययन के अंतर्गत सूचनादाताओं की मासिक आय की जानकारी प्राप्त की गई। व्यक्ति का सम्मान एवं प्रतिष्ठा उसकी आय पर ही आधारित होती है। "एक अध्ययन में यह पाया गया कि 1950-51 में भारत में प्रति व्यक्ति आय केवल 255 रूपये थी जो बढ़कर सन् 2000-2001 में 16,500 रूपये हो गई । इस पर भी भारत विश्व के प्रति व्यक्ति कम आय वाले देशों में से एक है। अमेरिका और जापान में प्रति व्यक्ति आय भारत से 74 गुना अधिक है।"[7]

तालिका 6

उत्तरदाताओं की मासिक आय

मासिक आय (रूपये में)	आवृत्ति	प्रतिशत
3000 रू. तक	103	62.8
3000-5000	16	9.76
5000-7000	11	6.71
7000-9000	7	4.27
9000-10000	7	4.27

10000–12000.	5	3.05
12000–15000	7	4.27
15000–20000	5	3.05
20000 रू से अधिक	3	1.83
योग	164	100

पूर्व की तालिका में स्पष्ट है कि 217 परिवारों में केवल 164 परिवार ही किसी न किसी व्यवसाय में संलग्न है जिनका कि मासिक आय उपरोक्त तालिका में विदित होता है कि सर्वाधिक 62.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 3000 रू तक ही है तथा सबसे कम 1.83 प्रतिशत उत्तरदाओं की मासिक आय 20000 रू से अधिक है।

उत्तरदाताओं की मासिक आय का अत्यधिक कम होना उनके पास पर्याप्त व्यवसाय के अभाव के कारण है, विस्थापन के पश्चात् कृषि कार्य में कमी होने के कारण उनके मासिक आय में भी कमी हुई है।

तालिका 7

अतिरिक्त व्यवसाय की आवश्यकता (विस्थापन से पश्चात्)

उत्तरआवृत्ति	प्रतिशत	
हां	53	24.42
नहीं	164	75.57
योग	217	100

उपर्युक्त तालिका से यह परिणाम स्पष्ट होता है कि मे विस्थापन के पश्चात् 24.42 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लगता है कि उन्हें अतिरिक्त व्यवसाय की आवश्यकता है तथा 75.57 प्रतिशत उत्तरदाताओं को अतिरिक्त व्यवसाय करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह किसी न किसी कार्य में संलग्न हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विस्थापन के फलस्वरूप प्रभावित ग्राम के परिवार के समक्ष न केवल रोजगार की समस्या उत्पन्न हो गयी बल्कि वर्तमान व्यवसाय भी उनके जीवकोपार्जन व परिवार की आवश्यकता ही दृष्टि से पर्याप्त नहीं है परिणामतः उन्हें अतिरिक्त व्यवसाय की आवश्यकता है। ''विस्थापन के कारण विस्थापित व्यक्तियों की दरिद्रता में वृद्धि होती है, वे अपनी जमीन–जायदाद खो देते हैं महिलाएं भी अपना व्यवसाय खो देती हैं। विस्थापन से जनजातीय क्षेत्रों में महिलाओं की दरिद्रता में वृध्दि हो जाती है, वे विस्थापन के पश्चात् पूर्ण रूप से पुरूष पर निर्भर हो जाती है, कृषि करने की गतिविधियां समाप्त हो जाती हैं। आत्मनिर्भरता की समाप्ति से समस्याओं व असमानता में वृध्दि हो जाती है स्त्री–पुरूष विषमता में वृद्धि होती है।''[8]

कृषि योग्य भूमि का होना :- विस्थापन से पूर्व उत्तरदाता मुख्य रूप से कृषि पर ही निर्भर थे और लगभग प्रत्येक उत्तरदाता के पास कृषि योग्य भूमि थी और जिनके पास कृषि योग्य भूमि नहीं थी उनके पास निवास करने योग्य भूमि थी जिस पर वह अपने परिवार के साथ निवासरत् थें जो कि विस्थापन के पश्चात् कुछ भी नहीं रहा।

तालिका 8

कृषि योग्य भूमि का होना (विस्थापन से पूर्व)

उत्तरआवृत्ति	प्रतिशत	
हां	193	88.94
नहीं	24	11.06
योग	217	100

उपर्युक्त तालिका क्रं 8 से ज्ञात होता है कि 217 परिवारों में विस्थापन से पूर्व 88.94 प्रतिशत उत्तरदाताओं के कृषि योग्य भूमि थी तथा केवल 11.06 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास विस्थापन से पूर्व कृषि योग्य भूमि नहीं थी। ''ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत् भू – संसाधन विभाग की वार्षिक रिपार्ट 2007–2008 के तथ्यों के आधार पर उपर्युक्त रिपोर्ट में कहा गया कि आदिवासियों के भूमि अधिग्रहण से संबंधित कुल 5.06 लाख मामले अदालतों में दायर हुए हैं। ये मामले 9.02 लाख हैक्टेयर जमीन के हैं। दायर मामलों में कुल 2.25 लाख मामलों में फैसला आदिवासी आबादी के पक्ष में हुआ है जो कि 5 लाख एकड़ जमीन से संबंधित है। अदालत ने विभिन्न आधारों पर कुल 1.99 लाख मामलों को निरस्त किया है। ये मामले 4.11 लाख एकड़ जमीन से संबंधित हैं।''[9]

सी.एस. राजरंजन के अनुसार ग्रामीण विस्थापन का सबसे मुख्य प्रभाव लोगों के पास से भूमि छिन जाना है जो कि उनकी आजीविका का मुख्य साधन है, इससे व्यक्ति आर्थिक रूप से और ज्यादा कमजोर हो जाता है।''[10] विस्थापन के पश्चात् उत्तरदाताओं से उनके घर तथा कृषि योग्य भूमि का अधिग्रहण कर लिया गया था जिससे कि नया रायपुर की स्थापना की जा सके जिसके परिणामस्वरूप ग्रामवासियों के पास कृषि योग्य भूमि नही के बराबर रह गयी है। कुछ ग्रामवासियों ने मुआवजे से मिली राशि से दूसरे स्थान पर नयी कृषि योग्य भूमि खरीद ली है तथा कुछ के पास अन्य ग्रामों में भूमि थी उसी कृषि योग्य भूमि का विवरण यहां पर किया जा रहा है।

तालिका 9
कृषि योग्य भूमि का होना (विस्थापन के पश्चात्)

उत्तरआवृत्ति	प्रतिशत	
हां	101	46.5
नहीं	116	53.5
योग	217	100

संपूर्ण ग्राम का विश्लेषण करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि 217 उत्तरदाताओं में 53.5 प्रतिशत उत्तरदाता के पास विस्थापन के पश्चात् कृषि योग्य भूमि नही है तथा 46.5 प्रतिशत उत्तरदाता के पास अब भी कृषि योग्य भूमि शेष है। लेकिन उसका रकबा कम हो गया है।

कृषि भूमि का आकारः- भूमि का आकार से तात्पर्य है कि जिन उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि विस्थापन से पूर्व थी वह कितने आकार में थी क्योंकि तालिका में स्पष्ट है कि 217 उत्तरदाताओं में विस्थापन से पूर्व 193 उत्तरदाता के ही पास कृषि योग्य भूमि थी तथा 24 उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि नहीं थी जिन 193 उत्तरदाताओं के पास विस्थापन से पूर्व कृषि भूमि थी उनका कि विश्लेषण तालिका में किया गया है।

तालिका 10
कृषि भूमि का आकार (विस्थापन से पूर्व)

कृषि भूमि का आकार	आवृत्ति	प्रतिशत
1 एकड़ से कम	41	21
1 से 2 एकड	15	8
2 से 3 एकड	32	17
3 से 4 एकड	38	20
4 एकड से अधिक	67	35
योग	193	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 217 उत्तरदाताओं में 193 उत्तरदाता के पास कृषि योग्य भूमि विस्थापन के पूर्व पायी गयी थी जिसमें कि 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास 4 एकड़ से अधिक कृषि भूमि थी, 21 प्रतिशत उत्तरदाता के पास 1 एकड़ से कम कृषि भूमि थी, 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास 3 से 4 एकड़ कृषि भूमि थी, 17 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास 2 से 3 एकड़ कृषि योग्य भूमि हैं, 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास क्रमशः 1 से 2 एकड़ कृषि भूमि थी।

कृषि भूमि का आकारः- नयी राजधानी परियोजना में मुख्य रूप से परियोजना क्षेत्र में आने वाले गांवों के लोगों की जमीन का अधिग्रहण किया गया है। इस परियोजना में सम्मिलित गांवों की जमीन अधिग्रहित की गयी है। स्पष्ट है कि विस्थापन के पश्चात् ग्रामीण परिवारों के कृषि भूमि के आकार में भी बहुत अधिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है जो कि तालिका में स्पष्ट है कि 217 उत्तरदाताओं में 101 उत्तरदाताओं के पास ही विस्थापन पश्चात् भी कृषि योग्य भूमि है जो कि निम्न तालिका से स्पष्ट है-

तालिका 11
कृषि भूमि का आकार (विस्थापन के पश्चात्)

कृषि भूमि का आकार	आवृत्ति	प्रतिशत
1 एकड़ से कम	7	6.93
1 से 2 एकड़	15	14.85
2 से 3 एकड़	30	29.70
3 से 4 एकड़	25	24.75
4 एकड से अधिक	24	23.76
योग	101	100

विस्थापन के पश्चात् संपूर्ण ग्राम से 101 उत्तरदाताओं के ही पास कृषि भूमि है जिसमें कि 29.7 प्रतिशत उत्तरदाता के पास 2 से 3 एकड़ कृषि भूमि है, 24.75 प्रतिशत उत्तरदाता के पास 3 से 4 एकड़ कृषि भूमि है, 23.76 प्रतिशत उत्तरदाता के पास 4 एकड़ से अधिक की कृषि भूमि है, 14.85 प्रतिशत उत्तरदाता के पास 1 से 2 एकड कृषि भूमि है, तथा केवल 6.93 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास 1 एकड़ से कम की कृषि भूमि है।

विस्थापन के पूर्व जहां 193 उत्तरदाताओं के पास कृषि भूमि थी जबकि विस्थापन के पश्चात् केवल 101 उत्तरदाताओं के पास कृषि भूमि बची है स्पष्ट है कि लगभग 50 प्रतिशत उत्तरदाता भूमिहीन हो गये। शेष बचे परिवारों के पास भी बची हुई कृषि योग्य भूमि का आकार कम हुआ है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन के संबंध में उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि विस्थापन के फलस्वरूप सूचनादाताओं की आर्थिक स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई है। अध्ययन के अधिसंख्यक सूचनादाता (51.52 प्रतिशत) मजदूरी करके अपना जीवन यापन कर रहे हैं। अधिकांश (62.8 प्रतिशत) की मासिक आय मात्र रू. 3000 तक है, विस्थापन से पूर्व 88.94 प्रतिशत सूचनादाताओं के पास कृषि योग्य भूमि थी जबकि विस्थापन के पश्चात मात्र 46.5 प्रतिशत के पास कृषि योग्य भूमि शेष रह गई है यही नहीं अपितु जिनके पास कृषि योग्य भूमि शेष है उनकी भूमि के आकार में भी अत्यधिक कमी आई है। विस्थापन से पूर्व 35 प्रतिशत के

पास 4 एकड़ से अधिक भूमि थी जबकि अब मात्र 23.76 प्रतिशत के पास 4 एकड़ से अधिक भूमि है। विस्थापन के फलस्वरूप विस्थापित परिवारों के कार्यशील सदस्यों के पास रोजगार का अभाव होने से भी उनकी आर्थिक स्थिति प्रभावित हो रही है। कुल मिलाकर विस्थापित गाँव के लोग अधिकांशतः गम्भीर आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. विद्यार्थी 'भारत में औद्योगीकरण के सामाजिक संस्कृति प्रभाव', आदिवासी बिहार अनुसंधान कार्यक्रम समिति का एक अध्ययन', योजना आयोग, नई दिल्ली 1970 पृ. 145
2. डब्ल्यू फर्नांडीस, एस.सी.दास एवं सैम राव 'विस्थापन एवं पुनर्वास, सीमा और संभावनाओं का अनुमान', 1989, पृ. 61
3. एम. सेरेनिया, 'एक वैश्विक संदर्भ में अफ्रीकी अनैच्छिक जनसंख्या पुनर्वास पर्यावरण विभाग के कागजात सामाजिक मूल्यांकन क्रमांक 045' 1993, पृ. 215
4. हरी मोहन माथुर, माइकल एम. सेरेनिया के सहयोग से (संस्कृ.), 'विकास, विस्थापन एवं पुनःस्थापना', एशियाई अनुभव पर केन्द्रित, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 162
5. सैनी संतोष कुमार, 'कश्मीरी प्रवासितों में विस्थापन का आर्थिक प्रभाव 1905', जम्मू विश्वविद्यालय, 2012, पृ. 4
6. राजू सिंह, 'विकास, विस्थापन और पुनर्वास', रावत प्रकाशन नई दिल्ली, 2016, पृ. 143
7. जी. आर. मदन, 'परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, आर्थिक विकास- राज्य, केन्द्रीय परिधि तथा विश्व व्यवस्था, भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं', विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1967, पृ. 202
8. हरी मोहन माथुर, और मार्सडन, 'विकास परियोजनाओं और जोखिम, पूनर्मूल्यांकन परियोजना - भारत में प्रभावित लोग', ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, 1998 पृ.110
9. ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत् भू संसाधन की वार्षिक रिपोर्ट, 2007-2008, पृ. 36
10. सी.एस. गजरंजन, 'पुनर्वास और आर्थिक परिवर्तन की योजना, तुंगभद्रा नदी परियोजना का केस अध्ययन', गोखले अर्थव्यवस्था और राजनीतिक संस्थान, पूना, 1970 पृ. 89

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

शिक्षा मंत्रालय के ऑनलाइन शिक्षण प्रयास में मीडिया शिक्षा की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ राकेश यादव

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय का संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी) पर राष्ट्रीय शिक्षा मिशन छात्रों, शिक्षकों और आजीवन सीखने वालों की सभी तरह की शिक्षा और सीखने संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण मिशन है। प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों में मीडिया शिक्षा की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। 20 संचार व सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा प्रयासों के अंतर्गत उपलब्ध पाठ्यक्रमों व विषय-वस्तु में जनसंचार एवं पत्रकारिता विषय की स्थिति को जानने का प्रयास किया गया है। मीडिया शिक्षण के आगामी भविष्य में ऑनलाइन शिक्षण के प्रयासों की सफलता राष्ट्रीय शिक्षा मिशन में मीडिया पाठ्यक्रम की उपलब्धता पर निर्भर करती है। भारत में मीडिया शिक्षा के स्वर्णिम इतिहास की एक सदी पूर्ण होने को है, मीडिया आज मिशन से आगे बढ़कर व्यवसाय उन्मूलन क्षेत्र के रूप में स्थापित हो चुका है। समाज को सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन के उद्देश्य से अंकुरित मिशन आज सम्पूर्ण विश्व की लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में चौथे स्तम्भ के रूप में खड़ा है। साथ-साथ एक बड़ा रोजगार देने वाले व्यवसाय के रूप में भी स्थापित हुआ है। शिक्षण पद्धति के बदलते स्वरूपों में मीडिया शिक्षा का स्थान बनाना ही आगामी मीडिया शिक्षा की सफलता का निर्धारक होगा। सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा नयी शिक्षण प्रणाली या इंटरनेट आधारित शिक्षण व्यवस्था के प्रयासों में मीडिया के स्थान को जानने के लिए, विषय-वस्तु विश्लेषण पद्धति से प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है।

शब्द संकेत : ऑनलाइन शिक्षण प्रयास, मीडिया शिक्षा, संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी, राष्ट्रीय शिक्षा मिशन

ऑनलाइन शिक्षण प्रयास : शिक्षा के बदलते स्वरूप में तकनीक आधारित शिक्षा का दौर भारत में तेजी से विकसित हुआ है। देश में आजादी के बाद तेजी से स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी, उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले बच्चों की दर का लगातार कम होने के संकट से निपटने के लिए शिक्षा की सर्वजन तक पहुँच को सुनिश्चित करना आवश्यक था। देश के अंतिम बच्चे को शिक्षा व्यवस्था में जोड़े रखने के लिए शिक्षण कार्य को सुलभ व शिक्षा को सस्ता किया जाना आवश्यक था। तेजी से पैर पसार रही जनसंख्या तक शिक्षा लेकर जाना एक चुनौती से भरा कार्य था।

इस कार्य को एक राहत की साँस इंटरनेट की शुरुआत ने दी। साथ-साथ ऑल इंडिया रेडियो और दूरदर्शन ने शिक्षा क्षेत्र में अहम बदलाव की दिशा तय की। 1994 में इसरो ने पहली बार ऑनलाइन शिक्षण की दिशा में कदम बढ़ाते हुए इग्नू मुख्यालय के साथ मिलकर तकनीकी उपयोग से टेलीकांफ्रेंसिंग की सुविधा को प्रारंभ किया।[1]

टेलीकांफ्रेंसिंग अध्ययन ने शिक्षा में तकनीक आधारित शिक्षा का एक नया मार्ग प्रशस्त किया। इंटरनेट की बढ़ती गति के साथ-साथ मल्टीमीडिया मोबाइल की भारत में बढ़ती संख्या ने प्रत्येक बच्चे को शिक्षा की एक किरण दिखाई। उपग्रह की सफलता के बाद ऑनलाइन शिक्षण की आधुनिक आवश्यकताओं को सरलता से पूरा किया जाने लगा।[2]

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने सूचना प्रौद्योगिकी आधारित राष्ट्रीय शिक्षा मिशन (आईसीटी- एनएमई आईसीटी) शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया में तकनीक का इस्तेमाल करके, आभासी प्रयोगशालाओं, ऑनलाइन परीक्षण और प्रमाणन के माध्यम से प्रदर्शन करने की सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया। मल्टीमीडिया तकनीक से युक्त इस मिशन के द्वारा ई-सामग्री प्रदान करके संपूर्ण ई-लर्निंग पारिस्थितिकी तंत्र बनाने का महत्वाकांक्षी सपना देखा गया। शिक्षा में एक उपकरण के रूप में आईसीटी का उपयोग कर 11वीं योजना अवधि के अंत तक उच्च शिक्षा में वर्तमान नामांकन दर को 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 15 प्रतिशत करने का लक्ष्य तय किया गया। वर्ष 2008-09 बजट में संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के माध्यम से नेशनल मिशन ऑन एजुकेशन के लिए 502 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। शिक्षकों और विशेषज्ञों के ज्ञान व अनुभव से भारतीय शिक्षार्थी के लाभ के लिए डिजिटल पाठ्यक्रम

❑ शोध अध्येता, पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

प्रणाली को अपनाया जाने लगा। मिशन के अंतर्गत अपने देश के ज्ञान को एकीकृत करने के लिए शिक्षा और कनेक्टिविटी प्रदान करने के लिए संबंधित महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सामग्री निर्माण, अनुसंधान के बीच एक उचित संतुलन करने का प्रयास किया गया।[3]

राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के अंतर्गत शैक्षिक संचार संकाय का उद्देश्य शिक्षार्थियों के लिए उच्चतम गुणवत्ता युक्त शिक्षण सामग्री विकसित करना था। प्रत्येक विषय के समन्वयक, अपने विषयों के विशेषज्ञ होते हैं, जो स्नातक (यूजी) पाठ्यक्रम को तैयार करते हैं। सर्वोत्तम शिक्षण कार्यक्रम वितरित करने के लिए संबद्ध विशेषज्ञों की सेवाओं की पहचानकर उन्हें विकसित किया जाता हैं। प्रत्येक ई-कंटेंट मॉड्यूल को लिखित, दृश्य-श्रव्य, वेब आधारित और स्वतः मूल्यांकित संसाधनों से युक्त चार वृत्त खंडों में विभाजित किया गया है। प्रशिक्षक द्वारा प्रस्तुत वीडियो को डाउनलोड करने के लिए ई-बुक के रूप में भी उपलब्ध कराया गया है। सामग्री को किसी भी त्रुटि से मुक्त करने के लिए एक व्यापक द्वि-चरणीय सहकर्मी पूर्वावलोकन प्रक्रिया से गुजरना पड़ा है जिससे इसकी गुणवत्ता सुनिश्चित की जाती है।[4]

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के महत्व को मान्यता प्रदान करते हुए शिक्षा मंत्रालय ने 'सशक्त' नामक वेब पोर्टल भी प्रारंभ किया है, जो 'वन स्टॉप शिक्षा पोर्टल' है। उच्च गुणवत्ता वाली ई-विषय-वस्तु सभी विषय क्षेत्रों और विषयों पर 'सशक्त' में अपलोड की जा रही है। अनेक परियोजनाएं समाप्ति की अवस्था पर हैं तथा इससे भारत में शिक्षण और अधिगम की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन आने की संभावना है। ललित समूहों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली ई-विषय-वस्तु का निर्माण करेगा तथा साथ ही यह देश में 18000 से अधिक कॉलेजों की कंप्यूटिंग अवसंरचना और संयोजनता में साथ-साथ विस्तार किया जा रहा है जिसमें राष्ट्रीय महत्व के लगभग 400 विश्वविद्यालयों या मानित विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं का प्रत्येक विभाग सम्मिलित है। पारस्परिक सहयोग तथा समस्या निवारण दृष्टिकोण का निवारण 'शिक्षक से बात करें' खंड के माध्यम से किया जाएगा।[5]

साहित्य अवलोकन : शिक्षण की विभिन्न प्रणाली में शिक्षा के औपचारिक और गैर-औपचारिक रूप सम्मिलित हैं। संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का उपयोग एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा बड़ी जनसंख्या तक शिक्षा को प्रभावी ढंग से पहुँचाया जा सकता है। इसके अलावा गुणवत्ता और वितरण को बढ़ाने में नागरिकों के साथ संबंधों को विकसित करने के मामले में विशेष रूप से संचार व सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सेवाएँ विकसित की गयी हैं।[6]

रेडियो, टीवी, इंटरनेट, मोबाइल फोन, कंप्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट और कई अन्य हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर अनुप्रयोग विभिन्न संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के वे उपकरण हैं जिनका उपयोग आधुनिक दुनिया में ज्ञान सृजन और प्रसार के लिए किया जा सकता है। लैपटॉप, पीसी, मोबाइल फोन और पीडीए जैसे कुछ आईसीटी उपकरणों का शिक्षा में अपना निहितार्थ है। इन उपकरणों का उपयोग शिक्षकों और छात्रों के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करने में किया जा सकता है। आईसीटी के बहुत से उपकरण बहुत अधिक सम्मोहित करने वाले हैं, लेकिन अब तक फलदायी परिणाम नहीं दिए हैं। शैक्षणिक प्रथाओं के लिए रेडियो का उपयोग अतीत में बहुत लोकप्रिय रहा है और अभी भी इग्नू द्वारा भारत में इसका उपयोग किया जाता है।[7]

शैक्षिक संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी) उपकरण शिक्षकों को स्वयं आईसीटी कौशल बनाने के लिए नहीं हैं, बल्कि शिक्षकों को आईसीटी के माध्यम से सीखने के लिए अधिक प्रभावी वातावरण बनाने के लिए हैं। शिक्षक सामग्री, पाठ्यक्रम, निर्देश, और मूल्यांकन के क्षेत्रों में इन उपकरणों का उपयोग करके लाभ प्राप्त करने के लिए आईसीटी उपकरणों का उपयोग कर सकते हैं। आईसीटी में फिक्स्ड लाइन टेलीफोनी, मोबाइल टेलीफोनी, समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, रेडियो ट्रंकिंग, बहुत छोटे एपर्चर टर्मिनल (वीएसएटी), कंप्यूटर, और इंटरनेट सम्मिलित हैं जो ग्रामीण जनता के लिए उनकी मांग के अनुसार सुलभ होने चाहिए। आईसीटी के माध्यम से शिक्षा में गुणवत्ता और हितधारकों के बीच इसकी जागरूकता का समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। आईसीटी शिक्षा के विभिन्न चरणों में इसे लागू करके शिक्षा की गुणवत्ता और मानकों में सहायक हो सकता है। आईसीटी को औपचारिक और गैर-औपचारिक प्रकार की शिक्षा में नियोजित किया जा सकता है और अंततः शिक्षार्थियों को समाज के रोजगार और सामाजिक रूप से उपयोगी हिस्सा बना देगा। शिक्षक प्रशिक्षण में आईसीटी को नियोजित करने से सरकार का बहुत पैसा बच सकता है। इसके अलावा बहुत से

गुणात्मक सुधारों को देखा जा सकता है, क्योंकि प्रशिक्षण के लिए संसाधन व्यक्ति दुनिया के सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं। प्रशासन में आईसीटी को नियोजित करने से छात्रों और शिक्षकों की अनुपस्थिति की समस्या को हल करने में मदद मिल सकती है।

अच्छी गुणवत्ता वाली सामग्री एक प्रमुख मुद्दा है और शिक्षा और गुणवत्ता के मानकों को सीधे प्रभावित करती है। शिक्षा की प्रक्रिया में सम्मिलित कुछ चुनौतियों पर नियंत्रण पाने से इस पक्ष में बहुत मदद मिल सकती है। विभिन्न हितधारकों द्वारा शिक्षा में आईसीटी के सावधानीपूर्वक और नियोजित कार्यान्वयन के बाद विशेष रूप से बहुत अधिक गुणवत्ता सुधार संभव है।[8]

संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी)में शिक्षण और सीखने के परिणामों को बढ़ाने की बहुत क्षमता है। इस क्षमता की प्राप्ति इस बात पर निर्भर करती है कि शिक्षक प्रौद्योगिकी का उपयोग कैसे करता है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक गतिशीलता के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है। शिक्षा कभी न खत्म होने वाली एक प्रक्रिया है जो हमारी संस्कृति के नैतिक मूल्यों को अगली पीढ़ी तक पहुंचाती है। यह हमारे राष्ट्र की नई पीढ़ी का विकास और निर्माण करने में सक्षम बनाती है। इस संदर्भ में स्कूल आईसीटी शिक्षा के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[9]

शोध उद्देश्य :

1. ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों में मीडिया पाठ्यक्रमों की स्थिति का पता लगाना।
2. ऑनलाइन मीडिया शिक्षण को लेकर शिक्षा मंत्रालय के प्रयासों का पता लगाना।
3. ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों की विषय-वस्तु का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना :

1. ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों में मीडिया पाठ्यक्रमों की उपलब्धता कम है।
2. ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों में मीडिया पाठ्यक्रमों की उपलब्धता कम नही है।

शोध परिकल्पना :

1. ऑनलाइन मीडिया शिक्षण को लेकर शिक्षा मंत्रालय के प्रयास पर्याप्त हैं।
2. ऑनलाइन मीडिया शिक्षण को लेकर शिक्षा मंत्रालय के प्रयास पर्याप्त नहीं हैं।

शोध परिकल्पना :

1. ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों में मीडिया की विषय-वस्तु नगण्य है।
2. ऑनलाइन शिक्षण प्रयासों में मीडिया की विषय-वस्तु नगण्य नही है।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध विश्लेषणात्मक शोध है, जिसमें विषय वस्तु विश्लेषण विधि से भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा संचार व सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी) पर राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के अंतर्गत चलाए जा रहे विभिन्न 20 प्रयासों की विषयवस्तु का विश्लेषण किया है। इन प्रयासों के प्लेटफोर्म पर उपलब्ध पाठ्यक्रमों का गुणात्मक व मात्रात्मक दोनों विश्लेषण है। गुणात्मक दृष्टिकोण से प्रयासों पर उपलब्ध पाठ्यक्रम का स्तर, प्रासंगिकता, छात्रों की प्रतिक्रिया, सहभागिता को जानने का प्रयास किया है। मात्रात्मक दृष्टि से मीडिया विषयों से जुड़े पाठ्यक्रमों की संख्या एवं उनमें छात्रों के पंजीकरण के आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। ये प्रयास शिक्षा मंत्रालय के विभिन्न संस्थाओं, विश्वविद्यालयों द्वारा संचालित किए जा रहे हैं।

संचार व सूचना प्रौद्योगिकी पर राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के अंतर्गत प्रयास :

स्वयं : स्वयं एक ऐसा मंच है जिसके माध्यम से कक्षा 9 से लेकर पोस्ट-ग्रेजुएशन वाले सभी पाठ्यक्रमों को किसी भी समय, किसी के द्वारा भी एक्सेस किया जा सकता है। स्वयं पूरी तरह से निशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने वाला माध्यम है। सभी पाठ्यक्रम इंटरैक्टिव हैं, जो देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों द्वारा तैयार किए गए हैं।इन पाठ्यक्रमों को देशभर के 1,000 से अधिक संकाय सदस्यों ने तैयार किया है। स्वयं पर उपलब्ध पाठ्यक्रम चार रूपों में हैं। वीडियो लेक्चर, विशेष रूप से तैयार की गई पठन सामग्री जिसे डाउनलोड या प्रिंट किया जा सकता है, परीक्षण और क्विज के माध्यम से स्व-मूल्यांकन परीक्षण और संदेह समाशोधन के लिए एक ऑनलाइन चर्चा मंच। ऑडियो-वीडियो और मल्टी-मीडिया और अत्याधुनिक शिक्षा प्रौद्योगिकी का उपयोग करके शिक्षण कार्य को समृद्ध करने के लिए स्वयं के माध्यम से ये सभी कदम उठाए गये है। नौ राष्ट्रीय समन्वयक नियुक्त किए गए हैं जो अलग-अलग स्तर के पाठ्यक्रम तैयार करते हैं। स्व-पुस्तक व अंतर्राष्ट्रीय पाठ्यक्रमों के लिए AICTE (अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद), इंजीनियरिंग

शिक्षा के लिए एनपीटीईएल (नेशनल प्रोग्राम ऑन टेक्नोलॉजी एनहांस्ड लर्निंग), गैर-तकनीकी स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए यूजीसी (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग), अंडर-ग्रेजुएट शिक्षा के लिए सीईसी (कंसोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन), स्कूल शिक्षा के लिए NCERT (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद), स्कूल शिक्षा के लिए NIOS (राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान), बाहर के छात्रों के लिए इग्नू (इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय), प्रबंधन अध्ययन के लिए IIMB (भारतीय प्रबंधन संस्थान, बैंगलोर), शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए NITTTR (राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान)।

दीक्षा : दीक्षा वो पहल है, जो शिक्षकों को केंद्र में रखते हुए वर्तमान डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर का लाभ उठाती है। शिक्षक अपनी कक्षाओं में नवीन तकनीक आधारित समाधानों का निर्माण और उपयोग कर रहे हैं। वहीं राज्य सरकारें भी अपने शिक्षकों को डिजिटल रूप से समर्थन देने का काम करती हैं। शिक्षा मंत्रालय और एनसीटीई के संयुक्त समन्वय से ये प्रयास शुरू किया गया। दीक्षा शिक्षक को ई-क्लास संसाधन तैयार करना, शिक्षक प्रशिक्षण सामग्री, मूल्यांकन, शिक्षक प्रोफाइल, घोषणा जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (उदाहरण - सीखने के परिणामों, सीसीई, आदि पर प्रशिक्षण) पाठ योजना, अवधारणा वीडियो, कार्य पत्रक, पाठ्यक्रम के लिए मैप किए गए शिक्षण संसाधन, आकलन, उनकी ताकत और सुधार के क्षेत्रों का पता लगाने के लिए शिक्षक इस सामग्री को अपने स्मार्टफोन, टैबलेट और अन्य उपकरणों पर ऑफलाइन कभी भी और कहीं भी एक्सेस कर सकते हैं।

ई पाठशाला : ई पाठशाला सीआईईटी और एनसीआरटी द्वारा विकसित एक पोर्टल है। शिक्षा मंत्रालय की देख-रेख में नवंबर 2015 में यह प्रयास शुरू किया गया। यह शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों, शोधकर्ताओं के शैक्षिक संसाधनों को होस्ट करता है। इस पर उपलब्ध सामग्री अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू तीनों भाषाओं में उपलब्ध है। यह मंच केवल 1 से 12 कक्षाओं के लिए एनसीआरटी पाठ्यपुस्तकों, ऑडियो-विजुअल संसाधनों, समय-समय परशिक्षक प्रशिक्षण मॉड्यूल और अन्य प्रिंट और गैर-प्रिंट सामग्रियों में शैक्षिक संसाधनों को प्रदान करता है।

स्वयं प्रभा : स्वयं प्रभा 34 डीटीएच चैनलों का एक समूह है। एनपीटीईएल, आईआईटी, यूजीसी, सीईसी, इग्नू, एनसीईआरटी और एनआईओएस द्वारा विडियो सामग्री तैयार की जाती है। ये GSAT&15 उपग्रह का उपयोग करके 24X7 आधार पर उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। प्रतिदिन कम से कम चार घंटे के लिए नई सामग्री प्रसारित की जाती है जिसको एक दिन में पाँच बार दोहराया जाता है। छात्रों को समय की परेशानी से बचाने के लिए एक अच्छी सुविधा है। चैनल को BISAG गांधीनगर से अपलिंक किया गया है। एनपीटीईएल, आईआईटी, यूजीसी, सीईसी, इग्नू, एनसीईआरटी और एनआईओएस द्वारा सामग्री प्रदान की जाती है। INFLIBNET सेंटर इस पोर्टल का रखरखाव के लिए जिम्मेदार है।

राष्ट्रीय शैक्षणिक डिपॉजिटरी : राष्ट्रीय शैक्षणिक डिपॉजिटरी भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया एक प्रयास है। यह एक शैक्षणिक संसाधन व सामग्री का एक डिजिटल डेटाबेस है। राष्ट्रीय शैक्षणिक डिपॉजिटरी (एनएडी) सभी शैक्षणिक पुरस्कारों अर्थात डिप्लोमा, डिग्री, मार्क-शीट आदि का 24X7 ऑनलाइन स्टोर हाउस है, जिसे शैक्षणिक संस्थानों/बोर्डों/पात्रता मूल्यांकन निकायों द्वारा विधिवत डिजिटलाइज्ड और लॉक किया जाता है। राष्ट्रीय शैक्षणिक उपलब्ध सामग्री की प्रामाणिकता और सुरक्षित भंडारण की पुष्टि और गारंटी भी देता है। डेटाबेस की प्रामाणिकता अखंडता और गोपनीयता को सुनिश्चित करने के अलावा, एनएडी नकली और जाली पेपर प्रमाण-पत्रों के लिए एक निवारक के रूप में कार्य कर रहा है, भौतिक रिकॉर्ड की आवश्यकता को समाप्त करने की दिशा में तेजी से कार्यरत है। डिजी लॉकर प्रणाली में जारी दस्तावेजों को सूचना प्रौद्योगिकी के नियम 9अ के अंतर्गत (डिजिटल लॉकर सुविधाएं प्रदान करने वाले बिचौलियों द्वारा संरक्षण और अवधारण) के नियमों के अनुसार मूल भौतिक दस्तावेजों के समतुल्य माना जाता है।

ई-यंत्र : यह प्रयास केवल विज्ञान एवं तकनीकी से जुड़े कुछ पाठ्यक्रमों को मुफ्त उपलब्ध कराने की सुविधा प्रदान करता है। प्रतिष्ठित संकाय सदस्य और विद्वानों द्वारा आइआइटी बॉम्बे में पढ़ाए जाने वाले कुछ चुने हुए स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में निःशुल्क पहुँच प्रदान करता है। देश में इंजीनियरिंग संस्थानों के छात्रों

और शिक्षकों के लिए गुणवत्तापूर्ण इंजीनियरिंग शिक्षा प्रदान करना। इस पर उपलब्ध पाठ्यक्रमों को इंटरनेट कनेक्शन के साथ हेडफोन वाले पर्सनल कंप्यूटर या लैपटॉप पर बिल्कुल निःशुल्क देखा जा सकता है।

ई-कल्पा : डिजिटल-लर्निंग डिजिटल पर्यावरण नामक यह परियोजना भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षा में राष्ट्रीय मिशन के अंतर्गत शुरू की गयी। ये परियोजना तीन पहलें प्रस्तुत करती है - डिजाइन के लिए डिजिटल ऑनलाइन सामग्री प्रदान करना, डिजाइन और उच्च शिक्षा के लिए एक सामाजिक नेटवर्किंग वातावरण व डिजाइन पर एक डिजिटल संसाधन डेटाबेस बनाना। 'ई-कल्प' को तीन संस्थानों आईआईटी बॉम्बे, आईडीसी, बैंगलोर एनआईडी और आईआईटी गुवाहाटी में डीओडी के साथ-साथ अन्य डिजाइन से संबंधित संस्थानों और संगठनों के सहयोग से विकसित किया गया है।

शिक्षा के लिए मुफ्त सॉफ्टवेयर : यह परियोजना हमारे देश में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए निःशुल्क व ओपन सॉफ्टवेयर उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा देती है। इसका उद्देश्य शैक्षणिक संस्थानों में मालिकाना सॉफ्टवेयर पर निर्भरता को कम करना है। शिक्षा और अनुसंधान में आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वर्तमान उपकरणों का उन्नयन करना इनका लक्ष्य है। यह परियोजना भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय व सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा प्रारम्भ संयुक्त राष्ट्रीय मिशन है।

विद्वान : विद्वान भारत में शिक्षण एवं अनुसंधान से जुड़े प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों और अन्य शोध एवं विकास संगठन में काम करने वाले वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और संकाय सदस्यों के प्रोफाइल का प्रमुख डेटाबेस है। यह विशेषज्ञ की पृष्ठभूमि, संपर्क, पता, अनुभव, विद्वानों के प्रकाशन, कौशल, उपलब्धियों आदि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता है। एनएमई-आईसीटीडे का ये डेटाबेस मंत्रालयों द्वारा स्थापित विभिन्न समितियों व कार्यबल के विशेषज्ञों के पैनल के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

स्पोकन ट्यूटोरियल : स्पोकन ट्यूटोरियल शैक्षिक सामग्री का एक ऐसा पोर्टल है जहां कोई भी व्यक्ति विभिन्न फ्री और ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर सीख सकता है। इसके स्व-पुस्तक, बहुभाषी पाठ्यक्रम यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी कंप्यूटर और सीखने की इच्छा के साथ, किसी भी स्थान से, किसी भी समय और अपनी पसंद की भाषा में सीख सकता है। इसके पाठ्यक्रम शुरुआती के लिए भी सरल और आसान हैं, साथ ही शिक्षार्थी की बढ़ती आवश्यकताओं को भी पूरा करते हैं। सिखाए गए सॉफ्टवेयर में से कई इंजीनियरिंग, शुद्ध विज्ञान और कई अन्य अंडर-ग्रैड और पोस्ट-ग्रैड अध्ययन के विभिन्न विषयों में उपयोग किए जाते हैं, और वाणिज्य, कला और प्रबंधन धाराओं के लिए काम में लिया जाता है। कुछ पाठ्यक्रम स्कूल के छात्रों को गणित और विज्ञान की कठिन अवधारणाओं की कल्पना करने में मदद करते हैं।

नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया : नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया शिक्षण सामग्री के संसाधनों का एक आभासी भंडार है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के अंतर्गत प्रायोजित और सलाहित है। यह भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान खड़गपुर से विकसित, संचालित और अनुरक्षित है। डिजिटल लाइब्रेरी स्कूल और कॉलेज के छात्रों के लिए परीक्षा तैयारी, शोधकर्ताओं, सामान्य शिक्षार्थियों व नौकरी की तलाश वाले छात्रों के लिए समर्पित है। इसको दस से अधिक भाषा की सामग्री रखने के लिए डिजाइन किया गया है।

बादल : बादल एक क्लाउड ऑर्केस्ट्रेशन और वर्चुअलाइजेशन प्रबंधन सॉफ्टवेयर है, जो शिक्षा मंत्रालय द्वारा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के अंतर्गत शुरू किया गया है। आईआईटी दिल्ली पर इसको विकसित और संरक्षित करने की जिम्मेदारी है। यह बुनियादी ढाँचे का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने के साथ-साथ शैक्षणिक आवश्यकताओं के लिए तकनीकी अनुप्रयोगों के विकास और गति को देने को समर्पित है।

जीआईएएन : केंद्रीय मंत्रिमंडल ने भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों के साथ अपने जुड़ाव को प्रोत्साहित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिकों और उद्यमियों के प्रतिभा पूल के दोहन के उद्देश्य से उच्च शिक्षा में वैश्विक पहल के लिए ग्लोबल इनिशिएटिव (जीआईएएन) नामक एक कार्यक्रम को स्वीकृति दी है ताकि देश के सभी प्रामाणिक संसाधनों को बढ़ाया जा सके। गुणवत्ता सुधार की गति में तेजी लाएं, और वैश्विक उत्कृष्टता के लिए भारत की वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमता को बढ़ाएं। देश में उच्च शिक्षा संस्थानों को उत्प्रेरित करने के लिए

जीआईएएन की परिकल्पना की गई है, और इसमें शुरुआत में सभी आईआईटी, आईआईएम, केंद्रीय विश्वविद्यालय, आईआईएससी बैंगलोर, आईआईएसईआर, एनआईटी और आईआईआईटी सम्मिलित होंगे जो बाद में अच्छी राज्य इकाइयों को कवर करते हैं जहां स्पिनऑफ विशाल हैं। जीआईएएन एक उभरती हुई योजना है जिसमें लघु या सेमेस्टर-लंबे पाठ्यक्रम प्रदान करने में भाग लेने के लिए संस्थानों में विशिष्ट रूप से गणमान्य/सहायक/विजिटिंग संकाय/प्रोफेसर आदि के रूप में विदेशी संकाय की भागीदारी सम्मिलित होगी। अन्य गतिविधियों को नियत समय में सम्मिलित किया जाएगा।

एनपीटीईएल : एनपीटीईएल 2003 में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलोर के साथ सात भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (बॉम्बे, दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर, मद्रास, गुवाहाटी और रुड़की) द्वारा प्रौद्योगिकी वर्धित शिक्षण पर राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया गया था। यह प्रयास विज्ञान, तकनीकी, इंजीनियरिंग शिक्षा को समर्पित है एवं इसमें सिविल इंजीनियरिंग, कंप्यूटर विज्ञान और इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रॉनिक्स और संचार इंजीनियरिंग और मैकेनिकल इंजीनियरिंग पर वीडियो प्रारूप में 235 पाठ्यक्रम विकसित किए गए थे।

OSCAR : ओपन सोर्स कोर्टवेयर एनिमेशन रिपोजिटरी का मुख्य लक्ष्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अवधारणाओं को पढ़ाने और सीखने के लिए वेब-आधारित, इंटरैक्टिव एनिमेशन और सिमुलेशन का एक बड़ा भंडार बनाना है। ये न केवल कक्षा के माहौल के लिए बल्कि स्वतंत्र शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा को सक्षम करने के लिए उपयोगी हो सकते हैं। इस प्रयास का वर्तमान लक्ष्य स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों पर विभिन्न विषयों के लिए विषय-वस्तु विकसित करना है।

कॉन्सोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन : कॉन्सोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन भारत के विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्थापित अंतर विश्वविद्यालय केंद्रों में से एक है। यह टेलीविजन के माध्यम से उच्च शिक्षा की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए सूचना संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के उचित उपयोग के लिए स्थापित किया गया है।शैक्षिक ज्ञान प्रसार के लिए टेलीविजन की क्षमता और शक्ति को अनुभव करते हुए यूजीसी ने वर्ष 1984 में देशव्यापी कक्षा कार्यक्रम शुरू किया। ऐसे कार्यक्रमों के उत्पादन के लिए देशभर में 6 विश्वविद्यालयों में मीडिया केंद्र स्थापित किए गए। इसके बाद कॉन्सोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन1993 में राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक उत्पादन के समन्वय, मार्गदर्शन और सुविधा के लिए एक नोडल एजेंसी के रूप में उभरा। आज 21 मीडिया सेंटर सीईसी की छतरी के नीचे इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में काम कर रहे हैं। सीईसी केंद्र शैक्षिक कार्यक्रमों (ऑडियो/विजुअल और वेब आधारित) और संबंधित समर्थन सामग्री का उत्पादन करते हैं।

चौनल व्यास : व्यास हायर एजुकेशन चौनल विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में अपने डिग्री पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने वाले छात्रों को समर्पित है। इसमें जिस पाठ्यक्रम का पालन किया जा रहा है, वह यूजीसी मॉडल पाठ्यक्रम और सीबीसीएस अनुपालन पर आधारित होता है। चौनल का शेड्यूलिंग चरण निर्धारण प्रारूप पर आधारित होता है।

ई-पीजी पाठशाला : ई-पीजी पाठशाला आईसीजी (एनएमई-आईसीटी) के माध्यम से यूजीसी द्वारा निष्पादित किए जाने वाले राष्ट्रीय मिशन के अंतर्गत एमएचआरडी की एक पहल है। सामग्री और इसकी गुणवत्ता शिक्षा का प्रमुख घटक है। सामाजिक विज्ञान, कला, ललित कला और मानविकी, प्राकृतिक और गणितीय विज्ञान सहित सभी 70 विषयों से जुड़ी उच्च्च गुणवत्ता वाली पाठ्यक्रम-आधारित इंटरैक्टिव ई-सामग्री इस पोर्टल पर उपलब्ध है।

शगुन : शगुन की स्थापना देश के समस्त स्कूलों, उनकी गुणवत्ता, शिक्षकों और शिक्षा से जुड़ी योजनाओं की समस्त जानकारी को एक स्थान पर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गयी। स्कूलों की निगरानी के उद्देश्य से15 लाख स्कूलों और उनके शिक्षकों व छात्रों को 'शगुन' पोर्टल से जोड़ा गया है। स्कूली शिक्षा क्षेत्र की सभी सूचनाएं उपलब्ध होंगी यहाँ उपलब्ध है ये सूचना थर्ड पार्टी वेरिफिकेशन के बाद इस पोर्टल पर अपडेट की जाती है।

एनआरओआर : एक सहयोगी मंच है, जो स्कूल और शिक्षक शिक्षा में रुचि रखने वाले सभी को एक साथ लाता है। स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग, शिक्षा मंत्रालय और केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रबंधित प्रयास है।

आँकड़ों का विश्लेषण : शिक्षा मंत्रालय के तकनीकी शिक्षा पर केंद्रित प्रयासों के अध्ययन में मीडिया शिक्षा की

स्थिति व मीडिया कोर्स संख्याके बारे में जानने का प्रयास किया गया, जिसमें सामने आया कि 20 में से केवल 6 प्रयास ऐसे हैं जिनमें मीडिया से जुड़े विषयों को स्थान दिया गया है। (चार्ट : 1)

मिडिया शिक्षा एक विकसित शिक्षण क्षेत्र है। डिग्री व्यवस्था के बाहर एक व्यवसायिक पाठ्यक्रम होने के चलते छात्रों को रोजगार की दिशा में अग्रसर करने वाला है। परंतु शिक्षा मंत्रालय का कोई विशेष प्रयास मीडिया शिक्षा को तकनीक के द्वारा निशुल्क व सर्व उपलब्ध बनाने की दिशा में कोई विशेष प्रयास नही है।

प्रयास	केंद्रित विषय	मीडिया पाठ्यक्रम/सामग्री संख्या
E-PG PATHSHALA	सामाजिक विज्ञान, कला, ललित कला और मानविकी, प्राकृतिक और गणितीय विज्ञान सहित सभी 70 विषयों	383 कोर्स व विषयवस्तु
SWAYAM PRABHA	उच्च शिक्षा	580 कोर्स व विषयवस्तु
SWAYAM	कक्षा 9 से लेकर पोस्ट-ग्रेजुएशन के पाठ्यक्रम	मीडिया विषय पर अनेक कोर्स
NREOE	स्कूल और शिक्षक शिक्षा	शून्य
E-PATHSHALA	1 से 12 कक्षाओं के लिए	शून्य
DIKSHA	शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम	शून्य
NAD	डिप्लोमा, डिग्री, मार्क-शीट आदि का ऑनलाइन स्टोर हाउस	शून्य
E-YANTRA	विज्ञान एवं तकनीकी से जुड़े कुछ पाठ्यक्रम	शून्य
E-KALPA	विज्ञान उच्च शिक्षा	शून्य
FOSSEE	निःशुल्क व ओपन सॉफ्टवेयर उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा	शून्य
VIDWAN	वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और संकाय सदस्यों के प्रोफाइल का प्रमुख डेटाबेस	शून्य
SPOKEN TUTORIAL	फ्री और ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर सीखना	शून्य
NDLI	डिजिटल लाइब्रेरी स्कूल और कॉलेज के छात्रों के लिए	मीडिया से जुडी विषय-वस्तु उपलब्ध
BAADAL	क्लाउड ऑर्केस्ट्रेशन और वर्चुअलाइजेशन प्रबंधन सॉफ्टवेयर	शून्य
GIAN	वैज्ञानिक और तकनीकी	शून्य
NPTEL	विज्ञान तकनीकी इंजीनियरिंग शिक्षा	शून्य
OSCAR	विज्ञान और प्रौद्योगिकी	शून्य
CEC	कॉलेज शिक्षा	मीडिया से जुड़ी सामग्री व पाठ्यक्रम उपलब्ध
CHAINAL VYAS	कॉलेज शिक्षा	मीडिया से जुड़ी सामग्री व पाठ्यक्रम उपलब्ध
SHAGUN	स्कूल शिक्षा	शून्य

चार्ट : 1 (स्त्रोत : सभी पोर्टल के आधिकारिक वेबसाइट)

परिकल्पना जाँच : वैकल्पिक परिकल्पना यूजीसी द्वारा या किसी उच्च शिक्षा से जुड़ी अन्य संस्था द्वारा संचालित प्रयासों में मीडिया से जुड़े पाठ्यक्रम बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। अतः शिक्षण प्रयासों में मीडिया पाठ्यक्रमों की उपलब्धता की कोई कमी नही है। मीडिया शिक्षा को लेकर शिक्षा मंत्रालय द्वारा कोई विशेष प्रयास शुरू नही किया गया है। अतः दूसरी वैकल्पिक परिकल्पना रद्द है। हम कह सकते हैं कि शिक्षा मंत्रालय द्वारा मीडिया शिक्षा को लेकर किए गये प्रयास अपर्याप्त हैं। तीसरी वैकल्पिक परिकल्पना रद्द होती है क्योंकि जितने प्रयास हैं उनमें मीडिया शिक्षा से जुड़ी सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

परिणाम : तकनीक शिक्षा को लेकर शिक्षा के प्रत्येक आयाम, विषय, पाठ्यक्रम के प्रति शिक्षा मंत्रालय के विभिन्न प्रयासों ने उत्कृष्ट कार्य किया है। तकनीकी शिक्षण के माध्यम से ही बड़ी आबादी वाले देशों के तमाम बच्चों तक शिक्षा की पहुँच को सार्थक बनाया जा सकता है। इन तकनीक आधारित शिक्षण प्रयासों के समक्ष इंटरनेट की गति, तकनीकी जानकारी का अभाव, अत्यधिक यंत्र लागत जैसी चुनौतियाँ भी हैं।

शोध पत्र में शिक्षा मंत्रालय के 20 सूचना एवं संचार तकनीक आधारित शिक्षण प्रयासों का अध्ययन किया गया है। इस शोध में केवल मीडिया विषय-वस्तु की उपलब्धता को ध्यान में रखा गया है। आगामी शोध में इन पाठ्यक्रमों की संख्या और इनकी विषयवस्तु को भी गुणवत्ता के पैमाने पर मापा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. https://www.isro.gov.in
2. https://www.isro.gov.in/Spacecraft/edusat
3. http://cec.nic.in/cec/Hindi/nmeict
4. http://cec.nic.in/cec/Hindi/nmeict
5. https://hindi.aicte-india.org/education/IT-and-ICT-hi
6. Dogra Deepak, *'Information and Communication Technologies (ICT): Benchmarking E- Government Services to Citizens in India'*, pp 192-199.
7. Mukhopadhyay Marmar, *"Universal Quality School Education and Role of ICT"*, available at www.ciet.nic.in
8. Devi Sharmila, Rizwaan Mohammad, Chander Subhash, *"ICT for Quality of Education in India"* International Journal of Physical and Social Sciences; Volume 2, Issue 6 ISSN: 2249-5894
9. https://www.researchgate.net/publication/286354229
10. https://www.swayam.gov.in
11. https://www.swayamprabha.gov.in
12. https://nmeict.ac.in
13. http://cec.nic.in/cec/
14. https://webcast.gov.in/vyaslive/
15. https://ndl.iitkgp.ac.in
16. https://nptel.ac.in
17. https://baadal.nmeict.in/baadal
18. https://gian.iitkgp.ac.in

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

पारिवारिक एकता के सामाजिक मूलाधार : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. मनीष कुमार मनसुखभाई जनसारी

सूचक शब्द: परिवार, गृह, पारिवारिक एकता, पारस्परिक अंतःक्रिया, अंतःसंबंध, सामाजिक मूलाधार

परिवार मानव समाज की सार्वभौमिक, केन्द्रीय और महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था, समूह एवं समिति है। भारतीय समाज में परिवार एक दूसरे से रक्तसंबंधित विभिन्न गृहों का समूह है जब कि गृह, घर या चूल्हा परिवार के विभिन्न आयामों में से सिर्फ एक आयाम है। कई भारतीय समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधानों में उनके बीच भेद रेखा स्थापित की है, लेकिन परिवार और गृह की अंतःक्रिया का अन्वेषण करने का प्रयास नगण्य हुआ है। इसलिए ऐसी विषयवस्तु को पीएच.डी. अनुसंधान का विषय बनाया, जिसमें मुझे परिवार में सम्मिलित विभिन्न गृहों के बीच रहीं प्रगाढ़ सामाजिक अंतःक्रियाएँ और अंतःसंबंधों एवं पारिवारिक एकता का प्रारूप और सामाजिक कारकों का साक्षात्कार हुआ। पारस्परिक अंतःक्रिया, पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य, संयुक्त संपत्ति, संयुक्त निर्णय प्रक्रिया, पारस्परिक सम्मान और समाधान जैसे सामाजिक मूलाधार पारिवारिक एकता के लिए उत्तरदायी हैं, जिसका विश्लेषण प्रस्तुत शोधपत्र में किया है। नई पीढ़ी में भी इस पारिवारिक एकता की भावना के संदर्भ में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ है और पारिवारिक एकता का आदर्श ग्रामीण समुदाय में प्रचलित है।

भारत एक विशाल, वैविध्यसभर और बहुमुखी प्राचीन राष्ट्र है, जिसका सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास गहन और सदियों पुराना है। भारतीय संस्कृति की विश्व में अपनी भिन्न पहचान है, जो परिवार, नातेदारी, विवाह, जाति प्रथा, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, हिंदूवाद, राजकीय व्यवस्था जैसी परंपरागत सामाजिक संस्थाएँ और घनिष्ठ सामाजिक संबंधों के बीच पनपती रही है जो पूरे भारतवर्ष में सम्पृक्त हो गई एवं निरंतर विकसित हो रही है। भारतीय ग्रामीण समुदाय इस सांस्कृतिक धरोहर तथा सभ्यता का मूल सर्जक और रखवाला रहा है, जिसके फलस्वरुप ग्रामीण समुदाय में सामाजिक संस्थाएँ और सामाजिक संबंधों के भिन्न स्वरुप दृष्टिमान होते हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की निरंतरता का प्रमुख कारण ग्रामीण समुदाय, जाति प्रथा और ग्रामीण परिवार है, जो भारतीय सामाजिक जीवन को नियंत्रित करता है। ग्रामीण परिवार इस संस्कृति को नई पीढ़ी में समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से हस्तांतरित कर के उसकी निरंतरता सुनिश्चित करता है। मानवजीवन का आरंभ परिवार से ही होता है, वो ही मनुष्य को पहचान देता है और मनुष्य की हर क्रिया का केन्द्र बिंदु भी परिवार ही है। इसलिए सभी सामाजिक संस्थाएँ और सामाजिक समूहों से परिवार ही मानव जीवन के प्रारंभ से लेकर अंत तक मानवी को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है।

परिवार की अवधारणा : मानव समाज में परिवार, विवाह, धर्म, अर्थव्यवस्था और राज्य संस्था सार्वभौमिक सामाजिक संस्थाएँ हैं। प्रत्येक युग के सभी समाजों में, आदिम हो या आधुनिक पूर्व का हो या पश्चिम का, उनका अस्तित्व पाया जाता है, क्योंकि वे मानव समाज और मानव जीवन के आधार हैं। संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था इन सभी सामाजिक संस्थाओं के आधार पर पनपी है, जो परस्पर एक दूसरे से अंतःसंबंधित और अन्योन्याश्रित भी हैं। मानव समाज में विद्यमान सामाजिक संस्थाएँ और सामाजिक समूहों में परिवार सबसे ज्यादा प्राचीन तथा टिकाऊ सामाजिक संस्था और सामाजिक समूह है। ऐसा कोई मानव समाज नहीं है जहां परिवार का कोई न कोई स्वरुप देखने को न मिले। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परिवार सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है जो संतानोत्पत्ति से समाज के लिए नवीन सदस्यों की भर्ती करता है, उसका समाजीकरण करके मानव बनाता है एवं सामाजिक जीवन के योग्य बनाकर समाज की निरंतरता को बनाए रखता है।

सामाजिक संस्था के रुप में परिवार को परिभाषित करते हुए रोबर्ट बीरस्टीड ने लिखा है कि, ''परिवार बच्चों के प्रजनन एवं पालन-पोषण की मानकीकृत, औपचारिक और नियमबद्ध कार्य प्रणालिका है।''[1]

❑ सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, श्री भीखाभाई पटेल आर्ट्स कॉलेज, आनंद (गुजरात)

सामाजिक समूह के रुप में परिवार का अर्थ स्पष्ट करते हुए मेकाइवर और पेज ने लिखा है कि, "परिवार एक ऐसा समूह है जो सुनिश्चित और स्थायी यौन-संबंधों द्वारा परिभाषित किया जाता है, जों बच्चों के प्रजनन एवं पालन-पोषण के लिए अवसर प्रदान करता है। इसमें सगोत्री अथवा गौण संबंध भी हो सकते हैं, लेकिन इसका निर्माण पति-पत्नी के एक साथ रहने और बच्चों के साथ मिलकर एक विशिष्ट इकाई बनने से होता है।"[2]

सामाजिक समिति के रुप में परिवार को परिभाषित करते हुए डेविड मेंन्डलबोम ने लिखा है कि, "परिवार सहकारी समूह है, जिनके सदस्य अपने अपेक्षित उद्देश्यों को परिपूर्ण करने के लिए कार्य करते हैं। आमतौर पर वे एक ही घर में रहते हैं और एक ही रसोईघर में तैयार भोजन खाते हैं वे एक साथ काम करते हैं, आय, व्यय और संपत्ति में हिस्सेदार हैं, एवं एक परिवार के रूप में धार्मिक अनुष्ठान करते हैं।"[3]

"**सामान्यतया** अंग्रेजी बोल-चाल के साथ-साथ समाजशास्त्र में परिवार शब्द का प्रयोग एक गृह के साथ-साथ एक व्यापक नातेदारी इकाई के रूप में किया जाता है, जिसके सदस्य एक से अधिक गृहों में रहते हों।"[4] ये सभी गृह सिर्फ रक्तसंबंध से ही एक दूसरे से जुड़े नहीं हैं, लेकिन गृह विभाजन बाद भी पारस्परिक सामाजिक संबंध से बंधे रहते हैं। वो पारस्परिक अपेक्षाएँ तथा कर्तव्यों की पूर्ति करते हैं और भिन्न आवासों में निवास करने के बावजूद भी एकजुट रहते हैं। अतः भारतीय समाज में परिवार एवं गृह के बीच स्पष्टतः भेद है और उनके बीच विभिन्न प्रारूप की सामाजिक अंतःक्रियाएँ निरंतर पनपती रहती हैं। इसलिए परिवार को अंतःक्रियात्मक परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है, क्योंकि भारतीय समाज में परिवार एक अंतःक्रियात्मक व्यवस्था है। आई.पी.देसाई ने लिखा है कि, "मूल रूप से परिवार एक दूसरे से अंतःक्रिया करते स्वजनों का समूह है।"[5] इसलिए विदेशी समाजशास्त्रियों की परिवार की परिभाषा भारतीय परिवार को समझने के लिए अपर्याप्त है।

भारतीय समाज में परिवार को समझने के लिए टी.एन. मदन का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। उनके मतानुसार, "एक पंडित का गृह सामान्यतया गाँव में अलगता से जीवन व्यतीत नहीं करता। ज्यादातर मामलों में, जन्म के सदस्यों को उसी गाँव में अन्य गृहों में निवास करते पितृवंशीय स्वजन होते हैं। ऐसे सब सपिंडी संबंधियों के गृह कोटम्ब (Kotamb जो संस्कृत साहित्य के Kutumba से व्युत्पन्न हुआ है, जिनका अर्थ Family या Household होता है) गठित करते हैं, जिसके लिए हिंदी में परिवार शब्द प्रयोग होता है। कोटम्ब स्वजनों के छोटे समूह की तुलना में विशाल समूह है और सामान्यतः चूल्हाओं का समूहीकरण है। जब घटक गृह दो गृहों में बंट जाता है तब हर नया चूल्हा उसमें जुड़ जाता है।[6] पूरे उत्तर भारत में कुटुंब परिवार, कुटुंब और खानदान से पहचाना जाता है जो सपिंडी पुरुषों, उनकी पत्नियों, अविवाहित बहनों और अविवाहित बेटियों के गृहों का समूहीकरण है। हिंदू परिवार आम तौर पर विभिन्न चार कक्षाओं पर क्रिया करता है, (1) एक गृह के रुप में, (2) मिलकत समूह रचते गृहों के एक समूह के रुप में, (3) सहवारिसों को समाविष्ट करते गृहों का एक विशाल समूह, जो स्वतंत्र और अनिवार्य विधि विधान के उद्देश्य से संलग्न है और (4) वंश की दृष्टि से संबधित बिखरे हुए सभी पारिवारिक समूहों के रुप में। केवल गृह, जिसे अक्सर उत्तर भारत में चूल्हा-समूह के रुप में नामित किया जाता है (चूल्हा या चुल्ला), जो सहभोजी समूह के रुप में उभरता है।"[7]

"ये चारों पक्ष सूचित चार सामाजिक इकाईयाँ आमतौर पर एक दूसरे से संबंधित होती हैं, लेकिन समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए उन्हें स्पष्ट रूप से एक दूसरे से अलग करना चाहिए। The Development Cycle in Domestic Groups Groups (Goode) 1958 के प्रकाशन बाद से गृह और परिवार के बीच की भेद रेखा समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र में आम हो गई है। अधिक स्पष्टता के लिए, गृह परिवार के कई आयामों में से एक है और इसे अन्य आयामों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।[8] हाँलाकि, पूर्ण अर्थ से गृह एक अलग इकाई नहीं है। यह परिवार और विवाह एवं नातेदारी की अन्य संरचनाओं से प्रगाढ़ रुप से संबंधित है। वास्तव में दोनों के बीच संबंध स्थापित करने के लिए भारत में परिवार और गृह के बीच भेद करने का प्रयास हुआ है। जब तक माता-पिता जीवित होते हैं,तब तक, पृथक गृह, गांव और जाति के कई सामाजिक मामलों में एक स्वतंत्र पारिवारिक इकाई की स्थिति को अधिग्रहण नहीं कर सकता। इसे चूल्हा या गृह (घरेलू इकाई) माना जाता है, न कि कुटुम्ब (परिवार इकाई), और इसे मूल परिवार के हिस्से के रुप में माना जाता है।"[9]

चूल्हा, घर या गृह (household) एक दूसरे की समानार्थी

अवधारणाएँ है। टी.एन.मदन ने स्पष्ट किया है कि, "गृह एक मकान का अस्तित्व सूचित करता है और पंडित इस अवधारणा का उपयोग घर और मकान दोनों को सूचित करने के लिए करते हैं।"[10] गृह की परिभाषा स्पष्ट करते हुए पेट्रिशिया उबेरोई ने लिखा है कि, "गृह सहआवास और सहभोजी समूह है। ये अनिवार्य नहीं है कि वो सह-स्वामित्व धारक हो। गृह उत्पादन, प्रजनन और प्राथमिक समाजीकरण का प्रकार्य करता समूह है।"[11]

उपर्युक्त परिभाषाएँ भारतीय परिवार को पूर्णतया स्पष्ट करती हैं और वे परिवार तथा गृह के बीच भिन्नता स्पष्ट करती हैं। परिवार (family) एक दूसरे से रक्त संबंधित विभिन्न गृहों का समूह है जबकि गृह, घर या चूल्हा (household) परिवार के विभिन्न आयामों में से सिर्फ एक आयाम है। वास्तव में भारतीय समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधानों में गृह को अध्ययन की एक इकाई बनाया है। कई समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधानों में गृह और परिवार के बीच भेद करने का प्रयास किया है, लेकिन भारत में परिवार और गृह की अंतःक्रिया का अन्वेषण करने का प्रयास बहुत कम हुआ है।

साहित्य समीक्षा : गिरीराज गुप्ता के अनुसार, "भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ हमें लगभग सभी प्रकार की पारिवारिक व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं। अर्थात् भारतीय समाज में पितृवंशी परिवार प्रथा की सार्वभौमिकता से लेकर कुछ मात्रा में वैविध्यता वाले मातृवंशी परिवार भी पाये जाते हैं। भारतीय महाद्वीप में जाति प्रथा के बाद सब से जिज्ञासाप्रद प्रथा इसकी परिवार व्यवस्था है।"[12] परिवार सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्य है, इसलिए भारत सहित सभी राष्ट्रों में समाजशास्त्रीय अध्ययन में परिवार केन्द्रीय विषय वस्तु रहा है।

ए.एम.शाह के अनुसार, "भारतीय परिवार के समाजशास्त्रीय अध्ययनों का उन्नीसवीं सदी के मध्य से लेकर 1930 तक के प्रथम चरण ऐतिहासिक और कानूनी जानकारियों पर आधारित तथा इंडोलॉजिकल-कानूनी परिप्रेक्ष्य से प्रभावी था। दूसरा चरण आधुनिक समाजशास्त्र की या सामाजिक मानवशास्त्र की शिक्षा लिए हुए विद्वानों के प्रदान का है और उसमें भारतीय परिवार के वास्तववादी दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया है। दूसरे चरण के पारिवारिक अध्ययनों को दो कोटि में विभाजित कर सकते हैं - (1) इंडोलॉजिस्ट द्वारा हुए प्रशिष्ट स्त्रोतों पर आधारित अनुसंधान सर्वप्रथम प्रकाशित हुए और 1950 तक प्रभावी रहें। घुर्ये (1923,1946), करनदीकर (1929), कर्वे के प्रारंभिक लेख तथा अध्ययन (1938-1939 और अन्य), प्रभु (1940), कापडिया (1947,1955) इत्यादि के अनुसंधानों इस कोटि में समाविष्ट होते हैं।[13] (2) अनुभवजन्य या क्षेत्रीय जाँच पर आधारित सर्वप्रथम प्रकाशन के.टी.मर्चेंट का (1935) है। कर्वे (1940,1941) और श्रीनिवास के (1942) अनुसंधान लोकसाहित्य और अन्य साहित्य सहित मानवजातिवृत्त तथ्य पर आधारित हैं।[14] 1940 के दशक में व्यावसायिक समाजशास्त्रियों द्वारा भारतीय परिवार के दो प्रकाशन प्रकाशित हुए हैं, किंग्स्ले डेविस (1942) और डेविड मेंन्डलबोम (1948)।[15] 1950 से 1960 के दशक में भारतीय परिवार पर ज्यादा मात्रा में अनुभवजन्य अध्ययन हुए और इनके द्वारा सैद्धांतिक सर्जन भी हुआ। अग्रवाल (1955), कपूर (1965), गोरे (1968), देसाई (1964), मदन (1965), मेयर (1960), रोस (1969), सिंगर (1968), श्रीनिवास (1965) इत्यादि। भारतीय परिवार के इन अनुसंधानों में परिवार और गृह के बीच भिन्नता की स्वीकृति महत्वपूर्ण सिद्धि है और इस समय सीमा के दौरान गृह का वर्णन प्रभावी रहा।"[16]

कुंतेश गुप्ता के अनुसार, 1955 से भारतीय परिवार के अनुसंधानों की महत्वपूर्ण विशेषता निश्चित प्रदेश में विभिन्न पारिवारिक प्रतिरूपों की पहचान है। कई विद्वानों ने सिर्फ परंपरागत संयुक्त परिवार के आकार और रचना के अध्ययन पर और पश्चिमी एकल परिवार से तुलना पर ध्यान केन्द्रित किया है।[17] कुछ अन्वेषकों ने अपने अनुसंधान में पारिवारिक संरचना में परिवर्तन खोजने पर ध्यान केन्द्रित किया हैं। बहुत सारे शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में गृह की रचना को अपने शोध में एक आयाम के रुप में जाँचा है। कुछ शोधकर्ताओं ने परिवार के सदस्यों या संबंधियों के बीच अंतःवैयक्तिक संबंधों की जाँच-पडताल की है।[18] अन्य कुछ अन्वेषकों ने नगरीकरण के फलस्वरुप परिवार के सदस्यों की अंतःक्रियात्मक प्रक्रियाओं की जाँच की है, जबकि अन्यों ने अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया द्वारा ग्रामीण और नगरीय पारिवारिक प्रणाली का विश्लेषण किया है।[19] भारत में पारिवारिक समाजशास्त्रियों ने गृहों की संयुक्तता पर भी पर्याप्त ध्यान केन्द्रित किया है।[20] हॉलाकि भारत में पारिवारिक अध्ययन में विकास प्रक्रिया की जाँच करने का प्रयास बहुत कम हुआ है।[21] भारत में बहुत सारे विद्वानों ने देश के विभिन्न क्षेत्रों के हिंदू परिवारों के सामाजिक और आर्थिक जीवन का

विवरण दिया है, जबकि कुछ शोधकर्ताओं ने पारिवारिक संरचना में क्षेत्रीय अंतर और उससे होने वाली समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया है।"[22]

शालिनी भारत के अनुसार, "पश्चिमी समाज में पारिवारिक अनुसंधानों ने जाँच का भिन्न क्षेत्र स्थापित किया है, जबकि भारत के समाज विज्ञानों में उसकी स्पष्ट पहचान का अभाव देखने मिलता है। इसका प्रमुख कारण पारिवारिक अनुसंधान बहुत सारी शाखाओं में विभाजित हो गया है और कहीं पर भी वह अन्वेषण का प्रमुख केंद्र नहीं है। निःसंदेह 1960 के दशक तक भारतीय परिवार के अनुसंधानों ने समाजशास्त्र में केंद्रीय महत्ता प्राप्त की थी लेकिन 1970 के दशक बाद वो समाजशास्त्र के प्रमुख प्रवाह मे सीमांत हो गया। फिर भी मनोविज्ञान, जनसांख्यिकी, मनोरोगशास्त्र और सामाजिक कार्य जैसी प्रशाखाओं के विभिन्न शोध विषयों में एक विषय के रूप में परिवार अन्वेषण का विषय बना रहा, लेकिन ऐसे दृष्टिकोण से हुए अनुसंधानों को पारिवारिक अनुसंधान नहीं कहा जा सकता।"[23] तुलसी पटेल के अनुसार, "बीसवीं सदी के 50 से 70 के दशकों की तुलना मे बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में पारिवारिक अनुसंधानों पर बहुत कम ध्यान केन्द्रित किया गया है।"[24]

प्रस्तुत शोध पत्र मेरे पीएच.डी. शोधप्रबंध, 'ग्रामीण समुदाय की निम्न जातियों में पारिवारिक जीवन सातत्य और परिवर्तन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' पर आधारित है जिसमें परिवार और गृह के बीच की अंतःक्रिया को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इसमें गृह का प्रारूप, प्रकार, पारिवारिक विभाजन और उससे परिणामित विभिन्न गृहों के मध्य पाए जाने वाली अंतःक्रिया का अन्वेषण किया है। इसमें दैनिक पारस्परिक अंतःक्रियाओं का प्रारूप, पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य पालन, सामाजिक-धार्मिक विधिविधान अंतर्गत अंतःसंबंध, पारस्परिक अधिकार और संघर्ष, निर्णय प्रक्रिया और पारिवारिक संकट तथा इन सब तथ्यों में परिवारजनों की भूमिका की खोज प्रमुख रही है। ऐसी विषयवस्तु की शोध मदन (1965), देसाई (1964), शाह (1973), रोस (1961), रामु (1977) जैसे बहुत कम विद्वानों ने की है।

अनुसंधान विधि : प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य पारिवारिक एकता के सामाजिक मूलाधारों की खोज और उनका समुचित विश्लेषण करना है। प्रस्तुत अनुसंधान निदर्श सर्वेक्षण प्रविधि से किया गया है और विवरणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का अनुसरण किया गया है। अध्ययन में अहमदाबाद जिले की सानंद तहसील के गोरज, कुंवार और मखियाव गावों में स्थित कुल 21 निम्न जातियों के पारिवारिक जीवन का अध्ययन किया गया था। क्षेत्रकार्य हेतु गोरज गाँव की 16 निम्न जातियों के 598 गृहों, कुंवार गाँव की 16 निम्न जातियों के 401 गृहों, और मखियाव गाँव की 20 निम्न जातियों के 410 गृहों को निदर्श में सम्मिलित किया गया। इस तरह 1403 गृहों में से स्तरित यादृच्छ निदर्शन प्रविधि से कुल 302 गृहों को निदर्श के रुप में सम्मिलित किया गया था। निदर्श के चुनाव में जाति को एकम बनाया गया और हर एक गाँव की प्रत्येक जाति के निदर्श में सम्मिलित समस्त गृहों में से, प्रत्येक पांच गृहों में से एक गृह को उनके अनुपात अनुसार निदर्श के रूप में चयन किया गया था। जिस गाँव में किसी जाति के पांच से कम गृह थे वहाँ भी उस जाति के कम से कम एक गृह को निदर्श में सम्मिलित किया गया था। इस तरह प्रत्येक गाँव की हर एक जाति के गृहों का अनुपात निदर्श में भी बनाए रखा गया।

प्रस्तुत अनुसंधान में अध्ययन इकाई गृह था और उत्तरदाता के रुप में निदर्श में सम्मिलित किए गये गृह के मुखिया थे। गृह के मुखिया से अनुसंधान उद्देश्यों से संबंधित प्राथमिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए निर्देशित साक्षात्कार प्रविधि का आश्रय लिया गया था और साक्षात्कार के लिए अनुसूचि की रचना की गई जो 8 भागों मे विभाजित थीं। एकत्रित प्राथमिक तथ्यों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया गया, जिनके आधार पर कुछ निष्कर्ष सामने आये।

पारिवारिक एकता के सामाजिक मूलाधार : भारतीय समाज में परिवार (family) और गृह के (household) बीच स्पष्टतः भिन्नता है, जो हर भारतीय के मानसपट में चित्रित है और व्यवहार में सभी लोग इनका भेद समझते हैं। "परिवार और गृह के बीच स्पष्टतः भेद है। भारत में परिवार विषयक ज्यादातर विचार विमर्श, भले ही वह इसकी संरचना के बारे में हो या इसके प्रभावी कारकों के बारे में हो, यथार्थ में गृह संबंधित है। परिवार नहीं, बल्कि गृह प्रकार्यात्मक दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण समूह है और संरचनाकीय दृष्टि से गृह परिवार के समान या उससे भिन्न हो सकता है।"[25] जब किसी गृह के मुखिया के कोई भी रक्तसंबंधी नहीं होता तो परिवार और गृह दोनों एक

समान हो जाते हैं, लेकिन ऐसे अवसर अपवाद रुप होते हैं। गृह स्वतः विकास प्रक्रिया के दौरान संयुक्तता और विभक्तता के बीच अनेक आयामों से गुजरता हैं जिनका विश्लेषण अनेक समाजशास्त्रियों ने किया है, जबकि परिवार गृह विभाजन के बाद निर्मित विभिन्न गृहों के समूहीकरण का निर्देश करता है।

पीएच.डी. शोध में भारतीय समाज की सर्वसामान्य गृह विभाजन की प्रक्रिया की भी खोज की है, जिनके कारकों में अभी कोई परिवर्तन देखने को नहीं मिला हैं। गृह का कद बढ़ना, गृह के विभिन्न सदस्यों के बीच क्लेश-कलह, जिम्मेदारी पूर्ण हो जाने से, गृह के मुखिया का अवसान, छोटे भाई की शादी, घरेलू श्रमविभाजन के विवाद, जिम्मेदारी से सभान होना, स्वतंत्र होने की इच्छा जैसे कारक गृह विभाजन के लिए प्रमुख रहे हैं। एक गृह के विभाजन के बाद गृह के कुछ सदस्य अपना अलग आवास निर्मित करते हैं या गृह के मुखिया उनको अलग आवास प्रदान करते हैं। गृह विभाजन के दौरान संपत्ति का भी विभाजन हो जाये, यह आवश्यक नहीं। यह बात परिवार के मुखिया पर निर्भर रहती है। गृह विभाजन के बाद माता-पिता, भाईयों, पुत्रों, दादा, पितराइयों, चाचा, भतीजे जैसे रक्तसंबंधियों के सभी गृह मिलकर एक परिवार निर्मित करते हैं और वे अपने सबसे बुजुर्ग के गृह को बड़ा/मूल गृह से संबोधित करते हैं।

तालिका संख्या 1

परिवार में सम्मिलित गृहों की संख्या

गृहों की संख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1-5	104	34.44
6-10	118	39.08
11-15	45	14.90
16-20	13	4.30
21-25	09	2.98
26 से ज्यादा	13	4.30
योग	302	100.00

प्रस्तुत अध्ययन के उत्तरदाता तीन पीढ़ी के रक्तसंबंधियों के गृहों को अपने परिवार में सम्मिलित करते हैं और अन्य रक्तसंबंधी उनके लिए वंशज बनते हैं। एक परिवार एक गृह से (जब कोई गृह के मुखिया को कोई भी रक्तसंबंधी नहीं होता तब) लेकर 49 गृहों तक मुझे अपने शोध में देखने मिला, हाँलाकि परिवारों में सम्मिलित गृहों का औसत 9.20 गृह ज्ञात हुआ। उपर्युक्त तालिका निर्दिष्ट करती है कि सर्वाधिक उत्तरादाताओं (39.08 प्रतिशत) के परिवारों में 6 से 10 गृह सम्मिलित हैं। दूसरे स्थान पर (34.44 प्रतिशत) परिवार 1 से 5 गृहों वाले वर्ग के अंतर्गत आते हैं। अतः इन गृहों के परिवार औसत गृह से कम गृहों से बने है जबकि शेष गृहों के परिवार में 11 से लेकर 49 गृह सम्मिलित हैं। ये भी महत्वपूर्ण है कि अधिकांश रक्तसंबंधी (84 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के गाँव में ही बसे हुए है। इसलिए इन परिवारों और उनमें सम्मिलित विभिन्न गृहों के बीच की अंतःक्रियाएँ और अंतःसंबंधों की वारंवारता और सातत्यता बनी रहती है।

परिवार विभिन्न गृहों की अंतःक्रियात्मक संरचना है, जिसके ज्यादातर सदस्य एक दूसरे से सतत अंतःक्रिया और अंतःसंबंध बनाये रखते हैं। एक गृह के विभाजन बाद रक्तसंबंधियों के सिर्फ आवास भिन्न होते हैं। तथ्य यह है कि गृह विभाजन सामाजिक संबंधों का अंत सूचित नहीं करता, क्योंकि अवलोकन में यह ज्ञात हुआ कि अधिकतर गृहों में (75.75 प्रतिशत) विभाजन सुखद और पारस्परिक सहमति से हुआ है। कुछ गृहों में विभाजन पर, विशेष रुप से संपत्ति विभाजन के दौरान विभिन्न सदस्यों के बीच क्लेश-कलह हुआ हो, तब ऐसे कुछ सदस्य परिवार के अन्य गृहों के साथ संबंधों का अंत कर देते हैं। फिर भी इस परिस्थिति में उनके परिवार में सम्मिलित अन्य गृहों के बीच संबंध कायम बने रहते हैं, क्योंकि लक्ष्य पारिवारिक एकता है। एकता और वैविध्य भारतीय समाज और संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है और यह अनेकों स्वरुपों में प्रत्यक्ष रुप से दिखाई देती है। सत्य यह है कि भारतीय समाज में कुछ सामाजिक कारक अस्तित्व में हैं जिनसे परिवार में सभी गृहों के अंतःसंबंधों को आजीवन बनाए रखने में सहायता मिलती हैं और वे पारिवारिक एकता को सुद्रढ़ करते हैं।

पारस्परिक अंतःक्रिया : अंतःक्रिया सामाजिक संबंधों का आधार है और पुनरावर्तित अंतःक्रिया सामाजिक संबंधों को दृढ़ और घनिष्ठ बनाती है। शोध के दौरान ये सामान्य प्रतिरुप का अवलोकन किया गया, जहां गृह विभाजन के बाद पृथक होने वाले माता-पिता, भाइयों, पुत्रों, दादा, पितराइयों, चाचा, भतीजे, जैसे सभी या कोई एकल रक्तसंबंधी, यथा संभव हो तब तक अपने मूल गृह के आसपास अपने नए आवास निर्मित करते हैं या तो गृह के मुखिया अपने कोई रक्तसंबंधी को अपने गृह के निकट कोई आवास में निवास के लिए भेजते हैं। इसलिए

अधिकांश उत्तरदाताओं के (74.50 प्रतिशत) पड़ोसी रक्तसंबंधी (परिवारजन या वंशज) ही हैं और अन्य कुछ मामलों में (12.25 प्रतिशत) जाति सदस्य हैं। ऐसी आवासीय रचना के फलस्वरुप मूल गृह से पृथक हुए सभी रक्तसंबंधियों से निर्मित एक परिवार के सदस्यों के बीच सरलता से अंतःक्रिया का पुनरावर्तन होता रहता है, जिससे सामाजिक संबंध दृढ़ और घनिष्ठ होने की संभावनाएँ बढ़ती हैं। अवलोकन में ये तथ्य भी ज्ञात हुआ कि एक दूसरे के निकट आवास बनाने से सभी रक्तसंबंधियों के बीच सहकार के साथ-साथ कुछ मात्रा में संघर्ष के उत्पन्न होने की संभावनाएँ भी बढ़ती हैं, फिर भी उनके बीच के अंतःसंबंधों में सहकार प्रमुख है। वे एकदूसरे के पड़ोसी भी हैं इसलिए बड़े-बुजुर्गों, महिलाएँ, समवयस्कों और बच्चों को एक दूसरे से बातचीत और आनेजाने के अवसर मिलते हैं। अधिकांश उत्तरदाताओं ने (81.46 प्रतिशत) स्वीकार किया कि उनके सबसे ज्यादा संपर्क स्वजनों और जाति सदस्यों के साथ ही हैं। परिवार के विभिन्न गृहों के समवयस्क में से कम से कम एक सदस्य उनके दोस्त होते हैं, ऐसा आधे उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया था। परिवार के विभिन्न गृहों के बच्चे एक दूसरे के साथ खेलते हैं, बड़े-बुजुर्गों और महिलाएँ साथ समय व्यतीत करते हैं या साथ घरेलू कार्य करते हैं। साथ-साथ अधिकांश उत्तरदाताओं ने (84.85 प्रतिशत) स्वीकार किया की परिवार के विभिन्न घरों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान भी होता रहता हैं। ऐसी आपसी अंतःक्रियाएँ परिवार के विभिन्न गृहों के बीच सहकारपूर्ण सामाजिक संबंधों को पनपाती हैं और प्रगाढ़ ऐक्य का सर्जन करती हैं, जिसमे संघर्ष की संभावनाये नगण्य होती हैं।

पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य : पारस्परिक निकटता, आपसी अंतःक्रिया और सहकारपूर्ण सामाजिक संबंधों के कारण एक दूसरे के बीच पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य पालन की भावना पनपती है। गृह विभाजन और संपत्ति विभाजन के बाद भी विभिन्न रक्तसंबंधियों और अन्य स्वजनों के गृहों के बीच आपसी अपेक्षाएँ और कर्तव्य के पालन पर जोर दिया जाता है। अध्ययन के समस्त उत्तरादाताओं से विभिन्न 7 अपेक्षाओं एवं कर्तव्यों के बारे में पूछा गया था जो तालिका 2 में प्रदर्शित है।

तालिका संख्या 2
पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य

पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक-धार्मिक अवसरों पर उपस्थित रहना	299	15.72
विभिन्न अवसरों पर सलाह या सुझाव देना	272	14.30
विभिन्न अवसरों पर प्रासंगिक मदद करना	269	14.14
पारिवारिक संकट में आर्थिक मदद करना	253	13.30
बीमारी के समय पर खबर अतर पूछने जाना	215	11.30
पारिवारिक संघर्ष में समाधान करवाना	208	10.93
व्यावसायिक मदद करना	186	09.77
रक्तसंबंधियों की सामाजिक जिम्मेदारी निभाना	136	07.15
स्वजनों को गृह में आश्रय देना	64	03.6
बहुविकल्पी सारणी	1902	100.00

उपर्युक्त तालिका निर्दिष्ट करती है की सामाजिक-धार्मिक अवसरों पर उपस्थित रहना, विभिन्न अवसरों पर सलाह-सुझाव देना या सामूहिक निर्णय प्रक्रिया में सुजाव देना, विभिन्न अवसरों पर प्रासंगिक मदद करना, पारिवारिक संकट में आर्थिक मदद करना, बीमारी के समय पर खबर अतर पूछने जाना, पारिवारिक संघर्ष में समाधान करवाना, व्यावसायिक मदद करना, रक्तसंबंधियों की सामाजिक जिम्मेदारी निभाना, स्वजनों को गृह में आश्रय देना जैसी प्रमुख पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्यों का पालन करना अध्ययन में देखा गया है। इसके अलावा कुछ उत्तरदाता अपने स्वजनों से अपेक्षाएँ रखते हैं कि वे अपनी संतानों की पढ़ाई में मदद करें, उनकी नौकरी के लिए प्रयास करें और उनको मकान या भूमि दें। ये आपसी अपेक्षाएँ और कर्तव्य पालन, वे ज्यादा से ज्यादा तीन पीढ़ियों के स्वजनों के प्रति ही निभाते हैं। फिर भी इसकी प्रबलता विभिन्न रक्तसंबंधियों के गृहों के बीच ही ज्यादा देखी गई। पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य पालन पुरानी पीढ़ी की तरह नई पीढ़ी में भी प्रबल रुप से दृष्टिगोचर होती हैं और इसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अपेक्षाएँ और कर्तव्य का पालन पारस्परिक होता है

और हर स्वजन के प्रति प्रत्येक सदस्य समान मात्रा में अपेक्षा भी नहीं रखता और कर्तव्य पालन भी नहीं करता। ऐसी पारस्परिक अपेक्षाएँ और कर्तव्य पालन करने से उनके बीच सामाजिक संबंध प्रगाढ़ होते हैं, या सामाजिक संबंध प्रगाढ़ होने के कारण आपसी अपेक्षाएँ और कर्तव्य का पालन करते हैं जिससे सामाजिक एकता बनी रहती है।

संयुक्त संपत्ति : भारतीय ग्रामीण समुदाय में संपत्ति और आय स्वयं संयुक्तता का मानक है। चल और अचल संपत्ति का स्वामित्व सिर्फ मनुष्य को पद, प्रतिष्ठा और सुखाकारी ही अर्पित नहीं करता, बल्कि पारिवारिक एकता का भी सर्जन करता है। गृह विभाजन के साथ संपत्ति विभाजन भी हो जाये ये अनिवार्य नहीं, यहाँ विभिन्न परिस्थितियों का अवलोकन किया गया हैं। गृह के मुखिया के अवसान के बाद या आपसी सहमति की परिस्थिति में गृह विभाजन के साथ ही सभी सहवारसों के बीच परिवार की सभी चल और अचल संपत्ति का बँटवारा हो जाता है। जब गृह के मुखिया के जीवनकाल में ही गृह विभाजन होता है, तब ज्यादातर प्रसंगों में कुछ संपत्ति गृह के मुखिया के पास संयुक्त रहती है और कुछ संपत्ति का विभाजन होता है या एक या अन्य सदस्य को सिर्फ अलग आवास के साथ संपत्ति में से कुछ हिस्सा मिलता है और शेष संपत्ति का विभाजन परिवार के मुखिया के अवसान बाद होता है। परिवार के मुखिया के अवसान के बाद या उनके जीवनकाल में ही गृह विभाजन के साथ उनके सहवारिसों के भिन्न आवास निर्मित होते हैं लेकिन सभी सहवारिस चल और अचल संपत्ति को संयुक्त रखने के लिए सहमत होते हैं। प्रस्तुत शोध में गृह विभाजन के बावजूद गृहों में (35.76 प्रतिशत) पिता और पुत्रों के बीच या भाइयों के बीच संपत्ति की, विशेषतः भूमि की, संयुक्तता पाई गई। अतः चल और अचल संपत्ति की संयुक्तता परिवार के सदस्यों के बीच उच्चतम मात्रा की संयुक्तता का या पारिवारिक एकता का सृजन करती है। ऐसे परिवार को कई समाजशास्त्रियों ने संयुक्त परिवार से निर्देशित किया है।

संपत्ति की संयुक्तता के फलस्वरुप परिवार में सम्मिलित माता-पिता, भाइयों, पुत्रों या पितराइयों के गृहों के बीच हमेंशा के लिए प्रगाढ़ सामाजिक संबंध बने रहते हैं। इन सभी सदस्यों भिन्न आवासों में निवास करते हुए भी वे साथ मिलकर व्यावसायिक कार्य करते हैं और आय भी परिवार के मुखिया के पास रहती है, जिनमें से हर गृह को आवश्यकता के अनुसार हिस्सा दिया जाता है या ऐसे गृहों की सभी जिम्मेदारियाँ परिवार का मुखिया ही पूर्ण करता है। जब गृह विभाजन के साथ ही परिवार की सभी चल और अचल संपत्ति का बँटवारा होता है, तब भी विभिन्न गृहों के बीच प्रगाढ़ सामाजिक संबंध बने रहते हैं क्योंकि ज्यादातर मामलों मे संपत्ति का बँटवारा सभी सहवारिसों की सम्मति से ही होता है। साथ-साथ गृह के मुखिया सभी सह्वारिसों के बीच समान हिस्से में अपनी संपत्ति का बंटवारा करने का प्रयास करते हैं। इसलिए संपत्ति विभाजन के दौरान सह्वारिसों के बीच मनमुटाव, क्लेश-कलह या संघर्ष की संभावनाए न्यूनतम रहती हैं और ऐसे सिर्फ 15 मामलें अध्ययन में पाए गए। जब संपत्ति विभाजन के दौरान माता-पिता और पुत्रों के बीच, भाइयों या पितराइयों के बीच मनमुटाव, क्लेश-कलह या संघर्ष होता हैं तब परिवार में भी दरार हो जाती हैं और ऐसे नाराज सहवारिस अन्य सहवारिसों के साथ सामाजिक संबंध का अंत लाते हैं, जबकि अन्य सहवारिसों के गृहों के बीच प्रगाढ़ सामाजिक संबंध और सामाजिक एकता बनी रहती है। यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन में ऐसी परिस्थितियाँ बहुत कम देखने को मिली है, जो अभी भी ग्रामीण समुदाय में पारिवारिक एकता के आदर्श के प्रचलन की पुष्टि करती हैं।

संयुक्त निर्णय प्रक्रिया : गृह विभाजन के फलस्वरुप एक गृह एक साथ या क्रमशः विभिन्न गृहों में विभाजित हो जाते हैं, जो संयुक्त से लेकर एकाकी गृहों के विभिन्न स्वरुप धारण करते हैं और एक परिवार बनाते हैं। एक गृह से पृथक हुए हर गृहों में गृह का बुजुर्ग सदस्य मुखिया के तौर पर अपने नवनिर्मित गृह का संचालन करता है और वह गृहस्थ जीवन संबंधित प्रसंगों में अकेले या अपने गृह के अन्य सदस्यों (पत्नी, पुत्रों, भाई या पिता) के साथ विचारविमर्श करके निर्णय करता है। वह गृहस्थ जीवन संबंधित कुछ फैसले लेने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन अनेक मामलों में परिवार में सम्मिलित सभी गृहों के मुखिया के साथ विचारविमर्श किए बिना, वह अपनी मनमानी से फैसला नहीं ले सकता। अध्ययन के अधिकतर उत्तरदाताओं (94.04 प्रतिशत), 28 गृहों के मुखिया ने कोई निर्णय लेने से पूर्व अपने परिवार में सम्मिलित गृहों के मुखिया के साथ विचार विमर्श किया है। इन उत्तरदाताओं ने एक से अधिक अवसर पर मुखिया के साथ विचार

विमर्श किया है। इसलिए उनसे मिले कुल 640 प्रत्युतर तालिका 3 से स्पष्ट होंगे।

तालिका संख्या 3

संयुक्त निर्णय प्रक्रिया के अवसर

संयुक्त निर्णय प्रक्रिया के अवसर	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक-धार्मिक अवसर पर	219	34.21
सामाजिक व्यवहार संबंधित फैसले	95	14.84
स्वजनों के साथ फैसले	94	14.08
महत्वपूर्ण या प्रसंगोचित खरीदी पर	86	13.43
व्यवसाय और भूमि संबंधित फैसले	55	08.59
स्वजनों के साथ समाधान के फैसले	40	06.25
संतानों के गृहस्थ जीवन संबंधित फैसले	32	05.00
अन्य	19	02.96
योग	640	100.00

अवलोकन यह है कि सामाजिक-धार्मिक अवसर पर, सामाजिक व्यवहार संबंधित फैसले, अन्य स्वजनों के साथ सामाजिक संबंध संबंधित फैसले, महत्वपूर्ण या प्रसंगोचित खरीदी पर, व्यवसाय और भूमि संबंधित फैसले, स्वजनों के साथ समाधान के बारे में फैसले और संतानों के गृहस्थ जीवन संबंधित फैसले करने से पूर्व गृह के मुखिया ने परिवार में सम्मिलित सभी गृहों के मुखिया के साथ विचारविमर्श करने के बाद कोई फैसला किया है। ऐसे अवसरों पर परिवार में सम्मिलित सभी गृहों के मुखिया मूल घर पर मिलते हैं और विचारविमर्श करते हैं तथा कोई सर्वमान्य निर्णय लेते हैं, जो सभी गृहों के मुखिया को मान्य होते हैं। अगर ये फैसले पर सब सर्वसंमत न हो तब ये मुखिया अपना निर्णय भी बदल देता है। जब गृह विभाजन या संपत्ति विभाजन के दौरान किसी सदस्य का मनदुःखी या क्लेश-कलह होता है, तब ऐसे सदस्य परिवार के अन्य गृहों के सदस्यों से सामाजिक संबंध का अंत करते हैं और ऐसी संयुक्त निर्णय प्रक्रिया में सहभागी नहीं होते। फिर भी उस परिवार के अन्य गृहों के बीच निर्णय प्रक्रिया संयुक्त रहती है तथा सामूहिक निर्णय का सब आदर करते हैं।

स्त्रियों से संबंधित अवसर जैसे कि, शादी-ब्याह का खर्चा पुत्री के ससुराल जाना हो या विभिन्न अवसरों पर संबंधित सामाजिक व्यवहार, पर परिवार में सम्मिलित सभी गृहों की स्त्रियाँ मूल घर पर मिलती हैं और विचारविमर्श करती हैं या परिवार के विभिन्न गृहों के मुखियाओं को सुजाव देती हैं। महत्वपूर्ण या प्रसंगोचित क्रय-विक्रय पर और छोटे-बड़े अवसर पर सभी गृहों में से कम से कम एक सदस्य को निमंत्रण देना अनिवार्य होता है अन्यथा मनदुःखी होता है। जब ऐसे कोई सदस्य को मनदुख हो तब उसको मनाने का प्रयास भी किया जाता है, क्योंकि पारिवारिक एकता लक्ष्य है और संयुक्त निर्णय प्रक्रिया इसका महत्वपूर्ण कारक है।

पारस्परिक सम्मान : बुजुर्गो के प्रति आदर और सम्मान भारतीय संस्कृति की अनन्य विशेषता है जिसके फलस्वरुप अनेक विवाद या मनमुटाव नहीं होते। भारतीय समाज में गृह के सदस्य नई पीढ़ी के समाजीकरण के दौरान समान रुप से उनमें बुजुर्गो के प्रति आदर और सम्मान की भावना के विकास के प्रति जोर दिया जाता है। इसलिए पारिवारिक और गृहस्थ जीवन में ये भावना निरंतर बनी रहती है। प्रस्तुत अध्ययन में भी भारतीय संस्कृति की इस सर्वसामान्य विशेषता का अनुभव हुआ और इक्कीसवीं सदी में भी भारतीय ग्रामीण समाज में नगण्य परिवर्तन देखने को मिलता है। अधिकतर उत्तरदाताओं (78.48 प्रतिशत) को अपने गृह के साथ साथ अपने परिवार के विभिन्न गृहों के छोटे सदस्यों से सम्मान मिलता है। इसलिए गृह के मुखिया सदस्यों पर विभिन्न रूप से सामाजिक नियंत्रण बनाये रखने में सफल रहते हैं। ये तथ्य पुष्टि करता है की आज भी नई पीढ़ी के ज्यादातर सदस्य अपने बुजुर्गो के विभिन्न आदेशों का पालन करते हैं। सिर्फ नगण्य उत्तरदाताओं (8.61 प्रतिशत) ने स्वीकार किया की उनकी पत्नी या परिणित पुत्रों ने उनके निर्णय नामंजूर किये हैं। अधिकतर सदस्य मुखिया द्वारा विभिन्न अवसरों (गृह विभाजन, संपत्ति विभाजन, संघर्ष, शादी-ब्याह, व्यवसाय, सामाजिक-धार्मिक विधि, समाधान) पर लिए गए निर्णयों का आदर करते हैं। ऊँची आवाज में बात नहीं करते, उसके साथ झगड़े नहीं करते, उनके सामने खटिया या कुर्सी में बैठ नहीं सकते, धूम्रपान नहीं करते। इसका एक कारण ये भी सामने आया कि पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने की अनुभूति रखती है और अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत भी रहती है। इसलिए नई पीढ़ी में बुजुर्गो के प्रति आदर और सन्मान की भावना का सातत्य बना रहता है, जिसके फलस्वरुप नई और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष और विवाद की संभावनाएँ न्यूनतम हो जाती हैं। जब मूल गृह का मुखिया परिवार में सम्मिलित अन्य सभी गृहों के लिए सबसे ज्यादा सम्माननीय होता है तब ऐसे मुखिया परिवार

को एकजुट रखने में ज्यादा सफल रहते हैं। अतः पारस्परिक सम्मान की भावना पारिवारिक एकता का महत्वपूर्ण कारक है।

समाधान : परिवार में सम्मिलित गृहों के बीच सामाजिक संबंध में सहकार की भावना प्रमुख है। फिर भी प्रस्तुत अध्ययन में ज्ञात हुआ कि उत्तरदाताओं को (31.79 प्रतिशत) असमान संपत्ति विभाजन या भूमि संबंधित विवाद के कारण, पैसे की लेनदेन संबंधित मामले से, स्त्रियों के बीच झगड़े, सामाजिक व्यवहार संबंधित मामले में या व्यक्तिगत कारणों से अपने एक या ज्यादा रक्तसंबधी या अन्य स्वजनों के साथ झगड़े या उनके साथ संघर्ष हुआ है। हाँलाकि रक्तसंबधियों के बीच झगड़े या संघर्ष के अवसर न्यूनतम देखने को मिले हैं। जब परिवार में सम्मिलित गृहों के एक या कुछ सदस्यों के बीच या अन्य स्वजनों के साथ आपसी मनदुख, क्लेश-कलह या संघर्ष होता है तब एकदूसरे से रूठ जाते हैं या उनके बीच संबंधों का अंत होता है। ये परिस्थिति पारिवारिक एकता के लिए घातक होती है। परिवार के विभिन्न गृहों के मुखिया इस समस्या का हल ढूँढने का प्रयास करते हैं, विचार विमर्श करते हैं और दोनों पक्षों को समझाने का प्रयास करते हैं। जब दोनों पक्षों के बीच सामान्य कारणों से झगड़े होते हैं तब परिवार के विभिन्न गृहों के मुखिया आसानी से समाधान करवा देते हैं। लेकिन जब संपत्ति या सामाजिक व्यवहार संबंधित मामलों से कलह हुआ हो तो जल्द समाधान नहीं होता। इन परिस्थितियों में परिवार के मुखिया उचित मौके की तलाश करते हैं। ऐसा देखा गया है कि विभिन्न विवादित पक्षों के बीच समाधान की सबसे ज्यादा संभावनाएँ सामाजिक-धार्मिक अवसर पर ही होती है। जब दोनों स्वजनों के बीच समाधान हो जाता है तो उनके सामाजिक संबंध पूर्ववत हो जाते हैं और दोनों स्वजनों के बीच समाधान नहीं हुआ, तो सामाजिक संबंध का अंत हो जाता है। प्रस्तुत शोध में पाया गया कि 25. 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं को अपने रक्तसंबधी या अन्य स्वजनों से सामाजिक संबंधों का अंत हो गया हैं। अनुसंधान में देखा गया कि संघर्ष के आधे से ज्यादा मामले में (55. 21 प्रतिशत) विभिन्न गृहों के मुखिया ने स्वजनों के बीच समाधान करवाया हैं। फिर भी विकट स्थिति में जब दो स्वजनों के बीच समाधान नहीं होता, इसका मतलब यह भी नहीं है कि पारिवारिक एकता टूट गई है या परिवार में फूट पड़ गई हैं। परिवार के एक या दो सदस्यों के साथ सामाजिक संबंधों का अंत आये, तब भी इस परिवार के अन्य सदस्यों के गृहों के बीच प्रगाढ़ सामाजिक संबंध, एकता बनी रहती है।

निष्कर्ष : भारतीय समाज में परिवार और गृह के बीच स्पष्ट भेदरेखा है एवं गृह परिवार के विभिन्न आयामों में से सिर्फ एक आयाम है। ये दोनों समूह प्रत्येक भारतीय के लिए केंद्रीय है और पारिवारिक परंपरा एवं आदर्श का प्रचलन प्रभावी है। भारतीय समाज में गृह विभाजन बाद निर्मित रक्तसंबंधियों के पृथक गृहों से मिलकर एक परिवार बनता है और इन सब गृहों के बीच विभिन्न प्रारूप की आपसी अंतःक्रियाएँ कायम बनी रहती हैं, जिससे विभिन्न गृहों के बीच प्रगाढ़ सामाजिक संबंध और एकता की भावना पनपती है। इसलिए सामाजिक एकता बनी रहे यह आदर्श भारतीय ग्रामीण समाज में आज भी असरकारक है तथा परिवार के विभिन्न सदस्यों में और गृहों के बीच यह एकता पनपती रहे इसके लिए प्रयास होते रहते हैं। ग्रामीण गृहों की प्रभुत्व-आधीनतायुक्त समाजीकरण का प्रतिरूप इस परिवारवाद की परंपरा को एवं पारिवारिक एकता के आदर्श को नई पीढ़ी में हस्तांतरित करके उसकी निरंतरता बनाए रखती है।

अध्ययन में अवलोकन किया गया कि जिस परिवार में रक्तसंबंधियों के विभिन्न गृहों के बीच पर्याप्त एकता होती है, उस परिवार की तथा उनके मुखिया की गाँव में सबसे ज्यादा प्रतिष्ठा होती है। ऐसे परिवार और उसके मुखिया ग्रामीण सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं और गाँव के अन्य परिवारों या गृहों ऐसे मुखिया से सुझाव लेते हैं, अपने विवादों को सुलझाने के लिए उसकी मदद लेते हैं और उनके आदेशों का सन्मान भी करते हैं। जब रक्तसंबंधियों के पृथक गृहों में से किसी एक या दो सदस्यों के बीच मनदुख या क्लेश-कलह होता है तब उनके बीच समाधान कराने का प्रयास किया जाता है। अगर समाधान नहीं होता फिर भी रक्तसंबंधियों के अन्य गृहों के बीच एकता बनी रहती है, जो पितराइ भाईयों की तुलना में सहोदरों के बीच ज्यादा प्रबल होती है। समग्रतया पारिवारिक एकता का आदर्श आज भी ग्रामीण समुदाय में प्रबल है और नई पीढी भी इसका महत्व समझती है। इसलिए प्रस्तुत शोध क्षेत्र में नई पीढ़ी में भी इस पारिवारिक एकता की भावना के संदर्भ में कोई ध्यानाकर्षक परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ है और पारिवारिक एकता का आदर्श इस ग्रामीण समुदाय में आज भी प्रचलित है।

सन्दर्भ

1. Bierstedt R., *'The Social Order: An Introduction to Sociology,'* McGraw-Hill Book Company, Inc., New York, 1957, P.347
2. Maciver R.M. & Page C.H., *'Society: An Introductory Analysis'*, Macmillan & Co. Ltd. London, 1959,P.238
3. Mandelbaum D., *'Society in India: Continuity and Change'*, University of California Press, Berkeley, 1970, P.41
4. Shah A.M., *'The Household Dimension of the Family in India'*, Orient Longman, New Delhi, 1973, P.108
5. Desai I.P., *'Some Aspects of Family in Mahuva'*, Asia Publishing House, New York, 1964, P.25
6. Madan T.N., *'Family and Kinship: A Study of the Pandits of Rural Kashmir'*, Second Edition. Oxford University Press, Delhi, 1989, P.159-160
7. Uberoi Patricia (ed.), *'Family, Kinship and Marriage in India'*, Oxford University Press, New Delhi, 1993, P.420-421
8. Shah,1973, op.cit., P.03
9. Shah A.M., *'The Family in India: Critical Essays'*, Orient Longman Limited, New Delhi,1998, P.82, 105
10. Madan T.N., op.cit., P.39
11. Uberoi Patricia, op.cit., P.12
12. Gupta Giriraj (ed.), *'Main Currents in Indian Sociology-II: Family and Social Change in Modern India'*, Vikas Publishing House Pvt. Ltd, New Delhi, 1976, P.XXIII
13. Shah,1973, op.cit., P.130-131
14. Shah,1973, op.cit., P.132
15. Shah,1973, op.cit., P.133
16. Shah,1973, op.cit., P.138-139
17. Gupta Kuntesh, *'The Sociology of Family in India'*, Rohini Publication, Meerut, 1991, P.78
18. Gupta Kuntesh, ibid, P.74
19. Gupta Kuntesh, ibid,P.02
20. Gupta Kuntesh, ibid, P.04
21. Gupta Kuntesh, ibid, P.13
22. Gupta Kuntesh, ibid, P.11
23. Bharat Shalini (ed.), *'Family Measurement in India'*, Sage Publication, New Delhi,1996, P.42
24. Patel Tulsi (ed.), *'The Family in India: Structure and Practice'*, Sage Publication, New Delhi, 2005, P.22
25. Roy P.K. (ed.), *'The Indian Family: Change and Persistence'*, Gyan Publishing House, New Delhi, 2000, P.260

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

दलित छात्रों में शिक्षा एवं सामाजिक गतिशीलता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. प्रतिभा राज
❖ राहुल पाण्डेय

भारतीय समाज में जाति एक अत्यंत शक्तिशाली संगठन है। यह सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था एवं संरचना में सामाजिक समूहों को उनकी प्रस्थितियों तथा पदों के आधार पर संगठित और व्यवस्थित करती है। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक पदानुक्रम की संरचना में जन्म आधारित तथा पूर्व निर्धारित पद पर आसीन होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में दलित छात्रों के शैक्षणिक स्तर तथा उनमें सामाजिक गतिशीलता की दर को जानने का प्रयास किया गया है। दलित जातियों में शिक्षा की गतिशीलता तथा सामाजिक - आर्थिक प्रस्थिति में परिवर्तन का अध्ययन करने पर पाया गया कि जो सामाजिक गतिशीलता है वह अन्तरपीढ़ी उदग्र गतिशीलता परिलक्षित हो रही है तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सरकारी पहलों एवं संवैधानिक प्रावधानों के कारण उनमें गतिशीलता दिखाई पड़ रही है। प्रस्तुत शोध अध्ययन लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययनरत दलित छात्र/छात्रों पर आधारित है। प्रस्तुत शोध कार्य वर्ष 2018 में पूरा किया गया है।

भारतीय समाज में जाति एक अत्यंत शक्तिशाली संगठन है। यह सामाजिक - आर्थिक व्यवस्था एवं संरचना में सामाजिक समूहों को उनकी प्रस्थितियों तथा पदों के आधार पर संगठित और व्यवस्थित करती है। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक पदानुक्रम की संरचना में जन्म आधारित तथा पूर्व निधारित पद पर आसीन होता है। इस सामाजिक पदानुक्रम की सीढ़ीनुमा व्यवस्था में ब्राह्मण सबसे उच्च प्रस्थिति पर तथा अस्पृश्य सबसे नीची प्रस्थिति पर माने जाते हैं। ये परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक प्रकार के रीतिरिवाजों, धार्मिक कृत्यों, जाति व्यवस्था एवं वर्ग व्यवस्था में अनेक प्रकार की अयोग्ताओं, वंचना तथा शोषण व उत्पीड़न का शिकार रहे हैं। उनको मनुष्य की तरह भी नहीं समझा जाता रहा तथा जीवन के कई पहलूओं पर वे शोषण, असमानता एवं विभेद का सामना करते आ रहे हैं। देश की आजादी के बाद संविधान निर्माताओं ने इन्हें अनुसूचित जाति शब्द से सम्बोधित किया तथा इनके सामाजिक - आर्थिक स्तर को उन्नत करने की दिशा में कई प्रावधान किए। इन्हें संविधान के अनुच्छेद 341 के अंतर्गत रखा गया और सामाजिक - आर्थिक रूप से वंचित समूहों के रूप में परिभाषित किया गया। जागरूकता, गतिशीलता, राजनीतिक सहभागिता, वैश्वीकरण, संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा इनकी सामाजिक - आर्थिक स्थिति में कई सुधार आये हैं।[1]

कई समाजशास्त्री, मानवशास्त्री तथा नीतिनिर्माता सामाजिक गतिशीलता की इस प्रक्रिया से सम्बंधित रहे हैं। कई समाजशास्त्रियों ने यह पाया कि जाति की बन्द व्यवस्था की प्रकृति के बावजूद जाति, पद, मूल्य और मानदण्ड में परिवर्तन परिलक्षित होता है। गतिशीलता सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया है इसके द्वारा प्रथा, मूल्य विचारधारा तथा जीवनशैली को उच्च जातियों की दिशा में परिवर्तित कर पदक्रम में ऊँचा उठने का प्रयास किया जाता है।[2]

जी.एस. घुर्ये[3] ने बताया है कि जाति व्यवस्था के स्वरूप को हम परिभाषाओं के माध्यम से नहीं समझ सकते हैं। इसे समझने के लिए हमें इसकी विशेषताओं पर विचार करना चाहिए। ये विशेषताएँ इस प्रकार से हैं- 1. समाज का खण्डात्मक विभाजन। 2. पदानुक्रम। 3. भोजन तथा सामाजिक सहवास पर प्रतिबंध। 4. नागरिक धार्मिक निर्योग्ताएँ तथा विशेषाधिकार। 5. पेशे की स्वतंत्र-चुनाव पर प्रतिबन्ध। 6. विवाह सम्बन्धित प्रतिबन्ध। **जे. एच. हट्टन**[4] कहते हैं कि जाति ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत् समाज अनेक आत्मकेन्द्रित एवं एक -

❑ सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
❖ सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, मुंशयारी, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

दूसरे से पूर्णतः पृथक इकाइयों में (जातियों) में विभाजित होता है व इन इकाईयों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध ऊंच-नीच के आधार पर सांस्कृतिक रूप से निर्धारित होते हैं। रिजले[5] जाति व्यवस्था के संदर्भ में कहते हैं कि जाति व्यवस्था परिवारों का ऐसा समुदाय है जिनका एक सामान्य नाम होता है तथा सामान्य व्यवसाय होता है। समुदाय के सभी परिवार अपने को एक ही पूर्वज की संतान मानते हैं। उसमें सामान्य रीति-रिवाज एवं प्रथाएँ होती हैं। इन परिवारों में ऐसी संगत होती है कि वे एक जाति का रूप धारण कर लेते हैं। उनका जीवन मुख्यतः सामुदायिक होता है तथा इसमें एकता का भाव मुख्य होता है।

परम्परागत भारतीय सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था में जाति को पदक्रम, श्रेणीक्रम, संस्तरण, स्तरीकरण की बन्द व्यवस्था तथा व्यक्ति की प्रदत्त प्रस्थिति के रूप में समझा जाता है। सामाजिक - सांस्कृतिक गतिशीलता समाज तथा संस्कृति में होने वाले परिवर्तन से संबंधित है। गतिशीलता किसी व्यक्ति या समूह की पद या प्रस्थिति से दूसरे पद या प्रस्थिति में होने वाले परिवर्तन को कहा जाता है।[6]

दलित : एक अवधारणात्मक परिचय

दलित वह हैं जो सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से पिछड़े, आर्थिक रूप से वंचित तथा सामाजिक संरचना की पदक्रम व्यवस्था में पिछड़ी अवस्था में हैं। इस संरचना की वजह से इन्हें शोषण, हाशियाकरण, दबाव, वंचना, अपमान, सामाजिक बहिष्करण तथा निरावेशन का सामना करना पड़ रहा है। संरचनात्मक असमानता तथा सामाजिक-आर्थिक कारकों से दलितों में गतिशीलता व्यापक रही है।

दलित शब्द एक सामूहिक संस्कृति और सामाजिक पहचान का संकेतक है। कुमार दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि - ''दलित शब्द, संघर्ष का एक राजनैतिक हथियार है। वर्तमान संदर्भ में दलित पद का उपयोग समाज के उन समूहों के लिए किया जाता है जिन्हें अतीत में अछूत समझा जाता रहा है और उनमें से अधिकांश आज भी अस्पृश्यता की पीड़ा झेल रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था में दलित सामाजिक स्तरीकरण का एक हिस्सा रहे हैं।''[7]

भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण अत्यंत गहराई तक निहित है। इसी सामाजिक स्तरीकरण के सबसे निचले पायदान पर पाया जाने वाला वर्ग आज के संदर्भ में दलित शब्द से जाना जाता है। कहने का तात्पर्य है कि भारतीय समाज में दलित होने का अर्थ सामाजिक जाति व्यवस्था में व्यक्ति का निम्न स्तर पर होना है, जिन्हें हिन्दू व्यवस्था में उच्च कहे जाने वाले हिन्दुओं द्वारा अपवित्र माना व कहा गया। इसी कारण से हिन्दू समाज में ये तथाकथित उच्च कहे जाने हिन्दुओं से अलग समझे जाते हैं।

दलित समुदाय जिन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है, जैसे-अछूत, टूटे हुए, दबे-कुचले, अस्पृश्य, हरिजन, बहिष्कृत तथा अनुसूचित जाति। आजकल 'दलित' शब्द का अर्थ विभिन्न अर्थों से लिया जा रहा है। समाज में वे लोग जो सामाजिक निर्योग्ताएँ, सामाजिक - आर्थिक पिछड़ेपन, बहिष्कार, प्रताड़ना, सामाजिक वंचना के शिकार रहे हैं, ऐसे समुदायों तथा इस प्रकार के लोगों के लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। संविधान निर्माण से पहले ऐसे समुदाय के लोगों को हरिजन, जिसे ईश्वर की संतान के रुप में कहा जाता है, के नाम से पुकारा जाता था। किंतु संविधान निर्माण के पश्चात् ऐसे समुदाय को अनुसूचित जाति शब्द से पहचाना जाने लगा। भारत की आबादी का कुल 16 प्रतिशत इनकी आबादी है। गांधी जी ने सन् 1933 में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग शुरू किया था। किन्तु उस समय के दलित नेताओं द्वारा विशेषकर अंबेडकर द्वारा हरिजन शब्द को अस्वीकार किया गया। अंबेडकर ने दलित शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए किया, जो जाति विशेष में जन्म लेने के कारण सामाजिक - आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से उत्पीड़न का शिकार रहे हैं। इस संदर्भ में दलित शब्द का तात्पर्य होता है - दबा हुआ या कुचला हुआ।[8] सन् 1970 के समय में दलित पैंथर्स द्वारा दलित शब्द का प्रयोग चलन में आया। दलित पैंथर्स द्वारा इस शब्द का प्रयोग सर्वाधिक रूप से किया गया।[9] दलित पैंथर्स ने दलित शब्द को परिभाषित किया तथा साथ ही दलित शब्द की परिभाषा को विस्तृत रुप दिया, जिसमें समाज के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मजदूर वर्ग, भूमिहीन एवं गरीब किसान, नवबौद्ध, वृद्ध, महिलाओं एवं उच्चवर्ग के आर्थिक एवं धार्मिक रूप से पीड़ित एवं शोषित सदस्यों को सम्मिलित किया। समाजशास्त्री नन्दूराम दलित पैंथर्स द्वारा प्रतिपादित दलित शब्द की परिभाषा को नकारते हुए कहते हैं कि ''पैंथर्स द्वारा दी गई वर्गीय परिभाषा के विपरीत आज देश में दलित शब्द का प्रयोग पूर्व में तथाकथित अस्पृश्य जातियों के लिए किया जा रहा

है। वर्तमान समय में समाजविज्ञान के छात्र दलित, अस्पृश्य एवं अनुसूचित जाति शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में करने लगे हैं।[10]

संरचनात्मक असमानता तथा सामाजिक-आर्थिक कारकों से दलितों की गतिशीलता प्रभावित रही है। अनुसूचित जातियों में सामाजिक - सांस्कृतिक गतिशीलता को विभिन्न प्रारूपों तथा बिन्दुओं के संदर्भ में अध्ययन करने की आवश्यकता है। शिक्षा किसी भी समुदाय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह आर्थिक विकास, प्राथमिक, द्वितीयक, उच्च शिक्षा, प्रौद्योगिकी एवं व्यवसायिक शिक्षा में मदद करती है। **मुख्यतः** उन समुदायों में जो परम्परागत जातिगत व्यवसायों की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं उनकी गतिशीलता का मुख्य कारण व्यवसायिक तथा उच्च शिक्षा की ओर इनका रूझान रहा है। इस गतिशीलता को ग्रामीण से शहरी एवं क्षैतिज से उदग्र गतिशीलता के रूप में देखा जा सकता है।

दलित जातियों में शिक्षा का स्तर बढ़ने एवं उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति थोड़ी उच्च होने के बावजूद वे आज वंचना, शोषण, असमानता, पूर्व मान्यताओं से ग्रस्त और त्रस्त हैं। कुछ प्रतिशत को छोड़कर ज्यादातर जातियाँ आज भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अत्यंत पिछड़ी हुई हैं जिनकी स्थिति में सुधार लाने में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। सरकार तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा उनमें सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता, राजनीतिक चेतना, अस्तित्व की पहचान तथा प्रस्थिति में सुधार लाने के प्रयत्न जारी है। किन्तु आज भी अनुसूचित जातियाँ, गैर अनुसूचित जातियों की तुलना में भारतीय समाज का अधिक कमजोर वर्ग हैं।

दलित जातियों की दयनीय स्थिति को देखकर अक्सर यह कहते हुए सुना जाता है कि दलितों के लिए आवश्यक रूप से कुछ किया जाना चाहिए। विवेक कुमार अपनी पुस्तक 'प्रजातंत्र में जाति, आरक्षण एवं दलित' में यह व्यक्त करने की कोशिश करते हैं कि समाज के सवर्णों यानि कि सवर्ण समाज का दायित्व है कि वे दलितों की स्थिति को समझें और उनके सामाजिक - आर्थिक पिछड़ेपन, उनकी वंचना, दयनीय स्थिति के प्रति संवेदनशील बनें। विवेक कुमार ने दलितों की स्थिति को 'पर्सपेक्टिव फ्राम बिलो' से देखने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि भारत में उच्च जाति, उच्च वर्ग, स्थापित समाज, वैज्ञानिक आदि दलित समाज के प्रति काफी हद तक असंवेदनशील रहा है। ये सभी देश के संसाधन पर एकाधिकार बनाये हुए हैं एवं उस पर अपनी वर्चस्वता कायम भी रखना चाहते हैं।[11]

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के प्रयत्न किये गए और उन प्रयासों के परिणामस्वरूप इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार भी आया और सुधार हो भी रहा है। इनके सामाजिक समावेशन के लिए सरकार ने पहल प्रारम्भ की जिससे इनकी आर्थिक, व्यावसायिक, शैक्षणिक, सामाजिक- सांस्कृतिक गतिशीलता परिलक्षित हो रही है, जिससे इनकी स्थिति एवं प्रस्थिति में सुधार हो रहा है लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

साहित्य समीक्षा : कौर[12] ने अपने अध्ययन ''सोशियो इकोनोमिक मोबिलिटी अमंग शेडयूल कास्ट : अ स्टडी ऑफ विलेज मुगलमागरी इन रूप नगर डिस्ट्रिक्ट ऑफ पंजाब'' में रामदासी समुदाय के अध्ययन में पाया कि सामाजिक गतिशीलता का कारण शिक्षा तथा व्यवसाय है। वह परम्परागत कार्य छोड़ चुके हैं या प्रतिदिन मजदूरी का काम करते हैं तथा कुछ सरकारी और निजी-कम्पनियों में भी कार्यरत हैं। रामदसिया समाज में जिन्होंने अपना व्यवसाय बदला उनमें पाया गया कि वह ज्यादातर उच्च स्थिति में पहुंच गए हैं, इनमें पायी जाने वाली गतिशीलता का कारण उच्च शिक्षा का होना है। ज्यादातर उत्तदाताओं ने बताया कि खान-पान अंतःक्रिया लगाव बढ़ रहा है। लेकिन सम्पूर्णता में देखा जाए तो अभी भी जातिगत भेदभाव एवं असमानता समाज में विद्यमान है।

बद्री नारायण[13] ने अपने पर्सपेक्टिव फ्रामबिलो के परिपेक्ष्य के अध्ययन के आधार पर पाया कि किस प्रकार अनुसूचित जातियों ने विशेषकर चमारों के समुदायों में 1950 के आस-पास जातिगत तथा परम्परागत व्यवसायों का विरोध करने के लिए आन्दोलन शुरू किये गए और ब्राह्मणवादी प्रभुत्व को चुनौती दी। नारा-मवेशी आन्दोलन के अनुसार चमार जाति के पुरूष मरे पशुओं को उठाते थे तथा महिलाएं बच्चों के जन्म के समय नारा काटती थीं। इसका तीव्रतम विरोध चमार समुदायों द्वारा विभिन्न प्रकार के शोषित नोड अपने समुदाय के उन लोगों पर लगाये जो अभी भी इस व्यवसाय को करने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार सबआल्टर्न तथा अनुसूचित जातियों ने परम्परागत जाति की बेड़ियों को तोड़ा तथा स्वतंत्रता और सशक्तीकरण हेतु अपना प्रयास जारी रखा।

सेठी एवं सोमनाथ[14] ''कास्ट हाइरारकीज एण्ड सोश्यल मोबिलिटी इन इण्डिया'' के अनुसार 1950 के बाद शिक्षा के सार्वजनीकरण तथा सुधारात्मक क्रियाओं के बढ़ने से भारत में जो सामुदायिक असमानता पायी जाती थी वह कम हो गयी है। सामाजिक समानता लाने के लिए अनुसूचित जातियों तथा अनसूचित जनजातियों के द्वारा असमानता को हटाने का प्रयास किया गया। मानव संसाधनों का विकेन्द्रीकरण किया गया जिससे निम्न जातियों में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिला।

कराडे[15] अपने अध्ययन ''आक्यूपेशनल मोबिलिटी अमंग शेड्यूल कास्टस'' में शिक्षा तथा व्यवसाय में सम्बन्ध देखते हैं तथा अन्तः पीढ़ी और अन्तरपीढ़ी गतिशीलता की बात करते हैं। इस अध्ययन को उन्होंने महाराष्ट्र में किया और देखा कि किस प्रकार अम्बेडकर की विचारधारा को अपनाकर बुद्ध समुदाय ने उच्च शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी में अन्य समुदायों की अपेक्षा उन्नति की हैं। लेकिन इसके बावजूद उन्हें जातिगत पूर्वमान्यताओं तथा असमानताओं का सामना करना पड़ रहा है फिर भी वे वह उच्च प्रस्थिति के लिए प्रयास करते रहें है।

पाई[16] ने अपने अध्ययन 'राजनीतिक आन्दोलन और दलित' मेरठ जिले के अध्ययन में पाया कि दलित अभिकथन, उ0प्र0 के राजनीति तथा समाज का महत्वपूर्ण चरित्र है और यह अचानक नहीं हुआ बल्कि समय-समय पर सकारात्मक भेदभाव की नीति, विकास तथा राज्य की कल्याणकारी योजनाओं के द्वारा सम्भव हुआ है। यह सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन और गतिशीलता दलित आधारित पार्टी के द्वारा संभव हुई है। यहाँ पर दलितों के अभिकथन के विभिन्न रूप तथा प्रारूप हैं जो कि सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक शिक्षा तथा आर्थिक प्रस्थिति, स्थिति तथा स्रोतों हेतु अम्बेडकर की अवधारणा तथा जातिगत पार्टी को वोट देकर कर रहे हैं।

बेते[17] के अनुसार असमानता को केवल अस्तित्व के आधार पर नहीं बल्कि चेतना की विधि के रूप में भी देखा जा सकता है। समाज को संस्तरणात्मक व्यवस्था में केवल समूहों के विभाजन और श्रेणी के रूप में नहीं देखा जा सकता है बल्कि अधिकार और आकांक्षा के अधिकार पर भी देखा जा सकता है। आगे वे ग्रामीण भारत के असमानता के संदर्भ में कहते हैं कि परम्परागत व्यवस्था जाति से सम्बंधित है जिसे मूल्य और मापदण्ड वैधानिकता उपलब्ध कराते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में विशेष रूप से सबाल्टर्न परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया गया है। सबाल्टर्न परिप्रेक्ष्य विभिन्न जातियों, वर्गों, आयु, लिंग, जाति आदि से संबंधित लोगों की अधीनता की स्थितियों के माध्यम से समाज को समझने से संबंधित है। सबाल्टर्न दृष्टिकोण या परिप्रेक्ष्य राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों में कुलीन वर्ग के खिलाफ जनता की भूमिका को उजागर करके एक संतुलन को बनाए रखना चाहता है। यह एक ऐसा परिप्रेक्ष्य है जो समाज के हाशिए के वर्गों को अपने स्वयं के इतिहास के निर्माताओं के रुप में मानता है। दलितों में गतिशीलता का अध्ययन नीचे के परिप्रेक्ष्य के आधार पर किया गया है क्योंकि दलित जातियों का नेतृत्व प्रभुत्वशाली जातियों के विरुद्ध तथा इतिहास के पुनर्लेखन की बात करता है।

सोरोकिन[18] के अनुसार सामाजिक गतिशीलता दो प्रकार की होती है -

1. क्षैतिज गतिशीलता या समस्तरीय गतिशीलता
2. उदग्र या रैखिक गतिशीलता

क्षैतिज गतिशीलता में व्यक्ति या समग्र का स्थान परिवर्तन होता है, लेकिन पद मूलक परिवर्तन नही होता है जिसमे यह सामाजिक संरचना को प्रभावित नहीं करती। उदग्र गतिशीलता में सामाजिक संरचना प्रभावित होती है इसमें व्यक्ति या समूह के पद में परिवर्तन आता है तथा स्थान परिवर्तन का कोई महत्व नहीं होता है।

पीढ़ियों के आधार पर गतिशीलता दो प्रकार की होती है।

1. अन्तरपीढ़ी गतिशीलता
2. अंतः पीढ़ी गतिशीलता

शिक्षा सम्बन्धी गतिशीलता अन्तरपीढ़ी के अंतर्गत आती है जिसमें व्यक्ति या समूह का उसकी पीढ़ियों के मध्य अन्तर के आधार पर व्यवसायों का आकलन किया जाता है और इस आधार पर गतिशीलता का अध्ययन किया जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य -

प्रस्तुत शोध के निम्ननिलिखित उद्देश्य है :-

1. दलित छात्र-छात्राओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. दलित छात्र - छात्राओं में शैक्षणिक गतिशीलता का अध्ययन करना।

शोध पद्धति -

शोध अभिकल्प - प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध के उद्देश्यों एवं प्रकृति के आधार पर वर्णनात्मक शोध

अभिकल्प का प्रयोग किया गया है।

निदर्शन विधि एवं आकार – अध्ययन के लिए असंभावित निदर्शन का चुनाव किया गया है। असंभावित निदर्शन के कई प्रकारों में से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रक्रिया के माध्यम से 100 दलित छात्र-छात्राओं का चयन किया गया जो कि कला संकाय के विभिन्न विभागों से चयनित किये गये।

अध्ययन का क्षेत्र – अध्ययन के लिए लखनऊ नगर के लखनऊ विश्वविद्यालय का चयन अध्ययन क्षेत्र के रूप में किया गया है। लखनऊ विश्वविद्यालय भारत में उच्च शिक्षा के सबसे पुराने सरकारी स्वामित्व वाले संस्थानों में से एक है। लखनऊ विश्वविद्यालय में कला, विज्ञान, वाणिज्य, शिक्षा, ललितकला, विधि तथा आयुर्वेद को मिलाकर सात संकाय से सम्बद्ध 59 विभाग हैं जिसमें लखनऊ एवं लखनऊ के आस-पास के क्षेत्रों तथा साथ ही विदेशों से भी छात्र-छात्राएँ पढ़ाई करने आते हैं।

अध्ययन का समग्र एवं इकाई – अध्ययन क्षेत्र लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले समस्त दलित छात्र - छात्राएँ अध्ययन का समग्र हैं तथा एक दलित छात्र/छात्रा अध्ययन की इकाई है।

तथ्य संकलन के उपकरण – अध्ययन हेतु आंकड़ों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही स्रोतों से किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययनरत दलित छात्र - छात्राओं से सूचनाएँ एकत्र की गयीं। द्वितीयक स्रोतों में पत्र-पत्रिकाओं, रिपोर्ट आदि को सम्मिलित किया गया।

दलित छात्र-छात्राओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति : भारत में जाति-व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था का एक अनिवार्य भाग है। सामाजिक इतिहास का आरंभ कर्म आधारित वर्गीय विभाजन के विभिन्न क्षेत्रीय समायोजनों पर आधारित है, किन्तु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास में प्राचीन काल से लेकर अब तक मुख्यधारा के समानान्तर एक प्रतिरोधी धारा लगातार चलती रही है। इस धारा ने समय-समय पर अनेक आंदोलनों और क्रांतियों को जन्म दिया। इन्हीं आन्दोलनों में दलित आंदोलन भी दलित अस्मिता के सवालों को लेकर असहमति विरोध दर्ज कराने के लिए उभरा और 21 वीं सदी में दलितों में एक नया वातावरण तैयार हुआ, जिसमें उन्होंने वर्ण व्यवस्था के विरोध में अपनी आवाज उठाई जिसका परिणाम ये हुआ कि दलितों में सामाजिक - आर्थिक, शैक्षणिक विकास की शुरुआत हुई। इसी आधार पर दलित वर्ग में सामाजिक - आर्थिक गतिशीलता उभरी।[19]

अध्ययन क्षेत्र में चयनित दलित छात्र - छात्राओं का सामाजिक - आर्थिक विश्लेषण निम्न प्रकार है -

तालिका क्रमांक - 1

उत्तरदाताओं की लैंगिक स्थिति एवं उपजाति समूह

लिंग	आवृत्ति	उपजाति समूह				
	N=100	चमार	पासी	सोनकर	धोबी	वाल्मीकि
पुरूष	61 (61%)	32	13	09	02	05
महिला	39 (39%)	12	09	11	06	01
कुल	100 (100%)	44 (44%)	22 (22%)	20 (20%)	08 (08%)	06 (06%)

तालिका 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित कुल 100 उत्तरदाओं में 61 दलित छात्र पाये गये तथा 39 दलित छात्राएँ पायी गयी। अध्ययनों से ज्ञात है कि भारत में महिलाओं की स्थिति समय के परिवर्तन के साथ बदलती रही है भारत की साक्षरता तथा शैक्षणिक स्थिति के संबंध में भी यदि महिलाओं की स्थिति पर गौर करें तो देखा गया है कि साक्षरता में महिलाओं ने अपने कदम बढ़ाएँ हैं। अब वे न केवल विद्यालय स्तर की शिक्षा बल्कि विश्वविद्यालय की देहरी भी पार करने लगी हैं। अध्ययन के अंतर्गत कुल छात्र-छात्राओं में से 44 प्रतिशत छात्र (32 पुरुष 12 महिलाएँ) चमार जाति से आते थे। 22 प्रतिशत छात्र (13 पुरुष, 09 महिलाएँ) पासी समाज के पाये गये। 20 प्रतिशत छात्र सोनकर (09 पुरुष, 11 महिलाएँ) पाये गये। 08 प्रतिशत छात्र धोबी जाति के पाये गये (02 पुरुष एवं 06 महिलाएँ) तथा 6 प्रतिशत छात्र वाल्मीकि (5 पुरुष एवं 1 महिला) समाज के पाये गये। **तालिका 1** से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सर्वाधिक प्रतिशत (44 प्रतिशत) छात्रों की उपजाति चमार पायी

गयी तथा दूसरे स्थान पासी समाज के छात्र 22 प्रतिशत पाये गये।

उत्तर प्रदेश में जनगणना 2011 के अनुसार अनुसूचित जाति की जनसंख्या लगभग 4 करोड़ से अधिक है जो कि उत्तरप्रदेश की जनसंख्या का 20.70 प्रतिशत है। प्रदेश में लगभग 66 जातियाँ अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आती हैं जिसमें चमार जाति की जनसंख्या सर्वाधिक है तथा पासी जाति का स्थान दूसरे नंबर पर है।[20]

तालिका क्रमांक-02

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति एवं आयु समूह

आयु समूह	आवृत्ति N=100	शैक्षणिक स्थिति				
		बी.ए.	एम.ए.	एम.फिल	पीएच.डी.	अन्य
18-20	24 (24)	23	01	0	0	0
21-23	44 (44)	18	26	0	0	0
24-26	16 (16)	06	07	02	01	0
27-29	13 (13)	0	02	03	08	0
30 एवं अधिक	03 (03)	0	0	0	02	01
कुल	100 (100)	47	36	05	11	01

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित कुल 100 दलित छात्रों को पाँच आयु समूहों में विभाजित किया गया है जिसमें 18 से 20 आयु वर्ग में कुल 24 प्रतिशत छात्र हैं जिसमें 23 छात्र बी.ए. कोर्स में पढ़ रहे थे तथा 1 छात्र एम.ए. की पढ़ाई कर रहा था। 21-23 आयु वर्ग में 44 प्रतिशत छात्र पाये गये। जिसमें 18 छात्र बी.ए., 26 छात्र एम.ए. करते पाये गये। 24-26 आयु वर्ग में कुल संख्या के 16 प्रतिशत छात्र पाये गये जिसमें 06 छात्र बी.ए., 07 छात्र एम.ए., 02 छात्र एम फिल एवं 01 छात्र पी.एच.डी. कोर्स की पढ़ाई करते हुए पाये गये। 27- 29 आयु वर्ग में कुल 13 प्रतिशत छात्र पाये गये, जिसमें 02 छात्र एम.ए. तथा 03 छात्र एम.फिल एवं 08 छात्र पीएच.डी. करते हुए पाये गये। 30 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के 03 छात्र पाये गये जिसमें 02 छात्र पीएच.डी. एवं 01 छात्र पी.डी.एफ. करते हुए पाया गया।

इस प्रकार से कुल संख्या में से 47 प्रतिशत छात्र बी.ए, 36 प्रतिशत एम.ए, 05 प्रतिशत एम.फिल, 11 प्रतिशत पीएच.डी. एवं 01 छात्र पी.डी.एफ. करते पाये गये।

अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से उनके मूल निवास संबंधी जानकारी भी प्राप्त की गयी जिसमें 100 दलित छात्रों में से 72 प्रतिशत छात्र ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित थे तथा 28 प्रतिशत छात्र नगरीय क्षेत्र से आते थे। अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए छात्रों में शैक्षणिक गतिशीलता को जानने के लिए उनके अभिभावकों के शैक्षणिक स्तर तथा व्यवसाय संबंधी जानकारी भी प्राप्त की गयी तथा ये पाया गया कि वर्तमान वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के समय में सभी वर्ग शिक्षा की महत्ता व आवश्यकता को समझ रहे हैं। दलित जातियों में परम्परागत रूप से शिक्षा का अभाव पाया जाता रहा है किंतु समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा मानव विकास के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया मानी गयी जिससे दलित जातियों में शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ा है। दलित जातियों में शिक्षा का महत्व तो और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामुदायिक विकास के लिए शिक्षा को सबसे कारगार साधन के रूप में माना गया है।[21]

तालिका क्रमांक - 3

उत्तरदाताओं के पिता की शैक्षणिक एवं व्यवसायिक स्थिति

शैक्षणिक स्तर	आवृत्ति N=100	व्यवसायिक स्तर						
		कृषि	बेरोजगार	मजदूरी	परम्परागत व्यवसाय	प्राइवेट नौकरी	सरकारी नौकरी	उद्यमी
अशिक्षित	14 (14)	04	03	05	02	0	0	0
प्राथमिक	16 (16)	06	02	04	04	0	0	0
माध्यमिक	16 (16)	05	01	07	01	0	01	01
हाईस्कूल	20 (20)	08	01	0	02	02	03	04
हायर सेकेण्डरी	21 (21)	04	02	0	04	03	04	04
स्नातक	07 (7)	0	0	0	0	01	06	0
स्नातकोत्तर	03 (3)	0	0	0	0	01	02	0
प्रोफेशनल वोकेशनल	03 (3)	0	0	0	0	02	01	0
कुल	100 (100)	27	09	16	13	09	17	09

तालिका 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में उत्तरदाताओं के पिता की शैक्षणिक स्थिति तथा व्यवसायिक स्थिति से पता चलता है कि कुल संख्या में से 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता अशिक्षित पाये गये तथा कुल 86 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता शिक्षित पाये गये, जिसमें 16 प्रतिशत प्राथमिक स्तर, 16 प्रतिशत माध्यमिक स्तर 20 प्रतिशत हाईस्कूल, 21 प्रतिशत हायर सेकेण्डरी, 07 प्रतिशत स्नातक, 03 प्रतिशत स्नातकोत्तर तथा 03 प्रतिशत ही प्रोफेशनल एवं वोकेशनल कोर्स वाले पाये गये। इस प्रकार 86 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता शिक्षित पाये गये किंतु उच्च शिक्षित अपेक्षाकृत कम पाये गये।

तालिका 3 से ही उत्तरदाताओं की व्यवसायिक स्थिति भी ज्ञात होती है, जिसमें यह पाया गया कि 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता कृषि कार्य करते हैं, 9 प्रतिशत के पिता बेरोजगार पाये गये। 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता मजदूरी कार्य करते हैं, 13 प्रतिशत पिता आज भी परम्परागत व्यवसाय करते हैं। 9 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता प्राइवेट नौकरी करते हैं, 17 प्रतिशत के पिता सरकारी नौकरी में कार्यरत पाये गये। 9 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे पाये गये जिनके पिता अपना स्वयं का व्यवसाय करते थे किन्तु वो व्यवसाय, परम्परागत व्यवसाय से भिन्न था। अध्ययन में 9 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे मिले जिनके पिता बेरोजगार थे उसका एक कारण यह भी पाया गया कि उन उत्तरदाताओं के पिता वृद्ध हो गये थे एवं अभी किसी प्रकार का कोई कार्य नहीं कर रहे। अतः उन्हें बेरोजगार की श्रेणी में रखा गया।

अध्ययन में सर्वाधिक 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता कृषि कार्य करते पाये गये क्योंकि अध्ययन में 72 प्रतिशत छात्र ग्रामीण क्षेत्र से सम्बंधित थे और आज भी गामीण क्षेत्रों में मुख्य व्यवसाय कृषि एवं कृषि पर आधारित मजदूरी ही दलितों के आय का प्रमुख स्रोत रहा है इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में आकर बस गये दलित विशेषकर धोबी तथा वाल्मीकि जाति के लोगों ने आज भी परम्परागत व्यवसाय अपनाया हुआ है। 17 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता सरकारी नौकरी करते हुए पाये गये, ये उनकी बदलती शैक्षणिक एवं व्यवसायिक स्थिति को दर्शाता है। सरकारी नौकरियों में दलितों का प्रतिनिधित्व सरकार की सकारात्मक नीतियों, दलित महापुरूषों के सामाजिक आंदोलनों को इंगित करता है जिससे वे आज शिक्षा व सरकारी सेवा के क्षेत्र में आगे बढ़ पा रहे हैं। साथ ही साथ अपनी आने वाली पीढ़ियों को भी शिक्षित व नौकरी पेशा बनाने की दिशा में दिशा में सकारात्मक सोच अपना रहे हैं। ये दलितों में सामाजिक गतिशीलता को प्रदर्शित करता है।

तालिका क्रमांक - 4

उत्तरदाताओं की माता की शैक्षणिक एवं व्यवसायिक स्थिति

शैक्षणिक स्तर	आवृत्ति N=100	व्यवसायिक स्तर					
		गृहिणी	मजदूरी	परम्परागत व्यवसाय	प्राइवेट नौकरी	सरकारी नौकरी	उद्यमी
अशिक्षित	40 (40)	30	06	04	0	0	0
प्राथमिक	20 (20)	15	02	03	0	0	0
माध्यमिक	22 (22)	17	04	01	0	0	0
हाईस्कूल	09 (9)	07	0	0	0	0	02
हायर सेकेण्डरी	03 (3)	02	0	0	0	01	0
स्नातक	03 (3)	0	01	0	0	02	0
स्नातकोत्तर	02 (2)	0	0	0	0	02	0
प्रोफेशनल वोकेशनल	01 (1)	0	0	0	0	0	01
कुल	100 (100)	71	13	08	00	05	03

तालिका 4 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाओं में से 40 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे पाये गये जिनकी माता अशिक्षित पायी गयीं। 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं की माता शिक्षित पायी गयी जिसमें 20 प्रतिशत ने प्राथमिक स्तर, 22 प्रतिशत ने माध्यमिक, 9 प्रतिशत ने हाईस्कूल, 3 प्रतिशत ने हायर सेकेण्डरी, 3 प्रतिशत ने स्नातक स्तर तथा 2 प्रतिशत ने स्नातकोत्तर तक की शिक्षा प्राप्त की है। एक उत्तरदाता की माता ने प्रोफेशनल डिग्री भी प्राप्त की है। आज भी ज्यादातर महिलाएँ अशिक्षित हैं तथा गृहिणी का कार्य करती हैं, उनकी आय का कोई स्रोत नहीं है तथा वे पुरुषों पर आर्थिक रूप से निर्भर रही हैं। दलित जातियों में महिलाएँ दोहरे वंचना को भोगती हैं यहाँ पर महिलाओं की स्थिति शैक्षणिक तथा आर्थिक आधार पर और दयनीय हो जाती है। इसी को ध्यान में रखते हुए उनकी शैक्षणिक स्थिति के साथ ही साथ व्यवसायिक स्थिति को जानने का भी प्रयास किया गया। तालिका 4 से स्पष्ट है कि अध्ययन में 71 प्रतिशत उत्तरदाताओं की माता गृहिणी पायी गयी। 13 प्रतिशत की माता आज भी मजदूरी का कार्य करती है, जो कि कृषि से सम्बंधित है। 08 प्रतिशत उत्तरदाताओं की माता आज भी अपने परम्परागत व्यवसाय से जुड़ी है जिसमें धोबिन एवं सफाई का कार्य आता है। 5 उत्तरदाता ऐसे पाये गये जिनकी माता सरकारी नौकरी में कार्यरत थी तथा साथ ही 3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे पाये गये जिनकी माता अपने स्वयं के व्यवसाय में संलग्न थी।

अतः यह कहा जा सकता है शिक्षा सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में सक्रिय भूमिका निभाती है यह अध्ययन के विश्लेषण से स्पष्ट होता है।

तालिका क्रमांक - 5

उतरदाताओं में शिक्षा संबंधी गतिशीलता के कारण

राय	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं का प्रयास	09	9
परिजनों के प्रयास	11	11
सरकारी सहायता	43	43
सामाजिक आन्दोलन	34	34
ईश्वर की कृपा	03	3
कुल	100	100

तालिका 5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं से जब शिक्षा संबंधी गतिशीलता के कारणों पर राय मांगी गयी तो कुल उत्तरदाताओं में से 43 प्रतिशत उतरदाताओं का यह मानना था कि उन्हें शिक्षा के लिए मिलने वाली सरकारी सहायता के कारण वे आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर पा रहे हैं। आरक्षण व्यवस्था के प्रति उनमें बहुत सकारात्मकता देखी गयी। उनका मानना यह है कि आरक्षण व्यवस्था उनकी शिक्षा एवं सामाजिक गतिशीलता को उच्च करने के लिए आवश्यक है। वहीं 34 प्रतिशत

उत्तरदाताओं का यह मानना था कि दलित महापुरुषों द्वारा चलाए गए सामाजिक आन्दोलन का ही परिणाम है कि वे आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर पा रहे हैं। ये सामाजिक आंदोलनों का ही प्रभाव है कि दलित वर्ग में शिक्षा बढ़ी है तथा उनमें सामाजिक गतिशीलता आई है। शिक्षा का बढ़ना और जागरूकता आने से दलित वर्ग में आरोही गतिशीलता देखने को मिली है। वही 11 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उनके परिजनों के कठिन श्रम व प्रयासों का परिणाम है कि आज वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर पा रहे हैं। 09 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उनके स्वयं के प्रयास का परिणाम है कि वे आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर पा रहे है। कुल उत्तरदाओं में से 03 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे पाए गए जिनका मानना है कि ईश्वर की कृपा के परिणामस्वरूप वे आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर पा रहे हैं।

तालिका क्रमांक - 6

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के कारण

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए	71	22.61
आर्थिक स्थिति उन्नत करने हेतु	68	21.65
शक्ति एवं विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए	52	51.56
व्यक्तिगत उन्नति के लिए	72	22.92
समाज की उन्नति के लिए	51	16.24

(बहुउत्तरीय विकल्प पर आधारित तालिका)

तालिका 6 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कुल उत्तरदाताओं में से 22.61 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि यदि वे आज उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं तो उससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी या वे उच्च शिक्षा अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ही प्राप्त कर रहे हैं। वहीं 21.65 प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक स्थिति उन्नत करने के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तथा उनका मानना है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने से उनकी नौकरी लगेगी और उनकी स्थिति आर्थिक रूप से उन्नत हो जाएगी। 51.56 प्रतिशत उत्तरदाता शक्ति एवं विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं आगे भी ग्रहण करना चाहते हैं। 22.92 प्रतिशत उत्तरदाता व्यक्तिगत उन्नति के लिए उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे है। उनका मानना है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने से उनकी व्यक्तिगत उन्नति होगी। 16.24 प्रतिशत उत्तरदाता समाज की उन्नति के लिए उच्च शिक्षा को सशक्त माध्यम मानते हैं तथा इसी उद्देश्य से वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं ताकि कुछ बनकर वे अपने समाज को बढाने के लिए प्रोत्साहित कर सकें।

निष्कर्ष : संग्रहीत प्रदत्तों के विश्लेषण एवं व्याख्या के उपरान्त जो तथ्य सामने आए हैं वे निष्कर्ष के रूप में इस प्रकार है -

अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित अधिकांश उत्तरदाता ग्रामीण परिवेश से संबंधित थे किंतु कुछ प्रतिशत उत्तरदाता नगरीय परिवेश से भी संबंधित थे। उत्तरदाताओं के सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में ज्यादा भिन्नता नहीं थी। किन्तु कुछ उत्तरदाता नगरीय परिवेश से संबंधित रहे है, तो कुछ उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि तुलनात्मक रूप से उन्नत पायी गयी। उत्तरदाताओं के अभिभावकों का शैक्षणिक स्तर उच्च नहीं था किन्तु उत्तरदाता आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

शिक्षा मानव विकास के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया मानी गयी है किन्तु दलित वर्ग में परम्परागत रूप से शिक्षा का अभाव पाया जाता रहा है क्योकि वे समाज के अत्यंत उपेक्षित, निर्धन एवं शोषण का शिकार वर्ग रहे हैं। धर्मशास्त्रों में तो उन्हें शिक्षा से विरत रखने का भी उल्लेख मिलता रहा है। विद्यालयों में प्रवेश निषेध था, शिक्षा प्राप्त करना उनके लिए दण्डनीय अपराध माना जाता था। ये विदित है कि किसी भी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामुदायिक विकास के लिए शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है किन्तु दलित वर्ग सदियों तक शिक्षा प्राप्ति से वंचित रहा। स्वतंत्रता पूर्व तक उनमें साक्षरता का प्रतिशत अत्यंत कम रहा, कारण उन्हें विभिन्न उच्च वर्ग तथा हिन्दू धर्मशास्त्रों द्वारा शिक्षा से वंचित रखना एवं साथ ही निर्धनता, भूमिहीनता, शोषण, उत्पीडन इत्यादि प्रमुख है। विभिन्न सामाजिक आंदोलनों, सामाजिक महापुरूषों के प्रयत्नों, संवैधानिक प्रावधानों के परिणामस्वरुप दलित वर्ग में शिक्षा प्राप्ति का आरंभ हुआ, तथा शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूकता को बढ़त मिली।

विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि दलित छात्रों के अभिभावकों में शिक्षा का स्तर उतना अधिक नही है किन्तु शिक्षा के महत्व को समझते हुए वे अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलवा रहे हैं। दलित वर्ग में शिक्षा के बढ़ने से उनमें आरोही, उर्द्धगामी गतिशीलता आई है। अब वे आगे बढ़ने और समाज में सम्मान प्राप्त करने के साथ

सामाजिक प्रतिष्ठा, पद प्राप्त करना चाहते हैं। विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी प्रयासों, माता-पिता के प्रोत्साहन, समाज के प्रति जिम्मेदारी के भावों ने दलित छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया है और इन्ही प्रयासों के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा में दलित छात्रों की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है तथा उसमें उल्लेखनीय प्रगति भी हुई है। उच्च शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति उच्च सरकारी नौकरियों तथा व्यवसायों में प्रवेश करता है। उच्च शिक्षा में प्रत्येक स्तर पर भागीदारी से समय बीतने के साथ दलित वर्ग में सामाजिक गतिशीलता का स्तर और बढ़ता जाएगा। आज दलित वर्ग में शिक्षा प्राप्ति के माध्यम से जो उदग्र सामाजिक गतिशीलता परिलक्षित हो रही है उसका प्रतिशत निश्चित रूप से जागरुकता व अवसर बढ़ने के साथ बढ़ता ही चला जाएगा।

संदर्भ

1. यादव, निशि एवं आशीष सक्सेना, 'भारतीय परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जाति की बदलती प्रस्थिति एवं सामाजिक गतिशीलता : उत्तर प्रदेश के पासी समुदाय का समाजशास्त्रीय विश्लेषण' राधाकमल मुकर्जी : चितंन परम्परा, वर्ष - 22, अंक 1, 2020, पृ. 37-43.
2. Srinivas, M.N. *'Social Change in Modern India'*, London: Cambridge University Press, 1966, pp. 1-48
3. Ghurye, G.S., *'Caste And Race in India'*, London: Kegan Paul, 1932, pp. 180-189
4. Hutton J.H. *'Caste in India: Its Nature, FunctionAnd Origins'*, Oxford University Press, London, 1946, pp. 46-130
5. Risley, H. *'The People of India'*, Oriental Books Reprint Cooperation, Delhi, 1969, pp. 154-165
6. Sorokin, P. *'Social Mobility'*, London: Harper & Brothers, 1927, p. 559
7. कुमार, अजय, 'दलित इतिहास लेखन : वैकल्पिक अधीनस्थ समाजशास्त्र की तलाश में (एक समीक्षात्मक मूल्यांकन)', भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा, खण्ड-2, भाग (2), 2015, पृ. 42-56.
8. Guru, Gopal. *'Interface betweenAmbedkarAnd the Dalit Cultural Movement in Maharashtra'* in Ghanshyam Shah (ed.). Dalit IdentityAnd Politics, New Delhi: Sage Publications, 2001, pp. 144-160
   'The Language of Dalit - Bahujan Political Discourse' in Ghanshyam Shah (ed.), Dalit IdentityAnd Politics, New Delhi: Sage Publications, 2001, pp. 75-97
9. मुरुगकर, लता, 'महाराष्ट्र में दलित पैंथर्स आंदोलन', पापुलर प्रकाशन, बम्बई, 1991, पृ. 2644
10. Ram, Nandu, *'BeyondAmbedar: Essays in Dalits in India'*, Har-Anand Publications, Delhi, 1995, p. 390.
11. कुमार विवेक, 'प्रजातंत्र में जाति, आरक्षण एवं दलित', सम्यक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012. पृ. 192.
12. Kaur, Amrit. *'Socio - Economic MobilityAmong Schedule Caste:A study of Village Mugalmagri in Rupnagar District of Punjab'*, International Journal of Humanities And Social Sciences Invention. Vol. 4 (3), 2015, PP. 41-51.
13. Narayana, Badri. *'History Produces Politics: The Naramaveshi Movement in Uttar Pradesh'*, Economic And Political Weekly, Vol. XIV. No. 40, 2010, pp. 111-119.
14. Sethi, RAnd Rohini Somanathan. *'Caste HierarchiesAnd Social Mobility in India'*, Journal of Political Economy Vol. 112 No.6, December, 2004, pp. 1296-1321
15. Karade, J., *'Occupation MobilityAmong Scheduled Castes'*, Cambridge Scholars Publishing, London, 2009, pp. 27-120
16. Pai, Sudha. *'New SocialAnd Political Movements of Dalits:A Study of Meerut District'*, Contribution to Indian Sociology, Vol. 34, No.2, 2000, p. 189 - 220.
17. Beteille, Andre. *'The Idea of Natural InequalityAnd Other Essays'*, Oxford University Press, New Delhi, 1983, p. 159-172
18. कुमार विकास, 'दलित चेतना की विकासमान धारा : अठारवीं सदी से समकाल तक' राधाकमल मुखर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 22, अंक 2, जुलाई से दिसंबर, 2000, पृ. 106-112.
19. Sorokin, P.A., 'Social and Cultural Mobility', Free Press Glencoe, 1956, pp. 381-482
20. भारत की जनगणना 2001
21. श्रीवास्तव, अनिल कुमार, 'अनुसूचित जाति में शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च एंड डेवलपमेंट, खण्ड (3) अंक-2, मार्च 2018, पृ. 105-108

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित गतिविधियों का जीवन कौशल शिक्षा के सन्दर्भ में अध्ययन

❑ डॉ. स्वाति मेलकानी

संकेत शब्द : लक्ष्मी आश्रम कौसानी, जीवन कौशल शिक्षा

माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत अधिकांश विद्यार्थी किशोरावस्था में आ रहे शारीरिक एवं मानसिक बदलावों से गुजरते हैं। इस अवधि में होने वाले परिवर्तन एवं उनसे जनित विक्षोभों को सही दिशा न मिलने पर वे विघटनकारी एवं आत्मघाती परिणाम भी दे सकते हैं। अतः माध्यमिक स्तर की शिक्षण संस्थाओं पर शिक्षण का महत्व कई गुना बढ़ जाता है क्योंकि उन पर न सिर्फ निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ाने बल्कि अपने किशोर विद्यार्थियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में आ रहे परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का दायित्व भी आ जाता है। ऐसे में जीवन कौशल शिक्षा एक सार्थक हस्तक्षेप है जो किशोरों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाकर उनके जीवन को अधिक गुणवत्तापूर्ण एवं सरल बनाती है। जीवन कौशल शिक्षा को विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाने के प्रयास चल रहे हैं। प्रस्तुत आलेख में लक्ष्मी आश्रम कौसानी, जिला बागेश्वर, उत्तराखंड में संचालित होने वाली गतिविधियों के माध्यम से वहां अध्ययनरत लड़कियों में हो रहे जीवन कौशलों के विकास का अध्ययन किया गया है।

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य न सिर्फ विद्यार्थियों को ज्ञान देना है बल्कि जीवन के बदलते परिदृश्यों को समग्रता से समझते हुए उनके लिए सर्वोत्तम का चुनाव करना भी है। किशोरावस्था से गुजर रहे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी शिक्षा के माध्यम से जीवन की चुनौतियों हेतु तैयार होने के साथ साथ आवश्यक संतुलन भी तलाशते हैं। उन्हें इसी जरूरी संतुलन हेतु आधार प्रदान करना माध्यमिक स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है। पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयवस्तु से पुस्तकीय ज्ञान तो मिल जाता है परंतु वर्तमान जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संतुलन स्थापित करते हुए अपनी सार्थक भूमिका निभाने के लिए जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता को विभिन्न शोध निष्कर्षों में स्वीकारा गया है। किशोरों की संवेगात्मक अभिव्यक्ति में स्थायित्व नहीं होता। उनके संवेग अधिक स्थाई और परिवर्तनशील होते हैं परन्तु उनकी गति बहुत प्रबल होती है। किशोरावस्था तक पहुँचते पहुँचते बालक में संवेग स्थाई भावों के रूप में अपनी गहरी जड़ें जमा लेते हैं। रॉस के शब्दों ''किशोर का जीवन बहुत अधिक संवेदात्मक होता है, जिसमें हमें एक बार फिर उसके अत्यधिक उग्र और निराशा की गहराइयों के बीच झूलते हुए व्यवहार के माध्यम से मानव व्यवहार के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों पक्षों का ही मिला जुला रूप देखने को मिलता है।''[1] उसके अनुभवों की गहराई बढ़ती है और वह अपनी प्रतिक्रिया बहुत उग्र ढंग से व्यक्त करता है।

जीवन कौशल शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य विद्यालयी शिक्षा को दैनिक जीवन से जोड़ना है ताकि पढ़ाई गयी पाठ्यवस्तु की प्रासंगिकता बढ़े और वह केवल किताबी ज्ञान न रह जाए। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में यह इंगित किया गया है कि वर्तमान शिक्षा एवं वास्तविक जीवन अनुभवों के बीच एक दूरी है। शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को जीवन की चुनौतियों हेतु तैयार किया जाना है अतः शिक्षा का उपयोगी जीवन कौशलों से जुड़ाव आवश्यक है। इन जीवन कौशलों के द्वारा विद्यार्थियों को नशे की लत, हिंसा, किशोरावस्था में गर्भधारण ,एड्स एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार किया जा सकता है। इसके अलावा विधिक साक्षरता , प्रशासनिक कार्यप्रणाली आदि की समझ विकसित होने से उनका जीवन सुगम व व्यवधानरहित हो जाता है। जीवन कौशलों का चुनाव समय व स्थान के अनुसार बदल सकता है अतः शिक्षा में उनकी प्रासंगिकता बनी रहती है। एक सफल जीवन हेतु शिक्षा में जीवन कौशलों का जुड़ाव आवश्यक है।[2] इस सन्दर्भ में यूनिसेफ द्वारा जीवन कौशलों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक स्वीकारा गया है।[3]

जीवन कौशलों की अवधारणा की जड़ें मनुष्य की अपने

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, स्वामी विवेकानंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लोहाघाट, चम्पावत (उत्तराखण्ड)

पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए सुखपूर्वक जीवन यापन करने की आदिम इच्छा में निहित हैं। जीवन के प्रारंभ से ही मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक कौशलों को सीखते हैं। जीवन की बढ़ती जटिलताओं के बीच मनुष्य के जीवन कौशल भी विकसित होते जाते हैं।[4] बेहतर मानसिक स्वास्थ्य हेतु भी जीवन कौशलों को महत्वपूर्ण माना गया है। उचित जीवन कौशल व्यक्ति को स्वयं व दूसरों के प्रति उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु अभिप्रेरित रखते हैं। जीवन कौशल व्यक्ति को परिवार, मित्रों, माता-पिता , शिक्षकों आदि से संबंधों को समझने एवं उन्हें बेहतर बनाने में मदद करते हैं। ऐसा देखा गया है कि जो व्यक्ति अपने जीवन को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं कर पाते, वे कभी भी उससे सुखी एवं संतुष्ट नहीं रह पाते। ऐसे व्यक्तियों के जीवन में प्रगति की संभावनाएं न्यून हो जाती हैं।यदि किसी बालक को प्रारम्भिक वर्षों से ही जीवन हेतु आवश्यक समझ व संतुलन प्रदान किया जाए तो वह भविष्य में अधिक संतुष्ट रह पाएगा।[5] दो अन्य शोधों में जीवन कौशलों की पहचान मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक, व्यावहारिक एवं प्रतिरोधक शक्ति हेतु आवश्यक ऐसे संसाधनों के रूपों में की गयी है जो व्यक्ति जो दैनिक जीवन की चुनौतियों एवं समुदाय के साथ उत्पादक साहचर्य हेतु प्रशिक्षित करते हैं।[6,7] इस प्रकार जीवन कौशल युवाओं को जीवन की चुनौतियों का सामना करने एवं उत्पादक नागरिक बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[8]

वर्तमान समय में जीवनशैली एवं संस्कृति एक संक्रमण काल से गुजर रही है। प्राचीनकाल से व्याप्त अवधारणाओं को नवीन प्रवृत्तियां प्रतिस्थापित कर रही हैं। ऐसे में जीवन कौशल किशोरों को नए जीवन अनुभवों एवं उससे उत्पन्न असंतोष व तनाव का सामना करने में सहायता प्रदान करते हैं। जीवन कौशलों के प्रभावी उपयोग से किशोर दूसरों के अपने प्रति दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ पाते हैं जिससे उनमें आत्मसम्मान पैदा होता है।[9] स्कूल शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर हुए एक संवाद में शिक्षा में जीवन कौशलों के महत्व को पहचानते हुए जीवन कौशलों को शिक्षा से जोड़ने की बात की गयी है।

जीवन कौशल शब्द व्यापक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। यह कुछ बुनियादी कौशलों का समुच्चय है जिन्हें संकीर्ण रूप से परिभाषित अथवा वर्गीकृत करना दुष्कर है। इस सन्दर्भ में कुछ अन्य नामों का प्रयोग भी होता है जिनमें से कुछ निम्नवत हैं:

1. जीवन कौशल
2. 21वीं सदी के कौशल
3. गैर- संज्ञात्मक कौशल
4. गैर- अकादमिक कौशल
5. चारित्रिक कौशल
6. सामाजिक एवं भावनात्मक अधिगम

ऐसी सभी योग्ताएं एवं सकारात्मक व्यवहार, जो किसी भी व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं व चुनौतियों से प्रभावपूर्ण ढंग से निपटने के काम आते हैं, जीवन कौशलों के रूप समझे जा सकते हैं। प्रमुख जीवन कौशलों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - चिंतन कौशल, सामाजिक कौशल एवं भावनात्मक कौशल। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जीवन कौशलों की व्याख्या करते हुए इसमें आत्म जागरूकता, समानुभूति, पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभावी सम्प्रेषण, विश्लेषणात्मक सोच, रचनात्मक सोच, निर्णय लेना, समस्या को सुलझाना, तनाव का सामना एवं भावनात्मक समझ को स्थान दिया है।[10] उपर्युक्त सभी कौशल जीवन की कठिन समस्याओं में समाधान प्रस्तुत करते हैं एवं जीवन को अधिक गुणवत्तापूर्ण बनाते हैं।

लक्ष्मी आश्रम उत्तराखंड के बागेश्वर जिले के कौसानी नामक स्थान पर स्थित एक आवासीय संस्थान है जहां 8 से 30 वर्ष आयु वर्ग की बालिकाएं विभिन्न अनुशासनों में अध्ययनरत हैं। लक्ष्मी आश्रम में एक अद्वितीय शिक्षण व्यवस्था है जो महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन पर आधारित है। यहाँ अधिकाँश शिक्षण गतिविधि गाँधी जी के शिक्षा दर्शन पर आधारित है। बालिकाओं के दैनिक कार्यकलापों में शिक्षकों का प्रतिभाग निरंतर बना रहता है। यह शिक्षण विधि आश्रम में रहने वाली लड़कियों के मन में श्रम को प्रतिष्ठित करती है। प्रस्तुत शोध आलेख में लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित होने वाली गतिविधियों का अध्ययन करके यह जानने का प्रयास किया गया है कि इन गतिविधियों का जीवन कौशलों के अधिगम में कितना योगदान है तथा इससे अध्ययनरत बालिकाओं के व्यक्तित्व में किन सकारात्मक जीवन कौशलों का विकास हो पा रहा है।

साहित्य समीक्षा : वर्तमान समय में जीवनशैली एवं संस्कृति एक संक्रमण काल से गुजर रही है। प्राचीनकाल से व्याप्त अवधारणाओं को नवीन प्रवृत्तियां प्रतिस्थापित कर रही हैं। ऐसे में जीवन कौशल किशोरों को नए जीवन अनुभवों एवं उससे उत्पन्न असंतोष व तनाव का सामना

करने में सहायता प्रदान करते हैं। जीवन कौशलों के प्रभावी उपयोग से किशोर दूसरों के अपने प्रति दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ पाते हैं जिससे उनमें आत्मसम्मान पैदा होता है। स्कूल शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर हुए एक संवाद में शिक्षा में जीवन कौशलों के महत्व को पहचानते हुए जीवन कौशलों को शिक्षा से जोड़ने की बात की गयी है। पुज्जर द्वारा कर्नाटक की किशोर लड़कियों पर जीवन कौशल शिक्षा के प्रभावों का अध्ययन किया गया। यह शोध कक्षा 8 व कक्षा 9 की किशोर बालिकाओं पर किया गया, जिसमें स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से पांच जीवन कौशलों का परीक्षण किया गया जिनमें समस्या समाधान, रचनात्मक चिंतन, विश्लेष्णात्मक सोच, तनाव का सामना तथा समानुभूति। अपने शोध में उन्होंने पाया कि किशोरों के शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। उन्होंने यह भी कहा की चुनौतियों व तनावों का सामना करने के लिए किशोरों को जीवन कौशल शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। शोधकर्ता ने यह भी पाया कि दूरस्थ क्षेत्रों की किशोर बालिकाओं को जीवन कौशल शिक्षा देने से उनकी समस्या समाधान क्षमता बढ़ती है और वे तनावों का सामना करने में अधिक सक्षम बनती हैं।[11]

एक अन्य शोध में YUVA स्कूल जीवन कौशल कार्यक्रम के अंतर्गत किशोरों में आत्मधारणा (selfconcept) के संदर्भ में जीवन कौशलों का अध्ययन किया गया। अध्ययन हेतु दक्षिण दिल्ली के माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले 500 किशोरों को चुना गया। अध्ययन के निष्कर्ष में यह पाया गया कि किशोरों के जीवन कौशलों एवं आत्मधारणा में सकारात्मक सहसंबंध है जिस कारण बेहतर जीवन कौशलों वाले किशोर अधिक आत्मविश्वासी थे।[12]

दत्ता व मजूमदार द्वारा अपने शोध में यह अवलोकन किया गया कि अधिकाँश विद्यार्थियों को अपने शारीरिक एवं यौन परिवर्तनों के सम्बन्ध में बात करने हेतु कोई औपचारिक मार्ग न मिल पाने के कारण वे इस सम्बन्ध में सुविधाजनक संवाद स्थापित नहीं कर पाते। विशेषकर भारतीय परिपेक्ष्य में यौन विषयों पर बातचीत निषिद्ध ही रहती है जिसके कारण किशोरों में यौन स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ देखी गयी हैं जो आगे चलकर लैंगिक असंतुलन को जन्म देती है। उक्त शोध में यह भी सुझाव दिया गया है कि विद्यालयों में इन विषयों पर व्यापक जानकारी देने हेतु चिकित्सा कार्यकर्ताओं, शिक्षकों एवं अन्य हितधारकों को सामूहिक प्रयास करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को यौन शिक्षा मिले तथा उनमें प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों की जागरूकता आ सके। उक्त शोध में भारतीय किशोरों व युवाओं हेतु जीवन कौशल शिक्षा की अनिवार्यता पर जोर दिया गया है।[13]

अपर्णा व राखी ने किशोरों हेतु जीवन कौशल शिक्षा की प्रासंगिकता एवं महत्व पर अध्ययन किया। अपने शोध में उन्होंने पाया की विद्यालय की पाठ्यचर्या में जीवन कौशलों की जानकारी देने से किशोर न सिर्फ जीवन की जटिलताओं व कठिनाइयों से आसानी से निकल पाते हैं बल्कि समस्याओं का बेहतर निदान भी खोज लेते हैं। शोध निष्कर्ष में इस तथ्य को प्रबलता से उद्धृत किया गया है कि जीवन कौशल शिक्षा को पाठ्यक्रम में समाहित करके अच्छे स्वास्थ्य, सकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध आदि की शिक्षा जीवन कौशलों के माध्यम से दी जानी चाहिए।[14]

किशोरों में जीवन कौशलों का विशेष सन्दर्भ लेते हुए **श्रीकला एवं कुमार** द्वारा स्कूल मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के आकलन हेतु एक अध्ययन किया गया। अध्ययन हेतु 20 माध्यमिक विद्यालयों से 605 विद्यार्थियों को चुना गया। अध्ययन में सम्मिलित सभी विद्यार्थी कक्षा 8 से 10 तक में अध्ययनरत एवं 14 से 16 आयु वर्ग के थे। अध्ययन में यह पाया गया कि जीवन कौशल शिक्षा से विद्यार्थी अपने शिक्षकों व विद्यालय के साथ बेहतर समायोजन स्थापित कर पाए जिससे उनके सामाजिक व्यवहार , आत्मसम्मान व सहनशीलता में वृद्धि हुई। निष्कर्ष में यह सुझाव दिया गया कि जीवन कौशलों को पाठ्यचर्या में शामिल करने से किशोरों की मनोवैज्ञानिक क्षमताएं बढ़ती हैं जिससे उनका समस्यात्मक व्यवहार कम होता है।[15]

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध के निम्न प्रमुख उददेश्य हैं -

1. लक्ष्मी आश्रम कौसानी में छात्राओं द्वारा की जाने वाली गतिविधियों का अध्ययन करना
2. गतिविधियों का जीवन कौशलों के अनुसार वर्गीकरण करना
3. छात्राओं द्वारा की जाने वाली जीवन कौशल गतिविधियों का विश्लेषण करना

अध्ययन की सीमाएं :

1. केवल लक्ष्मी आश्रम कौसानी के स्कूल में अध्ययनरत

बालिकाओं का अध्ययन किया गया

2. केवल कक्षा 6 से कक्षा 12 तक की बालिकाओं पर अध्ययन किया गया

शोध पद्धति : शोध हेतु सर्वे विधि का प्रयोग किया गया। स्कूल में अध्ययनरत कुल 40 बालिकाएं आश्रम में उपस्थित थीं अतः सभी को न्यायदर्श हेतु चुना गया, जिसका विवरण इस प्रकार है .

तालिका -1

बालिकाओं का कक्षावार विवरण

कक्षा	संख्या
6	07
7	04
8	06
9	07
10	04
11	04
12	08
योग	40

तालिका 1 से स्पष्ट होता है शोध हेतु चुनी गयी बालिकाएं कक्षा 6 से कक्षा 12 तक विभिन्न कक्षाओं में अध्ययनरत हैं। उक्त सभी छात्राएं लक्ष्मी आश्रम कौसानी में रहती हैं जबकि औपचारिक शिक्षा के लिए कौसानी के निकटवर्ती माध्यमिक विद्यालय में नामांकित हैं।

प्रयुक्त शोध उपकरण :

1. जीवन कौशल प्रश्नावली

शोधकर्ता द्वारा तैयार प्रश्नावली का प्रयोग जीवन कौशल गतिविधियों के अध्ययन हेतु किया गया।

2. अवलोकन :

बालिकाओं, शिक्षकों एवं अन्य आश्रम सदस्यों से व्यक्तिगत अंतःक्रिया एवं अनौपचारिक बातचीत द्वारा अवलोकन किया गया।

विश्लेषण : वर्तमान शोध का विश्लेषण तीन चरणों में किया जिसे निम्न तालिकाओं में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 2

प्रथम चरण - गतिविधियों की पहचान

कक्षा	गतिविधियाँ
कक्षा 6 से 8	प्रार्थना, योग, स्वाध्याय, आश्रम की साफ-सफाई, शारीरिक कार्य, हस्तकला, बुनाई, सिलाई, कढ़ाई, बागवानी, सूत कताई आदि खेलकूद, पुस्तकालय जाना, टेलीविजन देखना, कंप्यूटर कक्षा, भोजन बनाना व वितरण, डायरी लेखन, अखबार पढ़ना, हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशन, शिक्षिक भ्रमण, पदयात्रा, गौपालन, घास काटना, दूध दुहना, गोबर साफ करना, टोली का नेतृत्व, संगीत, नृत्य, नाटक करना, विभिन्न धार्मिक उत्सवों का आयोजन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग
कक्षा 9-12	जूनियर वर्ग का निरीक्षण ,प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करना, जड़ी बूटी चाय बनाना व पैक करना , जूनियर वर्ग को निजी स्वच्छता संबंधी जानकारी देना, प्रार्थना ,योग, स्वाध्याय, आश्रम की साफ-सफाई, शारीरिक कार्य, हस्तकला : बुनाई, सिलाई,कढ़ाई, बागवानी, सूत कताई आदि खेलकूद, पुस्तकालय जाना, टेलीविजन देखना, कंप्यूटर कक्षा, भोजन बनाना व वितरण ,डायरी लेखन,अखबार पढ़ना, हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशन, शिक्षिक भ्रमण, पदयात्रा, गौपालन, घास काटना, दूध दुहना, गोबर साफ करना, टोली का नेतृत्व, संगीत, नृत्य, नाटक करना, विभिन्न धार्मिक उत्सवों का आयोजन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग साधना कार्यक्रम में प्रतिभाग करके महात्मा गाँधी के दर्शन व सिद्धांतों को समझना, विद्यार्थी विनिमय कार्यक्रमों में प्रतिभाग, पर्वतारोहण

तालिका - 2 में लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित विभिन्न दैनिक गतिविधियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 3

द्वितीय चरण -गतिविधियों का वर्गीकरण

जीवन कौशल	संबंधित गतिविधियाँ
निर्णय क्षमता	समूह कार्य, टोली का नेतृत्व, शैक्षिक भ्रमण, स्वाध्याय, जिम्मेदारियों का

	विभाजन, जूनियर वर्ग को निजी स्वच्छता संबंधी जानकारी देना, छात्रावास में रहना , आत्मनिर्भरता
समस्या .समाधान	समस्या सुलझाने हेतु पहल करना, यात्राएं, बागवानी, मवेशियों को चराना, समूह कार्य
पारस्परिक सम्बन्ध	विभिन्न उत्तरदायित्वों का निर्वहन, पारस्परिक सहायता , सामूहिक कार्यों में भागीदारी
आत्म जागरूकता	योग, ध्यान, स्वाध्याय, आत्म निरीक्षण, टेलीविजन देखना, डायरी व दैनिक रिपोर्ट लेखन , अखबार पढ़ना, शैक्षिक भ्रमण , विद्यार्थी विनिमय कार्यक्रमों में प्रतिभाग, पर्वतारोहण
समानुभूति	सामाजिक जागरूकता कार्यक्रमों में प्रतिभाग, जूनियर वर्ग को निरीक्षण प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करना, योग, ध्यान, स्वाध्याय, आत्मनिरीक्षण, पारस्परिक सहायता, सामूहिक कार्यों में भागीदारी, गायों एवं पौधों से प्रेम करना , समुदाय में रहना
भावनात्मक समझ	योग, ध्यान, आत्म निरीक्षण, पारस्परिक सहायता, सामूहिक कार्यों में भागीदारी, समुदाय में रहना
तनाव का सामना	योग, ध्यान, आत्मनिरीक्षण, पारस्परिक सहायता ,नृत्य, संगीत, नाटक, सामूहिक कार्यों में भागीदारी, समुदाय में रहना

तालिका - 3 में लक्ष्मी आश्रम में संचालित विभिन्न गतिविधियों का जीवन कौशलों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है जो कि विश्लेषण का द्वितीय चरण है।

तृतीय चरण : प्राप्त आंकड़ों का जीवन कौशल चरों के आधार पर विश्लेषण

तृतीय चरण में प्राप्त गुणात्मक आकड़ों का जीवन कौशल चरों के विविध आयामों के आधार पर विश्लेषण किया गया। WHO द्वारा किये गए जीवन कौशलों के वर्गीकरण के आधार पर यह देखा गया कि लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित अधिकाँश गतिविधियाँ जीवन कौशलों के अनुरूप हैं जिनका विस्तृत वर्गीकरण उपरोक्त तालिका 3 में प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष : वर्तमान शोध के दो प्रमुख उद्देश्य लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित विभिन्न गतिविधियों का अध्ययन एवं उनके जीवन कौशलों से जुड़ाव का अध्ययन करना था। आश्रम की चुनी गयी बालिकाओं से प्राप्त आकड़ों को तीन चरणों में विश्लेषित किया गया जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत हैं .

1. लक्ष्मी आश्रम कौसानी में पठन पाठन के साथ-साथ विभिन्न जीवन कौशल गतिविधियों का संचालन किया जाता है। कुछ प्रमुख जीवन कौशल गतिविधियां प्रार्थना, योग, स्वाध्याय, आश्रम की साफ-सफाई, शारीरिक कार्य, हस्तकला, बुनाई, सिलाई, कढ़ाई, बागवानी, सूत कताई, खेलकूद, पुस्तकालय जाना, टेलीविजन देखना, कंप्यूटर कक्षा, भोजन बनाना व वितरण, डायरी लेखन, अखबार पढ़ना, हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशन , शैक्षिक भ्रमण, पदयात्रा, गौपालन, घास काटना, दूध दुहना, गोबर साफ करना, टोली का नेतृत्व, संगीत, नृत्य, नाटक करना,विभिन्न धार्मिक उत्सवों का आयोजन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग, जूनियर वर्ग का निरीक्षण, प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करना, जड़ी बूटी चाय बनाना व पैक करना, जूनियर वर्ग को निजी स्वच्छता संबंधी जानकारी देना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग, साधना कार्यक्रम में प्रतिभाग करके महात्मा गाँधी के दर्शन व सिद्धांतों को समझना, विद्यार्थी विनिमय कार्यक्रमों में प्रतिभाग, पर्वतारोहण आदि प्रमुख हैं।

2. उपर्युक्त गतिविधियाँ विभिन्न जीवन कौशलों के वर्गीकरण के अंतर्गत आती हैं।
3. लक्ष्मी आश्रम कौसानी में बालिकाओं में दैनिक जीवन में संचालित गतिविधियाँ निम्न जीवन कौशलों के विकास में सहायक हैं - आत्म जागरूकता, समानुभूति, पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभावी सम्प्रेषण, विश्लेषणात्मक सोच, रचनात्मक सोच, निर्णय लेना, समस्या को सुलझाना, तनाव का सामना एवं भावनात्मक समझ।

सुझाव : लक्ष्मी आश्रम कौसानी में संचालित विभिन्न गतिविधियाँ उतराखंड एवं भारत के अन्य राज्यों में पिछड़े और ग्रामीण पृष्ठभूमि के बालक बालिकाओं को जीवन कौशल शिक्षा प्रदान करने हेतु एक मॉडल प्रस्तुत करती हैं। ये गतिविधियाँ मस्तिष्क एवं कर्मेंद्रियों के बीच एक समायोजन स्थापित करती हैं। इस प्रकार की जीवन

कौशल गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने से शिक्षा के जीवन से जुड़ाव को बढ़ाया जा सकता है। लक्ष्मी आश्रम कौसानी में प्रयुक्त जीवन कौशल गतिविधियों से अधिक आत्मविश्वासी नागरिकों का निर्माण संभव है जो व्यक्तिगत और राष्ट्रीय लक्ष्यों में बेहतर समन्वय स्थापित कर सकने में सक्षम होंगे। गतिविधि आधारित शिक्षण जीवन में बेहतर विकल्प प्रस्तुत करके जीवन कि गुणवत्ता को बढ़ाता है। अतः इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए जीवन कौशल शिक्षा के द्वारा आत्मनिर्भरता , आत्म-अनुशासन की भावनाओं का विकास किया जा सकता है। लक्ष्मी आश्रम कौसानी विद्यार्थियों के सर्वांगीर्ण विकास आधारित शिक्षा हेतु एक उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसे अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में भी लागू करने के प्रयास किया जाने चाहिए।

सन्दर्भ

1. Ross, J.S., *'Ground Work of Educational Psychology'*, George G.Harrap, London, 1951
2. National Curriculum Framework for School Education, NCERT, 2000
3. Comprehensive Life Skills Framework, UNISEF, 2012
4. Dhingra R. & K.S. Chauhan, *'Assessment of Life Skills of Adolescents in Relation to Selected Variables'*, International Journal of Scientific and Research Publications, Volume -7, Issue -8, 2017
5. Kwaja, A.,' *Teaching Life Skills to Adolescents'*, 2011 http://banjaraacademy.org/workshop
6. Desai ,M., *'A Rights-based Preventive Approach for Psychological Well Being in Childhood'*, Mumbai; Springers.10.1007/978-90-481-9066-9(crossref), 2010
7. Galagali,P.M., *'Adolescence and Life Skills'*. In R. Olyai and D.K. Dutt (Eds), Rescent Advances in Adolescent Health (pp 209-218), Jaypee Brothers Medical Publishers, Crossref (Google Scholar) 2011
8. Prajapati, R.; B. Sharma & D.Sharma, *'Significance of Life Skill Education'*, Contemporary Issues in Educatinal Research 10(1), 2017,1-6 (Google Scholar)
9. CBSE, Life Skill Education And CCE Manual, 2010
10. WHO, Life Skills Education in schools, 2010, http://whqlibdoc.who.inq/hq/1994/WHO_MNH_PSF_93.7A_Rev.2.pdf
11. Pujjar, L.L., *'Impact of Intervention on Life Skill Development among Adolescent Girls in Karnataka'*, Journal of Agricultural Science, vol-27 (1), 2014, 93-94.
12. Khera S and S Khosla, *'A Study of Core Life Skills of Adolescents in Relation to their Self Concept developed through Yuva schools Life Skill Programme'*, IRJC International Journal of Social Science & Interdisciplinary Research, Vol.1, Issue 11, November 2012, ISSN 2277 3630, 2012, Pp.115.
13. Datta S, N Majumder, *'Sex Education in the School and College Curricula: Need of the hour'*, Journal of Clinical and Diagnostic Research, 2012 September (Suppl), Vol-6 (7), 2012, pp- 1362-1364, ID: JCDR/2012/4104:242.
14. Aparna. N and A.S Raakhee., *'Life Skill Education for Adolescents: Its Relevance and Importance'*, GESJ: Education Science and Psychology, 2011, No. m 2(19), ISSN-1512-18013.,
15. Srikala B, K V Kishore Kumar., *'Empowering Adolescents with Life Skills Education in Schools -School Mental Health Program: Does it work?'* Indian Journal of Psychiatry. 2010. 52-4: 344-349.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

1767 से 1857 तक छोटा नागपूर क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासनिक प्रसार

❑ डॉ. योगेश कुमार

छोटानागपूर में अंग्रेजों का प्रवेश संक्रमण काल की तरह ही है। छोटानागपूर का क्षेत्र जनजातियों का एक समृद्ध क्षेत्र रहा है। छोटानागपूर के क्षेत्र में नये लोगों का आगमन पहले से ही जारी था, छोटानागपूर के क्षेत्र में अंग्रेजों के प्रवेश ने एक नई व्यवस्था को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत बाद के वर्षो में एक टकराव की स्थिति को उत्पन्न किया और यहाँ विद्रोह हुऐ।[1] अठारवहवीं शताब्दी के दौरान, क्षेत्रीयता को प्रभावशाली शक्ति के रूप में पेश किया गया है। ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभाव ने एक नई क्षेत्रीय राज्य व्यवस्था को जन्म दिया। आंद्रे विन्क और सी0 ए0 बेली जैसे इतिहासकारों का मानना है कि मुगल शासन के क्षय ने उस व्यवस्था को मजबूत किया जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपनाना चाहती थी। मुजफ्फर आलम की पुस्तक ''दि क्राइसिस ऑफ एम्पायर इन मुगल नॉर्थ इंडिया : अवध एंड दि पंजाब (1707-1748)'' में भी उन्होंने उन ताकतों का वर्णन किया है, जिसके अन्तर्गत प्रशासनिक व्यवस्था ने नये रोष को जन्म दिया और बाद में विद्रोह हुए। अलग-अलग क्षेत्रों में स्थानीय राज-व्यवस्था की नींव पड़ी और अंग्रेजों ने उनका उपयोग कर भरपूर सहयोग लिया, नयी प्रशासनिक व्यवस्था कायम करने में अठारहवीं शताब्दी के क्षेत्रीय राज्यों में ईस्ट इंडिया कंपनी के हस्तक्षेप से व्यवधान पैदा हुआ, कंपनी ने स्वयं को क्षेत्रीय शक्ति के रूप में ढाला और 1790 के दशक के बाद वह इतनी शक्तिशाली हो गयी कि वह राजनैतिक घटनाक्रमों पर प्रभुत्व जमाने लगी।[1]

> छोटानागपूर में अंग्रेजों का प्रवेश संक्रमण काल की तरह ही है। छोटानागपूर का क्षेत्र जनजातियों का एक समृद्ध क्षेत्र रहा है। छोटानागपूर के क्षेत्र में नये लोगों का आगमन पहले से ही जारी था। छोटानागपूर क्षेत्र में अंग्रेजों के आगमन ने जनजातीय क्षेत्रों में एक नई प्रशासनिक व्यवस्था को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत बाद के वर्षो में एक टकराव की स्थिति पैदा हुई और यहाँ विद्रोह की शुरूआत हुई। अठारवहीं शताब्दी के दौरान क्षेत्रीयता को प्रभावशाली शक्ति के रूप में पेश किया गया है। ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभाव ने एक नई क्षेत्रीय राज्य व्यवस्था को जन्म दिया।

इसके परिणामस्वरूप लॉर्ड वेलेजली के आगमन और उसके बाद कठोर सामाजिक सुधारों के साथ-साथ एक नई शाही प्रकृति पैदा हुई। सामाजिक और राजनैतिक मामलों में कंपनी के हस्तक्षेप के कारण शासकों और शासितों के बीच दूरियां बढ़ती गयीं। इसकी पराकाष्ठा के कारण 1857 का महान विद्रोह देखने को मिला।[2]

1761 तक मुगल साम्राज्य नाममात्र के लिए साम्राज्य रह गया था। उसके कमजोर होने के फलस्वरूप स्थानीय राजाओं ने स्वाधीनता के दावे को प्रस्तुत किया, फिर भी प्रतीक के रूप में मुगल बादशाह की सत्ता जारी रही थी। अभी भी उसे राजनीतिक वैधता का स्रोत माना जा रहा था। नये राज्यों ने सीधे उसकी सत्ता को चुनौती नहीं दी, और अपने शासन के औचित्य के लिए लगातार उसका अनुमोदन चाहते रहे। शासन के अनेक क्षेत्रों में इन राज्यों ने मुगल संस्थाओं और प्रशासन तंत्र को जारी रखा। परिवर्तन जहां आए और निश्चित तौर पर आए वहां से अपेक्षाकृत धीरे-धीरे क्षेत्रों में शक्ति के बदले हुए संबंधों को समायोजित करते हुए आए। अठारहवीं सदी में इन राज्यों का उदय था। राजव्यवस्था के पतन की बजाय उसका रूपांतरण शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सूचक था, न कि शक्ति के शून्य या राजनीतिक अव्यवस्था का। ये नये राज्य विभिन्न प्रकार के थे और उनका अलग-अलग इतिहास था। उनमें से कुछ की स्थापना मुगलों के सूबेदारों ने की, कुछ की मुगल साम्राज्य से विद्रोह करने वालों ने और कुछ थोड़े से राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता का दावा प्रस्तुत किया, वे वहीं राज्य थे जो पहले से स्वतंत्र मगर निर्भर राज्यों की तरह काम करते आ रहे थे।[3] 1717 में मुर्शिद कुली खां के सूबेदार बनने के बाद बंगाल सूबा या प्रांत मुगलों के

❑ रिसर्च फैलो, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

नियंत्रण से धीरे-धीरे स्वतंत्र होता गया। औरंगजेब ने आरंभ में उसे राजस्व प्रशासन का चुस्त-दुरूस्त बनाने के लिए बंगाल का दीवान (राजस्व का संग्राहक) नियुक्त किया था। 1717 में जब उसे बंगाल का नाजिम (सूबेदार) बना दिया गया, तो उसे एक ही साथ नाजिम और दीवान जैसे दो पद संभालने का अभूतपूर्व विशेषाधिकार मिल गया। ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार कई वर्षों तक एक भारतीय शासक की तरह काम करती रही थी। इस अर्थ में कि उसने मुगल बादशाह की सत्ता को स्वीकार किया उसके नाम से सिक्के ढालती रही। राजभाषा के रूप में फारसी का प्रयोग करती रही स्वयं लॉर्ड क्लाइव ने व्यावहारिकता के तौर पर 'दोहरी सरकार' की एक व्यवस्था की अनुशंसा की थी, जिसके अन्तर्गत फौजदारी न्याय की व्यवस्था को अधिकारियों के हाथों में छोड़ दिया था, जबकि दीवानी और वित्तीय विषयों पर कंपनी का नियंत्रण होता था।[4] शासन में न्यूनतम हस्तक्षेप की कंपनी की यह नीति नागरिक उथल-पुथल से बचने के लिए एक कारगार कदम था अंग्रेज प्रशासन का परन्तु इसके बाद कंपनी के अधिकारियों से प्रशासन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का योगदान बढ़ता गया और उनके नियंत्रण में प्रशासन आता गया। प्रशासनिक तौर पर इसका आंग्लीकरण शुरू हुआ और वे प्रशासनिक स्तर पर मजबूत होते गये। एरिक स्टोक्स के अनुसार, ईस्ट इंडिया कंपनी के भारतीय प्रशासन में दो सुस्पष्ट प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे उभर रही थीं, एक ओर तो कॉर्नवालिस की व्यवस्था थी जो बंगाल केंद्रित थी और मुख्यतः इस्तमरारी या स्थायी बंदोबस्त पर आधारित थी। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने इस्तमरारी बंदोबस्त का आरंभ इस आशा से किया था कि कानून का शासन और निजी संपत्ति के अधिकार वैयक्तिक उद्यमशीलता को रीति रिवाजों की जकड़न से मुक्त करेंगे और समाज व अर्थव्यवस्था को आधुनिक बनाएंगे। परन्तु कॉर्नवालिस की व्यवस्था ने भारतीय परंपरा और अनुभवों पर ध्यान नहीं दिया था। ऐसा नहीं है कि वे लोग कानून के शासन या शक्तियों के पृथक्करण के विरोधी थे। उनकी सोच यह थी कि ऐसे सुधारों में भारतीय संदर्भ के अनुसार बदलाव आवश्यक थे।[5] 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने के बाद अधिक से अधिक मालगुजारी वसूल करना भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन की प्रमुख चिंता रही थी। खेती अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी, वह आय का प्रमुख स्रोत थी और इस कारण वसूली बढ़ाने के लिए मालगुजारी में नये-नये ढंग से प्रयोग किये गये, हालांकि नवाबी प्रशासन मुहम्मद रजा खां के हाथों में ही रहा जो कंपनी के नायब दीवान का काम करता रहा। अंग्रेजों को वसूली के अन्तर्गत कोई अड़चन नहीं आये इसके लिए आवश्यक कदम उठाने को तैयार रहते थे। वसूली के लिए देसी अधिकारी को रखा जाता था। परन्तु कंपनी के अधिकारियों को उन पर निगरानी रखने का अधिकार दिया गया। अंग्रेजों का शासन स्थानीय स्थिति से अनभिज्ञ था उनकी इसी अज्ञानता ने कुछ वर्षों के अंदर ही व्यवस्था में व्यापक बदलाव किया और सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी।[6]

बंगाल के नवनियुक्त गवर्नर वॉरेन हेस्टिंगज की इच्छा थी कि मालगुजारी प्रशासन को भारतीयों से एकदम मुक्त कराकर अंग्रेजों को प्रांत के संसाधनों का एकमात्र नियंत्रक बना दिया जाए। अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत कंपनी चाहती थी कि सारे अधिकार उनके अधिकार क्षेत्र में हो इस कारण 1769-70 के बंगाल के अकाल के बाद एक नयी व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। 1772 ई. में फर्मिंग के नाम पर एक नयी व्यवस्था को लागू किया गया, जिलों के यूरोपीय कलेक्टरों को अब मालगुजारी की वसूली का कार्यभार दे दिया गया, प्रशासन ने यह बड़ी ही चालाकी से वसूली का अधिकार सबसे बड़ी बोली लगाने वालों को दिया जाने लगा। बंदोबस्तों में राजस्व के अधिक प्रयोगों ने अंग्रेजी व्यवस्था की मुश्किलों को बढ़ाया। उत्पादन की चिंता के बिना अधिक वसूली की कोशिश होती थी। बंदोबस्ती ने किसानों को तोड़कर रख दिया था।[7]

1765 में कंपनी ने दीवानी अधिकार अपने हाथों में लिया तब से वह राजस्व व्यवस्था को बढ़ाना चाहती थी, कंपनी इस मामले में लगातार प्रयोग कर रही थी, इसमें सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन वार्षिक नीलामी के आधार पर बंदोबस्ती की गयी जिसके अन्तर्गत राजस्व की वसूली अधिक हो। 1765-66 और 1768-69 के बीच भू-राजस्व की वसूली में 53.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[8]

बंदोबस्त का तत्कालीन प्रभाव यह हुआ कि इससे स्थायी राजस्व सुनिश्चित हो गया। दीर्घावधि में यह अधिक फायदेमंद नहीं रहा क्योंकि कुछ राजस्व में से सरकार का हिस्सा कम होने लगा था। राजस्व की मांग जो 1793 में किराये की 90 प्रतिशत नियत थी उसमें उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक 28 प्रतिशत की कमी आ गई। बंगाल मॉडल के राजस्व वसूली को उड़ीसा और असम में भी अपनाया

गया था। ग्रामीण समाज में नये लोगों की घुसपैठ ने एक आक्रोश को जन्म दिया जो बाद के वर्षों के अन्तर्गत विद्रोह के रूप में सामने आया।[9] अफ्रीका के एक भिन्न औपनिवेशिक संदर्भ में इसी तरह के साम्राज्य पर विचार करते हुए कॉरेन फील्ड्स सस्ते से सत्ता की जरूरत के रूप में इसकी व्याख्या करते हैं। औपनिवेशिक राज्य में परोक्ष शासन की जो लाभप्रदत्ता थी वह प्रत्यक्ष वित्तीय एवं वाणिज्यिक लाभों से भिन्न कोटि की थी। इसका सर्वाधिक प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि स्थानीय धर्मतंत्र के सहयोजन के जरिये और बिना किन्हीं अतुवर्ती कठिनाइयों अथवा प्रशासनिक खर्च के एक विशाल क्षेत्र का राजनीतिक संगठन हो गया। अतः ब्रिटिश औपनिवेशिकों का विस्तार एक लाभप्रद सौदे के रूप में सामने आया।[10]

छोटानागपूर का क्षेत्र एक जनजाति बहुल क्षेत्र था जहाँ जनजातियों के अनेक समुदाय निवास करते थे, यहाँ अलग-अलग राजवंशों ने अपनी सत्ता को स्थापित किया था, उनके राजवंशों का प्रभाव इस क्षेत्र में रहा था, जिन्होंने इस क्षेत्र पर अधिपत्य जमाना चाहा परन्तु संपूर्ण क्षेत्र उनके अधिपत्य में नहीं आ सका। छोटानागपूर के इतिहास को 9वीं शताब्दी से देख जाता है, जब नागवंशियों का आगमन इस क्षेत्र में हुआ और उन्होंने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था को लागू किया।[11]

छोटानागपूर में बाहर से आने वाले लोगों का एक खास दबाव बनता जा रहा था और सब अपने को यहां स्थापित करना चाहते थे। जनजातियों के साथ उन्होंने आपसी संबंध को मजबूत किया और फिर यहां पर बसते चले गये। छोटानागपूर का क्षेत्र जनजातियों का प्रमुख निवास स्थल था और प्राचीन समय से वह यहां रहते आ रहे थे। **जे0 रीड़** की सेटेलमेंट रिपोर्ट में दसवीं शताब्दी से छोटानागपूर में नागवंशों के प्रभाव को उल्लेखित किया गया है, क्योंकि यहीं वह समय था जब बाहर के लोगों का आगमन इस क्षेत्र में हो रहा था।[12]

छोटानागपूर के क्षेत्र में अंग्रेजो का आगमन भी उसी प्रकार से हुआ था, जैसे अन्य राजवंशों ने इस क्षेत्र पर अधिकार जमाना चाहा था। उजाड़ या जंगल से संबंधित होना प्राचीन काल से लेकर अठारवीं सदी तक निश्चित रूप से हीनता की बात मानी जाती थी क्योंकि औपनिवेशिक काल के इतिहासकारों ने बाद में इसे अलग-अलग तरीकों से लेखबद्ध किया और दिखाया कि पहले का इतिहास कुछ नहीं था, औपनिवेशिक काल में जो भी व्याख्या की गयी जो हम आज भी कर रहे हैं। जंगल के मनुष्यों को बर्बर ही दिखाया गया और आज भी कुछ यही स्थिति हैं। औपनिवेशिक प्रशासनों ने उपनिवेश पूर्व व्यवस्थाओं जो समान रूप से गतिशील और असंहिताबद्ध थी उसी का अवलोकन किया गया। ब्रिटिश परंपरा और यूरोपीय परंपरा के भीतर ही सभ्यता को समझा गया। सभ्यता को परिभाषित यूरोपीय विचारधारा के अन्तर्गत किया गया। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल ने आदिम सभ्यता को नष्ट करने में सबसे अहम भूमिका अदा की।[13]

छोटानागपूर का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। छोटानागपूर क्षेत्र में अंग्रेजों के आगमन का मार्ग मराठा के आक्रमणों के द्वारा प्रशस्त हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (राजस्व के प्रशासनिक अधिकार) मिले। ईस्ट इंडिया कंपनी के अनुसान छोटानागपूर बिहार का भाग था, अतः उन्हें उम्मीद थी कि इस क्षेत्र के बारे में अंग्रेजों को पूर्ण जानकारी नहीं थी क्योंकि इस क्षेत्र के राजा अपने स्वतंत्र राज्य के अधिकारी थे और उन्होंने बाहरी आक्रमणकारी मुगल और मराठों को कभी कर देना स्वीकार नहीं किया था। अंग्रेजी शासकों को छोटानागपूर की भौगोलिक जानकारी भी ठीक से नहीं थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक शेरघाटी से पंचेत तक को क्षेत्र मानचित्रों में नामरहित ही दर्शाया गया है। छोटानागपूर में अंग्रेजों का प्रवेश एक नयी प्रशासनिक और आर्थिक नीति का समयोजन था जिससे होने वाले प्रभावों से यहाँ के निवासियों ने बाद में विद्रोह भी किया।[14]

छोटानागपूर में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रवेश के कई कारण थे। छोटानागपूर से होकर बनारस तक का मार्ग कंपनी के व्यापार के नये मार्ग खोलता जिस के कारण वह इस क्षेत्र से आकर्षित हुए थे। छोटानागपूर के क्षेत्र को भौगोलिक स्थिति की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए 1766 ई. में बंगाल इंजीनियर्स के डूग्लोंस को छोटानागपूर में विशेष तौर पर भेजा गया।[15]

छोटानागपूर में अंग्रेजों का प्रवेश सबसे पहले सिंहभूम की ओर से हुआ था। 1760 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी का कब्जा मिदनापुर के क्षेत्रों में हो गया था, इसी समय अंग्रेजों ने अपने राज्य विस्तार की नीति के फलस्वरूप सिंहभूम सहित अन्य सीमावर्तो क्षेत्रों में अपने प्रभाव नीति को कार्यनियोजित किया। 1766 ई. में अंग्रेजों ने सिंहभूम के शासकों पर कर की अदायगी करने के लिए दबाव बनाया जिसको कि सिंहभूम राज्य के शासकों ने अस्वीकार

कर दिया जिसके फलस्वरूप, जनवरी 1767 ई. में फरर्गुसन के नेतृत्व में अंग्रेजों ने सिंहभूम पर आक्रमण किया। मिदनापुर से चलकर फरर्गुसन ने पहले झाड़ग्राम के राजा को पराजित किया। इस कारण उस क्षेत्र के अन्य राजाओं ने कंपनी सरकार की आधीनता स्वीकार कर ली। इसमें रामगढ़ लालगढ़, जामबनी तथा झालदा के शासक वर्ग थे।[16]

फरर्गुसन को उम्मीद थी कि वह सिंहभूम पर कब्जा कर लेगा। परंतु ढालभूम के राजा ने अंग्रेजों का विरोध किया था। ढालभूम के राजा ने किसी बाहरी ताकत को ढालभूम में प्रविष्ट नहीं करने की घोषणा की। ढालभूम के राजा को कंपनी ने पराजित कर दिया। 3500 रूपये वार्षिक कर के बदले में ढालभूम के राजा ने कंपनी की अधीनता स्वीकार कर ली। राजा को बंदी बनाकर मिदनापुर भेज दिया गया और उसके भतीजे जगन्नाथढाल को राजा बना दिया गया। जून 1768 को ढालभूम क्षेत्र में अशांति फैली क्योंकि यहाँ के राजा ने कंपनी शासन के अन्तर्गत अपने को स्वतंत्र करने की कोशिश की इस विरोध को दबाने के लिए कंपनी सरकार ने लेफ्टिनेंट रूक को भेजा।[17]

लेफ्टिनेंट रूक ढालभूम में कंपनी के विरोध को दबाने में असफल रहा। रूक के असफलता के बाद कैप्टन चार्ल्स मॉरगन को ढालभूम में भेजा गया। परंतु उसके ढालभूम में आने के बाद उसने पाया कि कंपनी को यहाँ भारी विरोध का सामना करना पड़ रहा है। मॉरगन ने अपने रिपोर्ट में ढालभूम के विरोध का व्यापक उल्लेख किया है। ढालभूम के निवासी पूरी तरह कंपनी के खिलाफ थे।[18]

जगन्नाथ ढाल ने कंपनी सरकार के खिलाफ विरोध जारी रखा। 1777 तक वह लड़ता रहा। अंततः उसी वर्ष कंपनी को जगन्नाथ ढाल को ढालभूमि का राजा मानना पड़ा। तीन वर्षो के लिए कंपनी सरकार ने कर का निर्धारण किया जिसे जगन्नाथ ढाल ने स्वीकार कर लिया। सन् 1800 ई. में ढालभूम का सालना कर स्थायी तौर पर 4267/- रूपया तय कर दिया गया।[19]

सिंहभूम के अन्य क्षेत्र भी कंपनी सरकार को साम्राज्यवादी नीति से अशांत हुए। 1773 ई. में कंपनी ने अपने व्यवसायिक हितों की रक्षा के लिए पोरहट राज्य में हस्तक्षेप किया। मामला था नमक के व्यापारी मिदनापुर से नमक न लेकर उड़ीसा से ले रहे थे, जो उन दिनों मराठों के अधीन था, नमक को वे सिंहभूम होकर पार कर लेते थे जिसे पोरहट का संरक्षण प्राप्त था। इससे कंपनी को राजस्व की हानि होतो थी।[20]

इस मामले में कंपनी के एक अधिकारी फोरबिस ने पोरहाट के राजा को एक समझौता करने को बाध्य किया कि वह कभी भी कंपनी क्षेत्र के रैयतों और व्यापारियों को अपने राज्यों में शरण नहीं देगा। 1793 ई. सरायकेला और खरसावां के शासकों को भी ऐसी ही संधि करनी पड़ी और कंपनी को आश्वासन देना पड़ा कि वे अपने राज्य क्षेत्र में कंपनी विरूद्ध कार्य नहीं होने देंगे।[21]

पोरहाट के राजा घनश्याम सिंह ने 1 फरवरी 1820 को कंपनी की अधीनता स्वीकार की थी, उसने कंपनी को 1818 से ही सालना 1100 रूपये कर देना स्वीकार किया। पोरहाट का राजा इस संधि के फलस्वरूप अपने तीन अपने उद्देश्यों को पूरा करना चाहता था। घनश्याम सिंह सरायकेला-खरसावां पर अपनी संप्रभुता स्थापित करना चाहता था। पोरहाट का शासन सरायकेला के शासक से अपनी कुल ''देवी-पौरी देवी'' की मूर्ति को हासिल करना चाहता था और वह 'हो' लोगों पर अपनी सत्ता कंपनी सरकार की मदद से स्थापित होना चाहता था। हो लोगों का क्षेत्र सिंहभूम का एक भाग था। वह कोल्हान के नाम से विख्यात था। इसे हो जाति का देश कहा जाता था। हो लोग इस क्षेत्र में प्राचीन समय से रहते आ रहे थे और किसी अन्य शासक ने उन पर कभी भी अपना अधिकार नहीं जमा पाया। मुगलों और मराठों के प्रभाव से भी यह क्षेत्र मुक्त रहा। सिंह राजाओं का इन पर प्रभाव जरूर था परन्तु हो लोग कोई कर नहीं देते थे। कंपनी काल में इन्हें 'लड़ाका' कोल का नाम दिया था, क्योंकि ये हमेशा युद्ध प्रवृत्ति के थे।[22]

सिंहभूम क्षेत्र के राजाओं ने समय-समय पर ही लोगों का उपयोग अपने शत्रुओं के खिलाफ किया था। हो लोग किसी राजा के पक्ष में नहीं रहते थे। ये लोग अलग-अलग राजाओं के पक्ष में हो जाते थे। हो लोगों ने छोटानागपूर खास के क्षेत्रों पर आक्रमण किया था क्योंकि छोटानागपूर के महाराजा ने 1770 ई. में और बाद में 1800 ई. में कोल्हान पर आक्रमण किया था। कंपनी सरकार कोल्हान पर अधिकार करना चाहती थी परंतु कंपनी सरकार इसमें सफल नहीं हो पायी। 1820 ई. में पोलिटिकल एजेंट मेजर रफरेज ने स्वयं एक सेना लेकर कोल्हान से घुसना चाहा परंतु वह सफल नहीं हो सका। कोल्हान का क्षेत्र अशांत ही रहा क्योंकि हो लोग सिंहभूम राजाओं के अधीन रहना नहीं चाहते थे। साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी

में गवर्नर जरनल के एजेंट मेजर टी.एस. विलकिंसन की सलाह पर 1836 ई. के अंत में कंपनी फौज कोल्हान में प्रविष्ट हुई। चार माह के संघर्ष के बाद हो लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया और सरकार को कर देने के लिए तैयार हुए।[23]

सिंहभूम में कंपनी सरकार को 1767 ई. में प्रारंभिक सफलता मिलने के बाद, कंपनी सरकार का ध्यान छोटानागपूर के अन्य क्षेत्र की ओर गया। पलामू छोटानागपूर खास हजारीबाग तथा सरायकेला-खरसावां में अपना पैर जमाना चाहा। पलामू का क्षेत्र सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था पलामू के शासकों की आपसी दुश्मनी कंपनी के लिए लाभकारी सिद्ध हुई। 1770 ई. में सतबरवा के निकट चेतमा की लड़ाई हुई जिसमें पलामू शासक जय कृष्ण राय को पराजित कर मार डाला गया। इसका लाभ कंपनी ने उठाया। कलकत्ता स्थित कंपनी के अधिकारियों ने पटना काउंसिल को स्पष्ट निर्देश दे रखा था कि पलामू विजय के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाये। कंपनी का प्रमुख उद्देश्य था, पलामू किला पर कब्जा करना।[24]

पटना कांउसिल पलामू पर संभावित हमले के लिए सभी तैयारियाँ कर रही थी। कैप्टन जैकब कैमक को पलामू अभियान का इंचार्ज बनाया गया था। 1 जनवरी 1771 ई. को औरंगाबाद पहुँचकर उस क्षेत्र में दूसरे अंग्रेजी अधिकारियों के साथ मिलकर अधिक से अधिक सेना को पलामू की सीमा में एकत्रित किया। 19 जनवरी को पटना काउंसिल से आदेश मिलने के बाद आक्रमण की रणनीति अपनायी गयी।[25]

पलामू के किले पर कंपनी के अधिकार की निश्चित तिथि में मतभेद है। 20 फरवरी 1771 ई. को कैमक का अधिकार पलामू के किले पर हुआ था, परंतु सिताब राय के समकालीन प्रमाणों के आधार पर इसे 21 मार्च 1771 ई. दिखाया जाता है। पलामू विजय के बाद उस क्षेत्र में शांति व्यवस्था कायम की गयी और 1 जुलाई 1771 ई. को गोपालराय को पलामू को 3 साल की सालना मालगुजारी 12 हजार रूपये निश्चित की गयी। इस प्रकार कंपनी ने अपने को मजबूत किया और पलामू पर कंपनी का अधिकार हो गया, जो सामाजिक दृष्टि से कंपनी के लिए अहम थी, क्योंकि यहाँ से नागपूर और सरगुजा से आक्रमण करने वाले मराठों पर कार्यवाही करने के लिए पलामू को एक रक्षा पंक्ति के रूप में उपयोग किया जा सकता था। छोटानागपूर खास में कंपनी अपना अधिकार चाहती थी और उसको सफलता भी मिली। छोटानागपूर के क्षेत्र में कंपनी का अधिकार बिना किसी संघर्ष के हो गया, क्योंकि कंपनी ने इस क्षेत्र में नागवंशियों से एक समझौते के फलस्वरूप कंपनी की पकड़ मजबूत हो गयी। उन दिनों छोटानागपूर खासकर नागवंशी महाराज दर्पनाथ शाह था। इस क्षेत्र पर उसने अपना एकछत्र शासन स्थापित किया था।[26]

1770 ई. में दर्पनाथ शाह ने राज्य विस्तारवादी नीति के फलस्वरूप कोल्हान पर भी आक्रमण करने के प्रयास किया परंतु वह सफल नहीं हो सका। कोल लड़कों ने दर्पनाथ शाह की सेना को युद्ध में पराजित किया और उन्हें मजबूरन अपने नागवंशी क्षेत्र में लौटना पड़ा, नागवंशियों को युद्ध में भारी नुकसान उठाना पड़ा। कई सौ लोग मारे गये। कोलों के द्वारा नागवंशी प्रदेशों पर भी आक्रमण किया गया कई गांवों को उन्होंने नष्ट कर दिया। नागवंशी राज्य का दक्षिण भाग कोल लड़ाकों के कारण लगातार अशांत क्षेत्र रहा, जिससे दर्पनाथ को कठिनाई बढ़ती गयी और इसके कारण प्रशासनिक समस्या भी बीच-बीच में उत्पन्न हुई।[27]

छोटानागपूर खास में नागवंशी अपने को मजबूत स्थिति में रखना चाहते थे। रामगढ़ का राजा मुकुन्द सिंह भी दर्पनाथ शाह का विरोधी था, क्योंकि नागवंशी मुगल अधिकारियों को अपना सालना कर रामगढ़ के राजा के द्वारा दिया करते थे, बकाये कर की वसूली के लिए मुकुन्द सिंह नागवंशी क्षेत्रों पर आक्रमण कर देता था। इन सब परिस्थितियो ंको ध्यान में रख कर दर्पनाथ ने अपने वकील को जैकब कैमक से मिलने पलामू भेजा। पलामू विजय के बाद छोटानागपूर के राजा जमींदार जैकब कैमक से मिलते रहे थे। दर्पनाथ शाह ने सतबरवा में जाकर कैमक से मुलाकात की और अपने राज्य की परिस्थितियों की चर्चा की। दर्पनाय शाह ने बाद में कंपनी की अधीनता को स्वीकार कर लिया था और 12000/- रूपया सालना कर को भी देना नागवंशियों ने स्वीकार किया था। उसने मराठों के विरूद्ध कंपनी सरकार को सहायता देने का वचन दिया।[28]

जैकब कैमक दर्पनाथ शाह के समर्पण और मित्रता को कंपनी सरकार के लिए महत्वपूर्ण मानता था क्योंकि नागवंशी राजा से मित्रता के फलस्वरूप मराठों के मार्ग इस क्षेत्र में अवरूद्ध हो गये थे और उड़ीसा और पश्चिम को छोड़कर कोई अन्य मार्ग नहीं था। जैकब कैमक यह

भी जानता था कि पलामू और छोटानागपूर के नागवंशी की सहायता के फलस्वरूप वह रामगढ़ के राजा मुंकुद सिंह को भी पराजित कर देगा।[29]

अंग्रेज इस क्षेत्र पर अधिकार की रणनीति पहले से ही बना रहे थें कंपनी 1767 से ही जंगल महल के लोगों को अधिकार में रखने का प्रयास मिदनापुर से ही किया जा रहा था, परंतु इस क्षेत्र में सफलता सिंहभूम के प्रारंभिक प्रवेश के बाद ही हो सकी। रामगढ़ के राजा के अन्तर्गत हजारीबाग का क्षेत्र आता था और नागवंशी भी रामगढ़ के राजा से आक्रांत थे। वह नागवंशी क्षेत्रों पर आक्रमण कर देता था, इस कारण नागवंशी भी जानते थे कि मुकुन्द सिंह प्रभावशाली राजा था। जैकब कैमक मुकुन्द सिंह के खिलाफ गया जिला स्थित फतेहपुर के जमींदार बहादुर सिंह को उकसाने पर मुकुन्द सिंह के एक संबधी ठाकुर तेज सिंह ने रामगढ़ की गद्दी पर अधिकार जताया। इस कार्य में कैमक का हाथ था। तेज सिंह का प्रभाव रामगढ़ की सेना में भी था। इससे मुकुन्द सिंह की स्थिति कमजोर हो गयी।[30]

1772 में मुकुन्द सिंह पर आक्रमण किया गया जिससे कैमक की सहायता के लिए मुंगेर से कैप्टन इवेंस सिपाहियों के साथ पहुँचा। रामगढ़ पर आक्रमण दो तरफ से हुआ। छोटानागपूर खास की ओर से कैमक और इवेंस तथा रामगढ़ पर अधिकार कर लिया गया। तेज सिंह को रामगढ़ की मालगुजारी वसूलने का दायित्व सौंपा गया परंतु उसे राजा की पदवी नहीं प्रदान की गयी।[31]

रामगढ़ की मालगुजारी सलाना तीस हजार रूपये निर्धारित की गयी। रामगढ़, पलामू और छोटानागपूर खास को मिलाकर 1773 में एक जिले का निर्माण किया गया, जिसे जैकब कैमक के अधीन रखा गया।[32]

मुकुन्द सिंह भाग कर पंचेत चला गया और वहाँ के कलेक्टर हिटली के संरक्षण में रहा, लेकिन सरकार से आदेश के मिलने के बाद उसे बंदी बनाकर पटना ले जाया गया।[33]

1774 में तेज सिंह को विधिवत् रामगढ़ का राजा घोषित कर दिया गया, गवर्नर जनरल के द्वारा उसे खिल्लत भी बख्शी गयी।[34]

ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रवेश सिंहभूम के क्षेत्र से हुआ था। परंतु कंपनी पूरे छोटानागपूर क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमाना चाहती थी। छोटानागपूर क्षेत्र में कंपनी एक ठोस प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य कर रही थी, वह धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाती जा रही थी, कंपनी के प्रवेश के समय झरिया, कतरास, रघुनाथपुर, झालदा, ईचागढ़, बलरामपुर, हेसला, बालमुंडी, पंचेत, सुपुर, चतरा, तथा बड़ाभूम का क्षेत्र प्रमुख जमींदारियों का क्षेत्र था। फरर्गुसन ने 1767 में जब सिंहभूम में प्रवेश किया था, उस समय मानभूम, बडाभूम, सुपूर, चतरा, अभियनगर के जमींदार शक्तिशाली थे, कतरास, ईचागढ़ तथा पंचेत के जमींदारों को राजा कहा जाता था।[35]

बंगाल की सीमा में लगे रहने के कारण संपूर्ण मध्यकाल में मानभूम के राजा तथा जमींदार लगभग स्वतंत्र हो गये थे। मानभूम में चुहाड़ो द्वारा अशांति को स्थिति पैदा कर दी गयी थी, चुहाड़ो के द्वारा कंपनी सरकार का विरोध किया गया। अतः कपंनी सरकार को लंबे समय तक विरोध का सामना करना पड़ा था। मानभूम में अंग्रेजों को प्रवेश करने में दो दशक का समय लगा, जब 1783-84 में मेजर क्रॉफोर्ड झालदा के राजा मंगल सिंह को गिरफ्तार करने में सफल हो सका।[36] इंस्ट इंडिया कंपनी का सिंहभूम के अधिकांश क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित नहीं हो सका। ब्रिटिश भारत की 560 से अधिक देशी रिसायतों में बिहार में केवल यहीं दो रियासतों थीं, जिन पर अंग्रेजों को सीधा अधिकार संभव नहीं हो सका।[37]

1770 ई. में सरायकेला राज्य का संपर्क अंग्रेजों के साथ हुआ था। 1803 के अंग्रेज मराठा युद्ध के समय गवर्नर जनरल ने सरायकेला के राजा अभिरमा सिंह से मराठा युद्ध में सहायता करने के फलस्वरूप उसे वार्षिक लगान से कर मुक्त कर दिया था। लॉड मिन्टों ने राजा की स्वतंत्रता को स्वीकार किया था। जुलाई 1820 ई. में सरायकेला के राजा की सहायता से ही तमाड़ विद्रोह के विद्रोही नेता 'रून्दन' को पकड़ा जा सकता था।[38] छोटानागपूर क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कंपनी को पदस्थापित होने में सात दशक का लम्बा समय लग गया, छोटानागपूर खास में कंपनी का अधिकार जल्दी हो गया, परंतु 45 वर्षो से अधिक समय लगा, कंपनी को अपना आधिपत्य स्थापित करने में 1765-1820 ई. तक संपूर्ण छोटानागपूर पर अधिकार हो गया। कोल्हान पर अधिकार करने में कंपनी सरकार को भारी विरोध का सामना करना पड़ा। 1837 तक कोल्हान पर कंपनी का अधिकार रहा। ईस्ट इंडिया कंपनी एक सोची समझी रणनीति के तहत छोटानागपूर क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमाने में सफल हुई।[39]

छोटानागपूर में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से यहाँ

एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। इस क्षेत्र में असंतोष की व्यवस्था उत्पन्न हो गयी थी। छोटानागपूर का क्षेत्र प्राचीन काल से ही जनजातियों का क्षेत्र रहा था। इनका बाहरी संस्कृतियों से कभी विरोधात्मक तो कभी सहयोगात्मक संपर्क रहा था, परंतु अंग्रेजों के आगमन के बाद उनका संपर्क एक आक्रमक संस्कृति पर हुआ जो उनके क्षेत्रों में अपना एकाधिकार चाहता था। इसके साथ ही जनजातियों को अपनी स्वतंत्र पहचान, संस्कृति के लिए अंग्रेजी राजतंत्र खतरा बनकर इस क्षेत्र में आया। औपनिवेशिक व्यवस्था जनजातियों के लिए नई त्रासदी सिद्ध हुई। इसका एक जनव्यापक प्रभाव जनजातियों के समुदायों में पड़ा और उन्होंने इस क्षेत्र में इसके विरूद्ध व्यापक विरोध करना शुरू किया। कोल्हान के क्षेत्र में कोल लड़ाकों ने अपने विरोध को प्रकट किया और अंग्रेजों से संघर्ष किया भी और अपने क्षेत्र में घुसने नहीं दिया था। इस कारण कोलों ने इसका पूरी तरह प्रतिकार किया। अनुपातिक एकात्मकता, भूमि स्वामित्व और सामाजिक संरचना की तुलनात्मक अक्षुणता के कारण किसानों सहित किसी अन्य वर्ग की तुलना में व्यापक और हिंसक विद्रोह हुए।[40]

छोटानागपूर में अंग्रेजों का प्रवेश सर्वप्रथम सिंहभूम मानभूम क्षेत्र की ओर से हुआ था, इसके कारण प्रथम विद्रोह इसी क्षेत्र में हुआ कंपनी सरकार का व्यापक विरोध किया गया। 1767 ई. में अंग्रेजों के सिंहभूम में प्रवेश के बाद अपदस्थ राजा जगन्नाथ ढाल के नेतृत्व में व्यापक ढाल विद्रोह हुए।[41]

ईस्ट इंडिया कंपनी छोटानागपूर और इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहती थी। उसने न केवल प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन लाया बल्कि उसने न्यायिक और पुलिस व्यवस्था में परिवर्तन किये।

ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रवेश के साथ ही इस क्षेत्र में प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक नया अध्याय जुड़ा एक नई प्रशासनिक व्यवस्था की शुरूआत की गयी। कोल्हान के क्षेत्र में उनका अधिकार हो जाने के बाद भी अंग्रेज दक्षिण बिहार में पूरी तरह से अपनी पकड़ मजबूत नहीं होने के कारण, छोटानागपूर के विभिन्न भागों में प्रत्यक्ष रूप से शासन चलाने में असमर्थ थे। छोटानागपूर क्षेत्र में अप्रत्यक्ष शासन चलाना उनकी मजबूरी बन गयी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने पटना काउंसिल के अन्तर्गत यहाँ के राजाओं को रखा। चेरो राजा गोपाल राय, नागवंशी महाराज दर्पनाथ शाह, रामगढ़ राजा मुकुन्द सिंह और ढालभूम का राजा जगन्नाथ ढाल से एक-एक से त्रिवार्षिक मालबंदी का समझौता किया गया।[42] इस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभाव छोटानागपूर क्षेत्र में बढ़ता गया और उनकी प्रशासनिक भागीदारी इस क्षेत्र में मजबूत होती गयी, जिससे इस क्षेत्र में बाद के वर्षों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई।

सन्दर्भ

1. दामोदरन विनीता, 'भारत की जनजातियों के विषय में औपनिवेशिक सोच', संपादक, प्रभात कुमार शुक्ल, इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ, ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली, 1212, पृ. 351-352
2. सुब्रमण्यम लक्ष्मी, 'भारत का इतिहास (1707 से 1857 तक)', ओरियंट ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 5-7
3. वंधोपाध्याय शेखर, 'पलासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास', ओरियंट ब्लैकस्वॉन नई दिल्ली, 2013, पृ. 12-13
4. Marshall, P.J *'East Indian Fortune,The British in Bengal in Eighteenth Century'*, Clarendon Press, Oxford,1976, pp. 24-25.
5. Stein Burton, *'A History of India'*, Wiley- Blackwell Publishing, London -2010, pp. 25- 26.
6. 6. Marshall Peter, *'Early British Imperialism in India Past and Present'*, Oxford University Press, 2005 pp. 20- 21.
7. op.cit. pp. 24-25
8. सुब्रमण्यम लक्ष्मी, पूर्वोक्त, पृ. 100-101
9. वहीं पृ. 102-103
10. Fields Karen.E, *'Revival and Rebellion in Colonial Central Africa'*, Princeton University Press, 1985, pp. 20-21.
11. Roy S.C., *'An Abstract of the Annuals of the Nagvanshi Raj Family of Chotanagpur, Man in India'*, Volume ,8, Publishing in Ranchi,1928, pp. 260- 261.
12. Reid.J, *'Report on the Survey and Settlement Operations in the District of Ranchi, (1902-1910)'*, Published by Government Press Calcutta, 1911, pp. 13-14.
13. दामोदरन विनीत, पूर्वोक्त, पृ. 351-352
14. Hunter, W.W, *'Administrative History of India'*, Cosmo Publishing, New Delhi, 1978, pp. 17- 18.
15. Dutta, K.K, *'Study in The History of Bengal Suba (1740-*

70)', Volume- 1, Publishing by University of Calcutta, 1936, pp. 394- 395.

16. Bengal District Records Midanapur Volume (1914), No.124- 125, Fargo's Letter to Graham , Dated 14 February 1767. pp. 359,497
17. Ibid, p. 359
18. Ibid, p. 497
19. O'Malley ,L.S.S, Bengal District Gazzetter Singhbhum, Saraikela, and Kharsawan, published by Logos press, New Delhi, pp. 26-27.
20. Banerjee.R.D, History of Orissa from the Early times to the British period Volume 2, Bhartiya Publishing House, Kitab Mahal Delhi, 1980, pp. 50- 52.
21. Singh Deo .T.N.N, Singhbhum, Saraikela, Kharsawan through the ages, Calcutta,1940, pp. 55- 56.
22. I.bid., pp. 63-64
23. Bengal (Judicial) Letter Court of Directors, Volume-17.No.14, Date.6, September,1863. p. 226.
24. Bridge.T.W, Final Report of the Survey and settlement Operations in the District of Palamu (1913- 20), Article 32, secretariat press Patna, 1921, pp. 17-18.
25. Ibid, p. 32 .
26. Reid .J., op.cit. pp. 13-14.
27. Dalton.E.T, Discriptive Ethnology of Bengal, publishing by Indian Study past and present Calcutta 1960, pp.17- 19
28. Birt. F.B Bridley , Chotanagpur a Little Known province of the Empire, published by Smith Elder and Company London, 1903, pp. 121- 122.
29. Patra Atul Chandra, The Administrative of Justice under the East India company in Bengal , Bihar and Orissa, Asian publishing House ,New Delhi,1962, ?????- 25 - 27
30. Kumar Purushottam , History and Administration of Tribal Chotanagpur, published by Atma Ram and Son's Delhi - 1994, pp. 6-7.
31. Bengal Home Public Proceeding, 15 September 1772, pp. 12-14.
32. C.C.R.P. Proceeding of Birbhum Collector Chief, 15 October, 1773, pp. 17- 18 .
33. Bengal Judicial (Criminal) Record No.13, Date . 15 March - 1814 p. 112.
34. Finger.Walter Kelley, Bengal District Record Midanapur 1763 - 1767, Volume - 2 , Catholic press Calcutta 1915, pp. -25-29.
35. Chaudhuri. Shashi Bhushan, Civil Distribution During the British Rule in India (1765 - 1857),World press Calcutta, 1955 pp. 65-69.
36. O'Malley,L.S.S, Bengal District Gazzetter Singhbhum Saraikela and Kharsawan, pp. 26-27.
37. Ibid, pp. 29-30.
38. Kumar Purushottam, op.cit., pp. 26-27
39. Kumar Janardan, Comprehensive History of India (1856-1947), Janki Publication Patna 1976, pp. 5-7.
40. Finger,Walter Kelley, op. cit., pp. 65-67.
41. वीरोत्तम बी., 'झारखण्ड इतिहास और संस्कृति', बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, 2003, पृ. 410-411
42. वही, पृ. 410-411

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक सरिता खारून : ग्राम खोरपा से नव अन्वेषित प्रतिमाओं के विशेष संदर्भ में

❑ डॉ. नितेश कुमार मिश्र
❖ ढालसिंह देवांगन

सूचक शब्द - नदी, खोरपा, मूर्ति, पुरातत्त्व, उत्खनन

छत्तीसगढ़ राज्य ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक दृष्टि से एक सम्पन्न प्रदेश है। प्रायः सभी स्थापत्य खण्ड, प्राचीन मंदिर, प्रतिमा एवं भग्नावशेष नदियों के तट पर ही प्राप्त होते हैं एवं कहीं न कहीं इनका संबंध किसी प्राचीन मानवीय सभ्यता से होता है। अतः हम कह सकते हैं कि मनुष्य के क्रमिक एवं सांस्कृतिक विकास में नदी घाटियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी संदर्भ में छत्तीसगढ़ प्रांत के मध्य भू-भाग में प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदी खारुन के दाहिने तट पर स्थित ग्रांम खोरपा का पुरातात्त्विक दृष्टि से विशेष स्थान है। खोरपा रायपुर जिले के अभनपुर तहसील के अंतर्गत एक ग्राम पंचायत है। यहाँ से कुछ प्राचीन प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं इन प्रतिमाओं में शैव, वैष्णव एवं शाक्त धर्म के अतिरिक्त कुछ अन्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्व की हैं। ये मूर्तियाँ प्रतिमा लक्षण एवं शिल्पगत विशेषताओं के अनुरुप बनी हैं जिनके कारण अध्ययन की दृष्टि से इनका महत्व और बढ़ जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में मुख्य रुप से पुरातात्त्विक ग्राम खोरपा की प्रतिमाओं का पुरातात्त्विक अध्ययन किया गया है एवं इसके माध्यम से इस ग्राम के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में नई कड़ी जोड़ने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना -: छत्तीसगढ़ राज्य, जिसे प्राचीन काल में दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता था, भारत के कुछ सौभाग्यशाली राज्यों में एक है जिसकी अपनी बहुत समृद्ध संस्कृति रही है। समृद्धशाली संस्कृति तो बहुत सारे राज्यों की रही है किन्तु उनका संरक्षण नही हो सका और समय के साथ-साथ सांस्कृतिक विरासत समाप्त होती चली गई। किन्तु सर्वविदित है कि छत्तीसगढ़ एक वनवासी बाहुल्य राज्य है और इन वनवासी बन्धुओं ने आजतक अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखा है।

छत्तीसगढ़ राज्य पर प्रकृति की भी असीम कृपा है यहाँ का अधिकांश भाग वनाच्छादित है, यहाँ पर पहाड़ों की श्रृँखला भी उपस्थित है साथ ही महानदी, शिवानाथ, खारुन, जोंक, हसदो एवं इन्द्रावती जैसी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं। अपनी इसी आदर्श स्थिति के कारण यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से ही मानव की शरण स्थली रहा है। पूरे अंचल से आदिमानव के सांस्कृतिक अवशेषों की प्राप्ति हुई है इनमें सिंघनपुर[1], काबरापहाड़[2], हराडुला, नांदघाट एवं पचराही जैसे पुरास्थलों का उल्लेख आवश्यक है। पाषाण काल के बाद महापाषाणिक संस्कृति के भी अवशेष यहाँ से प्राप्त हुये हैं। ऐतिहासिक काल में यह क्षेत्र मौर्य, कुषाण, वाकाटक, गुप्त, नल, शरभपुरिय, पाण्डुवंशी एवं कलचुरि जैसे राजवंशों से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रुप से शासित रहा। ऐतिहासिक काल में यहाँ पर अनेकों मंदिरों तथा मूर्तियों का निर्माण शासकों के द्वारा कराया गया इसीलिये कला पुरातत्त्व के अध्येताओं के लिए यह प्रदेश स्वर्ग से कम नही है।

संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में नदियों की प्रमुख भूमिका होती है। नदियों के तट पर प्रायः नगर बसते हैं। यह बात सत्य है कि बड़ी नदियों की तुलना में सहायक या छोटी नदियों के तट पर प्रायः ज्यादा बसाहट देखने को मिलती है इसके पीछे कारण यह है कि बड़ी नदियों की तुलना में प्रायः सहायक नदियों में बाढ़ आदि का खतरा कम रहता है। इसी क्रम में बताना उचित होगा कि छत्तीसगढ़ में प्रवाहित होने वाली अधिकांश नदियाँ छोटी नदियों की श्रेणी में आती हैं और प्रत्येक सरिता सांस्कृतिक रुप से बहुत समृद्ध है। इसी प्रकार की एक नदी खारुन है जिसके तट पर बहुत सारे पुरास्थल खोजे गये हैं और अभी बहुत पुरास्थलों के मिलने की प्रबल संभावना

❑ सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
❖ शोध अध्येता, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

है।

साहित्य समीक्षा -: पुरातत्त्वविदों द्वारा समय-समय पर छत्तीसगढ़ की नदियों से संबंधित ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक शोध कार्य किए गये हैं। छत्तीसगढ़ में सर्वप्रथम नदी घाटी के संदर्भ में वी.डी. कृष्णास्वामी महोदय ने 1953 ईस्वीं में इन्द्रावती नदी के किनारे स्थित चित्रकोट जलप्रपात के सामने कुछ मध्य पाषाण कालीन लघुपाषाण उपकारणों का प्रतिवेदन किया था।[3] इन्द्रावती नदी में ही 1961 में वी. एस. वाकड़कर महोदय के द्वारा पूर्वी बस्तर भू-भाग में स्थित गुपनसर गुफा के पास मध्य पाषाण कालीन उपकरणों की खोज की गई।[4] आर. पी. पाण्डेय द्वारा अपनी पीएच.डी शोध प्रबंध Archaeology of Upper Mahanadi Valley, 1982 में ऊपरी महानदी घाटी के पुरातत्व के संदर्भ में प्रकाश डाला था इन्होनें अपनी पुस्तक 'Pre-Historic Archaeology of Madhya Pradesh' 1987 में भी छत्तीसगढ़ से संबंधित पुरास्थलों की जानकारी दी है।[5] एस.एस.यादव एवं अतुल कुमार प्रधान द्वारा प्रकाशित ग्रंथ ''हॉप नदी का पुरातात्त्विक अवशेष'' 2009 से हॉप नदी के संदर्भ में जानकारी प्राप्त होती है। कामता प्रसाद वर्मा की वर्ष 2012 में प्रकाशित पुस्तक ''संस्कृति सरिता शिवनाथ''[6] में शिवनाथ नदी घाटी के तट पर स्थित मंदिरों का विवरण दिया गया है। एस.के.बाजपेयी वर्ष 2012-13 से संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, छत्तीसगढ़ द्वारा जोंक नदी के प्रथम चरण के सर्वेक्षण के दौरान प्रागैतिहासिक पुरास्थल प्रकाश में आए।[7] एस.के. बाजपेयी एवं अतुल कुमार प्रधान ने भी जोंक नदी का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण कर विभिन्न पुरास्थलों की खोज की थी।[8]

खारुन नदी घाटी के संदर्भ में वर्ष 2007 के पूर्व कोई पुरातात्त्विक कार्य नही हुआ परन्तु बाद के वर्षों में कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। खारुन नदी के संदर्भ में जे. आर. भगत, उप-निदेशक, संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर, ने वर्ष 2007-08 में खारुन नदी के तट पर तरीघाट[9] नामक पुरास्थल की खोज की एवं इसी वर्ष इनके द्वारा खारुन नदी के तट पर जमराव[10] एवं कौही[11] नामक पुरास्थल की खोज की गयी थी। वर्ष 2012-13 में संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर छत्तीसगढ़ की ओर से जे. आर. भगत के द्वारा तरीघाट का व्यवस्थित उत्खनन किया गया। परशुलीडीह[12] नामक पुरास्थल की खोज वर्ष 2013 में एस. एन. यादव एंव अतुल कुमार प्रधान द्वारा किया गया था। उफरा[13] नामक स्थल की खोज वर्ष 2013 में एस. एन. यादव एंव अतुल कुमार प्रधान द्वारा किया गया था। पी. सी. पारक एवं अतुल कुमार प्रधान द्वारा वर्ष 2014-15 में जमराव का अन्वेषण किया गया एवं वर्ष 2019 में इसका व्यवस्थित उत्खनन किया गया। सर्वप्रथम जे.आर. भगत ने खोरपा[14] ग्राम का उल्लेख Archaeological Vestiges Of Kharun River' नामक अपने शोधपत्र में किया था जो वर्ष 2012 में "Proceedings Of The National Seminar On River Valley Civilization Of Chhattisgarh And New Researches In Indian Archaeology में प्रकाशित हुआ था इसका प्रकाशन संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर, छत्तीसगढ़ की ओर से हुआ है। सुरेश कुमार साहू ने अपने शोध पत्र ''अभनपुर अंचल से प्राप्त देवी प्रतिमाओं का पुरातात्त्विक अध्ययन'' में खोरपा ग्राम के दो देवी प्रतिमाओं का अध्ययन किया था जो वर्ष 2013 में "Proceedings of the National Seminar on Art and Architecture of Central India with Special Reference to South Kosala में प्रकाशित हुआ था इसका प्रकाशन संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर, छत्तीसगढ़ की ओर से हुआ है।[15] जे.आर.भगत ने अपनी प्रकाशित पुस्तक Tarighat Excavation (2012-13) वर्ष 2015 में भी खोरपा ग्राम का उल्लेख किया है।

अध्ययन का उद्देश्य -: भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण एवं छत्तीसगढ़ राज्य संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के परिश्रम के फलस्वरुप तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं व्यक्तिगत प्रयत्नों के माध्यम से छत्तीसगढ़ के पुरातत्त्व के विभिन्न पहलुओं पर अनेक विद्वानों द्वारा पर्याप्त लिखा गया है। परन्तु इस सामग्री का व्यवस्थित एकीकरण नही हुआ है। खारुन नदी घाटी के क्षेत्र में पूर्व में किये गए ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक शोध कार्यों के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इस अंचल में शैव, वैष्णव एवं शाक्त धर्म से संबंधित विभिन्न प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिनमें ग्राम खोरपा की प्रतिमा विशेष महत्व रखती है। पूर्व के अन्वेषणों में इस ग्राम के पुरातत्त्व की अत्यधिक जानकारी नही दी गई है। प्रस्तुत लेख में इसी लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। निश्चित ही यह लेख ग्राम खोरपा के इतिहास एवं पुरातत्त्व में नई कड़ी जोड़ने का प्रयास करेगा।

शोध पद्धति -: प्रस्तुत शोध कार्य में मुख्य रूप से स्रोत के रूप में दो पद्धतियों का प्रयोग किया गया है

1. **ऐतिहासिक पद्धति -:** इस शोध कार्य में प्राचीन मौलिक ग्रंथों एवं सहायक ग्रंथों को लिया गया है। इन ग्रथों के माध्यम से प्राचीन नदी, भौगोलिक स्थलों की जानकारी प्राप्त की गई है। इस विषय से संबंधित पूर्व में प्रकाशित लेखों, शोध पत्रों एवं शोध प्रबंधों का विश्लेषण भी शोध कार्य में किया गया।
2. **स्थल सर्वेक्षण -:** प्रस्तुत लेखन में आंकड़ों का संग्रह व्यक्तिगत रूप से खोरपा ग्राम का सर्वे करके किया गया। गाँव के लोगों से व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से आंकड़े संकलित किए गए जिनसे आपेक्षित आंकड़े प्राप्त हुए। इस शोध कार्य में आधुनिक तकनीकों जैसे Net, Google Earth, Global Positioning Systam (G.P.S.), Topographic Maps, Geographic information system (G.I.S.) एवं Computer आदि की मद्द ली गई जिनसे नवीनतम आंकड़े प्राप्त किये गये। इन सभी आंकड़ों की प्रस्तुत शोध कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

विश्लेषण -: खारुन नदी छत्तीसगढ़ के मध्य भू-भाग में प्रवाहित होने वाली प्रमुख एवं शिवनाथ नदी की सहायक नदी है। खारुन नदी का उद्गम बालोद जिले के गुरुर तहसील के चोरहानाला के दक्षिण-पूर्व के पेटेचुआ पहाड़ी (20.340 उत्तरी अक्षांश एवं 81.810 पूर्वी देन्शातर) से होता है।[16] खारुन नदी अपने अपवाह मार्ग में लगभग 120.7 कि.मी.[17] की दूरी तय करते हुए बेमेतरा जिला के बेरला तहसील में सोमनाथ धाम के पास किरीतपुर में शिवनाथ नदी में विलीन हो जाती है।

खारुन का पौराणिक महत्व भी है क्योंकि इस नदी का वर्णन विभिन्न पुराणों में मिलता है। इस नदी का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में क्रमु एवं वायु तथा ब्राह्मण्ड पुराण में क्रमात तथा वामन पुराण में वसु के रुप में किया गया है।

अन्वेषणों के पश्चात खारुन नदी के तट पर मध्यपाषाण काल, महापाषाण काल, प्रारंभिक ऐतिहासिक काल, ऐतिहासिक काल एवं मध्यकाल के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस नदी के प्रमुख पुरास्थलों में सोमनाथ, सिमगा, रायपुरा (महादेव घाट), डीह, पण्डर, खोरपा, कौही, परशुलीडीह, जमराव, उफरा, झीट, तरीघाट एवं परसदा हैं जो इसे और महत्वपूर्ण बनाती है।

ग्राम खोरपा का पुरातत्त्व की दृष्टि से विशेष स्थान है। यह खारुन नदी के दाहिनें तट पर स्थित है। यह रायपुर जिले के अभनपुर तहसील के अंतर्गत एक ग्राम पंचायत है। यह अभनपुर से 12 कि.मी. एवं रायपुर से लगभग 25 कि.मी. की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है। यह रायपुर से पाटन जाने वाले मार्ग में पड़ता है। इस स्थल से इतिहास एवं पुरातत्त्व के महत्व की महत्वपूर्ण पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ से मुख्य रुप से मृद्भाण्ड के टुकड़े, मृणमय लघु मूर्ति, हाथी की बनी आकृति प्राप्त हुए है एवं सबसे महत्वपूर्ण पुरावशेष यहाँ से प्राप्त पाषाण प्रतिमा हैं जो इस स्थल को और भी महत्वपूर्ण बनाती है।

पुरावशेष गाँव के चारों ओर बिखरे हुए मिलते हैं। लगभग सभी प्रतिमा गाँव की बस्ती के बीचो-बीच रखी हुई है जिसे लोग बाड़ा पारा, जोहार चौक कहते हैं। ग्रामीणों के अनुसार पहले बाड़ा पारा में रजवाड़ों की पूरी बस्ती हुआ करती थी जिनके रहने के आवास आज भी अवशेष के रुप में दिखाई पड़ते हैं। सम्भवतः प्राचीन प्रतिमा इन्हीं के संरक्षण में रहीं होगीं जो आज केवल अवशेष के रुप में दिखाई पड़ती है। इन प्रतिमाओं को ग्रामीण ठाकुर देव, बरम बाबा या बरम देव, शीतला देवी एवं बमलेश्वरी देवी के रुप में पूजते हैं। केवल विष्णु प्रतिमा को छोड़कर लगभग सभी मूर्तियाँ ठाकुर देव मंदिर के चबूतरे में ही रखी गई हैं। कमलेश साहू (स्थानीय निवासी) ने यह सूचना दी है कि हर वर्ष वैशाख माह (अक्ति के दिन) एवं अगहन माह में ग्रामीणों द्वारा विशेष पूजा अर्चना की जाती है।

यहाँ से ब्राम्हण धर्म से संबधित शैव, वैष्णव, शाक्त एवं अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। यहाँ से प्राप्त सभी प्रतिमाएं लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। एक विष्णु प्रतिमा को छोड़कर सभी प्रतिमाएं भग्न अवस्था में दिखाई पड़ती हैं। प्रतिमाओं को देखने से यह 12वीं 13वीं शती की कलचुरि कालीन प्रतिमा जान पड़ती हैं।[18] यहाँ से उमामहेश्वर की एक खण्डित प्रतिमा, विष्णु की दो मूर्ति, महिषमर्दिनी की एक प्रतिमा, देवी चामुण्डा की एक प्रतिमा, गंगा की एक प्रतिमा एवं अन्य खण्डित प्रतिमा प्राप्त हुई है जो प्रतिमा शास्त्री लक्षणों से पूर्ण है एवं कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होती है।

ग्राम खोरपा से प्राप्त विभिन्न प्रतिमा

1. **उमा-महेश्वर की प्रतिमा** - यहाँ से शैव धर्म से संबंधित उमा-महेश्वर की एक खण्डित प्रतिमा प्राप्त

हुई है। यह पूर्णतः क्षीण अवस्था में है। इसे देखने से ऐसा प्रतित होता है कि यह किसी प्रतिमा का हिस्सा रहा होगा जो टूट कर अलग हो गया है। यह प्रतिमा एक पर्यंक पर स्थित है एवं इसके पादपीठ के नीचे एक छत्र की आकृति दिखाई दे रही है। इस मूर्ति का आकार 18×21×11 इंच है। कला की दृष्टि से यह विशेष महत्व की प्रतीत नही होती। (चित्र क्र. 1)

2. **नन्दी की प्रतिमा** – यह प्रतिमा भग्न अवस्था में है यह ठाकुर देव मंदिर के चबूतरे में रखी हुई है। इसका आकार 20×25×10 इंच है। इस स्थल से नन्दी की प्रतिमा प्राप्त होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ कभी शिव मंदिर रहा होगा जो कालान्तर में नष्ट हो गया होगा। (चित्र क्र. 2)
3. **विष्णु की प्रतिमा** – इस पुरास्थल से विष्णु की दो प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। प्रथम प्रतिमा ठाकुर देव मंदिर के चबूतरे में रखी हुई है। यह भग्न अवस्था में है इस प्रतिमा के सिर का भाग टूटा हुआ है। यह एक चतुर्भुजी प्रतिमा है। इस प्रतिमा के दाहिने ओर के दोनों हाथ टूटे हुए हैं एवं बायीं ओर के दोनों हाथों को देखा जा सकता है जिनके केवल नीचे के बायें हाथ में शंख धारण किये हुए दिखाई पड़ रहा है एवं ऊपर के दाहिने हाथ के आयुध स्पष्ट नही है। इस प्रतिमा में विष्णु को सामान्य वस्त्र आभूषण पहने हुए दिखाया गया है। गले में कौस्तुभ माला या वैजन्ती माला धारण किए हुए हैं। कटि प्रदेश में करधनी पहने हुए हैं। इस प्रतिमा के नीचे के दोनों पार्श्व भाग में दो परिचायक उपस्थित हैं। इनका आकार 37×22×7 इंच है। (चित्र क्र. 3)
4. **विष्णु** की दूसरी प्रतिमा इस चबूतरे से 100 मी. की दूरी पर स्थित है जिसे स्थानीय निवासी बरम देव या बरम बाबा कहकर पुकारते हैं। वर्तमान में इसे एक छोटे से कमरे में सुरक्षित रखा गया है। यहाँ से प्राप्त सभी प्रतिमाओं में यह पूर्णतः सुरक्षित है एवं मूर्तिकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह भी एक चतुर्भुजी प्रतिमा है। इस मूर्ति के ऊपर के दाहिने हाथ में पद्म एवं बाये हाथ में शंख धारण किए हुए है एवं नीचे के दाहिने हाथ में गदा एवं बाये हाथ में चक्र धारण किए हुए है। इन्होनें सिर पर महाकिरीट मूकुट धारण किया हुआ है। कानों में रत्नकुण्डल एवं गले में रत्नजटित हार एवं वक्ष स्थल पर सम्भवतः कौस्तुभ माला धारण किये हुए है साथ ही कटि में करधनी पहने हुए है जो घुटने तक लटके हुए दिखाई पड़ रही है साथ ही इसे पैरों में नुपुर पहने हुए दिखाया गया है। यहाँ गरुड़ को मानवाकृति में मूर्ति के बाये पार्श्व में हाथ जोड़े बैठे हुए दिखाया गया है साथ ही ऊपर के दाये एवं बाये पार्श्व में दो परिचायकों को दिखाया गया है। इस प्रतिमा का आकार 39×17×9 इंच है। (चित्र क्र. 4)
5. **चामुण्डा की प्रतिमा** – चामुण्डा को यम की शक्ति माना जाता है। चामुण्डा रक्तवर्ण एवं विकृत मुख वाली होती है। ये प्रेतो के साथ रहती है एवं सर्पो के आभूषण धारण करती है। इसका रुप बड़ा भयानक होता है। अपराजितपृच्छा ग्रंथ चामुण्डा को शव पर आरुढ़ बताता है। इस स्थल से प्राप्त प्रतिमा पूर्णतः क्षरित अवस्था में है। इस प्रतिमा का मुख विकृत दिखाई दे रहा है एवं जीभ सामने की ओर निकली हुई दृष्टव्य है। इस प्रतिमा के केवल चार हाथों को देखा जा सकता है। देवी के ऊपर के दाहिने हाथ में डमरु एवं बाये हाथ में चक्र तथा नीचे के दाहिने हाथ में खटवांग एवं बाये हाथ में मुण्ड धारण किए हुए है। सिर पर मुकुट, कान में चक्रकुण्डल एवं गले में कण्ठहार तथा स्तनहार पहनी हुई है। इसका आकार 14×11×6 इंच है। (चित्र क्र. 5)
6. **महिषमर्दिनी** – अन्य प्रतिमाओं की तरह यह पूर्णतः क्षरित है। देवी महिषासुर का वध करते हुए दिखाई दे रही है एवं महिष के सिर से महिषासुर निकलते हुए दिखाई दे रहा हैं। अन्य लक्ष्ण स्पष्ट नही दिखाई देते हैं। इस प्रतिमा का आकार 20×15×5 इंच है। (चित्र क्र. 6)
7. **गंगा की प्रतिमा** – इस स्थल से नदी देवी गंगा की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह भी अन्य प्रतिमाओं की तरह भग्न अवस्था में है। यह द्विभुजी मूर्ति है। इनकें वाहन के रुप में यहाँ मकर का स्पष्ट अंकन हुआ है अन्य लक्षण स्पष्ट नही है। इसकी आकृति 48×20×12 इंच है। (चित्र क्र. 7)
8. **इन प्रतिमाओं** के अलावा यहाँ से दो अन्य प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। इन दोनों प्रतिमाओं के धड़ का भाग टूटा हुआ है एवं दोनों प्रतिमाएं खण्डित अवस्था में हैं। खण्डित अवस्था में कारण इनकें प्रतिमाओं के

लक्षणों का पता नही लगाया जा सकता है एवं स्पष्ट तौर पर नही कहा जा सकता की ये किसकी प्रतिमा हैं। (चित्र क्र. 8) (चित्र क्र. 9)

9. **अन्य पुरावशेषों** में जिसे सामान्यतः सिल-लोढ़ा कहा जाता है। (चित्र क्र. 10) इसका प्रयोग मुख्यतः मध्यपाषाण काल में जंगली अनाजों को पीसने के लिये किया जाता था। हड़प्पा सभ्यता में भी इसका प्रयोग अनाजों को पीसने में किया जाता था। समय के साथ-साथ इनके आकार में परिवर्तन होने लगा। यहाँ से प्राप्त सभी शीलों में चार पैर बने हुए है। इतने अधिक मात्रा में यहाँ से प्राप्त होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थल प्राचीन काल से ही एक आवासीय स्थल रहा होगा।

निष्कर्ष - निश्चत ही खोरपा से प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेषों विशेषतः के प्रतिमाओं की प्राप्ति से ये बात सिद्ध होती है कि यहाँ पर अति प्राचीन काल से लोगों का निवास रहा है। गाँव के विस्तृत सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि यहाँ की बसाहट बहुत ही प्राचीन है क्योकि गाँव एक टीले के रुप में है जिस पर लोग बसे हुए हैं। इस स्थल से शैव, वैष्णव एवं शाक्त धर्म से संबंधित प्रतिमाओं के प्राप्त होने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सभी धर्मों के केन्द्र के रुप में स्थापित रहा होगा। इन प्रतिमाओं के बनावट को देखने से राजकीय प्रतीत होती है, इनके आधार पर ऐसा कहा जा सकता है, कि इनका निर्माण यहाँ के स्थानीय शासकों के संरक्षण में हुआ होगा साथ ही इनमें एक समानता देखने को मिलती है कि लगभग सभी मूर्तियों के धड़ का भाग खण्डित है अथवा इन्हें तोड़ा गया हो। सम्भवतः यह स्थल अपने उत्कर्ष काल में बाह्य आक्रमण का शिकार हुआ हो। यहाँ पर विधिवत उत्खनन कराये जाने की आवश्यकता है। निश्चित रुप से पुरातत्त्व के विद्यार्थी होने के नाते हमारा ऐसा विश्वास है कि अगर इस स्थल पर उत्खनन कराया जायेगा तो यह स्थल छत्तीसगढ़ का महत्वपूर्ण पुरास्थल सिद्ध हो सकता है साथ ही छत्तीसगढ़ के इतिहास में नयी कड़ी जोड़ जा सकता है।

सन्दर्भ

1. दीक्षित एम. जी., 'मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व की रुपरेखा', सागर विश्वविद्यालय, सागर, 1954, पृ. 37
2- Indian Archaeology A Review 1955-56 , Archaeological Survey Of India, New Delhi, 1993, P. 69
3- Krishnaswami V.D., 'Prehistoric Bastar' In Proceeding Of The Indian Science Congress 40, 1953, P.4
4- Indian Archaeology A Review 1960-61 , Archaeological Survey Of India, New Delhi, 1993, P. 59
5- Pandey R.P., 'Pre-Historic Archaeology of Madhya Pradesh' Sundeep prakashan , Delhi, 1987, p.2
6. वर्मा कामता प्रसाद, 'संस्कृति सरिता शिवनाथ' संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर, छत्तीसगढ़, 2012 पृ. 25
7. प्रधान अतुल कुमार एवं यादव शम्भु नाथ, 'छत्तीसगढ़ का प्रागैतिहासिक अध्ययन एक पुनरावलोकन' कोसल, अंक 6, संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर, छत्तीसगढ़, 2013 पृ. 37
8- Bajpai S.K. And Pradhan Atul Kumar, 'Archaeological Investigation In The Jonk River, Chhattigarh', Kosala No 8, Directorate Of Culture And Archaeology Government Of Chhattisgarh, Raipur, 2015, P. 59-60
9- Bhagat J.R., 'Recent Exploration At Tarighat, Patan, Durg, Chhattisgarh', Kosala No 2, Directorate Of Culture And Archaeology Government Of Chhattisgarh, Raipur, 2009, P. 236
10- Bhagat J.R., 'Archaeological Vestiges Of Kharun River', Proceedings Of The National Seminar On River Valley Of Chhattisgarh And New Researches In Indian Archaeology, Directorate Of Culture And Archaeology Government Of Chhattisgarh, Raipur,2012,P. 355
11- Ibid,p. 355
12. प्रधान अतुल कुमार एवं यादव शम्भु नाथ, पूर्वोक्त, पृ. 38
13. प्रधान अतुल कुमार, यादव शम्भु नाथ एवं गरतीया भागीरथी, 'छत्तीसगढ़ में कृश्ण-लोहित पात्र परम्परा' कोसल, अंक 10, संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्त्व रायपुर, छत्तीसगढ़, 2017 पृ. 48
14. Bhagat, J.R. 2012, op.cit. ,p.358
15. Sahu S.K., अभनपुर अंचल से प्राप्त देवी प्रतिमाओं का पुरातात्त्विक अध्ययन', Proceedings Of The National Seminar On Art And Architecture Of Central India With Special Reference To South Kosala, Directorate Of Culture And Archaeology Government Of Chhattisgarh, Raipur, 2013,P.208
16. Verma, Rajendra, 'Madhaya Pradesh District Gazetteers, Durg', District Gazetteers Department Madhaya Pradesh, Bhopal, 1972,p.8
17. Ibid,p.9
18. Sahu S.K., op.cit., p.209

चित्र क्र. 1

चित्र क्र. 2

चित्र क्र. 3

चित्र क्र. 4

चित्र क्र. 5

चित्र क्र. 6

चित्र क्र. 7

चित्र क्र. 8

चित्र क्र. 9

चित्र क्र. 10

चित्र क्र. 11

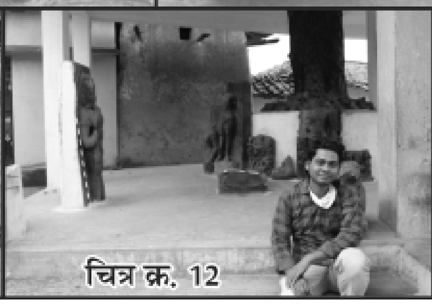
चित्र क्र. 12

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

विवाहित कार्यशील महिलाएं एवम् उनकी खाली समय की गतिविधियाँ

❑ प्रियंका सरोज

सूचक शब्द : कार्यशील महिलाएं, दोहरी भूमिका, खाली समय, सामाजिक क्रिया कलाप

स्वतंत्रोपरांत भारत में स्वतंत्रता एवं समानता पर आधारित संविधान, महिला कल्याण हेतु संवैधानिक व्यवस्थाओं, अनेकानेक योजनाओं और विशेषतः शिक्षा प्रसार के फलस्वरूप महिलाएं घर की चाहरदीवारी से निकलकर नौकरियाँ करने लगी हैं। सांप्रत भारत में समस्त व्यावहारिक क्षेत्रों में महिलाओं ने न केवल अपनी उपस्थिति दर्ज की है अपितु विशेष सफलताएं अर्जित की हैं। आज ये कामकाजी महिलाएं घर से बाहर नौकरी करती हैं तो समय पर घरेलू कार्यों का सम्पादन भी करके दोहरी भूमिका का निर्वाह करती हैं। इस संदर्भ में यह दृष्टिकोण है कि दोहरी भूमिका का निर्वहन करने के बाद भी, यदि उन्हें कुछ खाली समय मिलता है तो अनेक नए क्रियाकलापों को भी सम्पन्न कर रही हैं। अतः इन कार्यशील महिलाओं के खाली समय की गतिविधियों का अध्ययन करना समीचीन प्रतीत हुआ। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास रहा है।

खाली समय की गतिविधियों से तात्पर्य ऐसी गतिविधियों से है जो काम के बाद आराम, शान्ति, और मानसिक संतुष्टि के कार्यो को दर्शाता हैं, जिस कार्य में काम का बोझ, तनाव आदि सम्मिलित नहीं रहता है। प्राचीन समय हो या आधुनिक समय स्वतंत्र रूप से खाली समय की व्याख्या करते हैं जो खेल, कला, यात्रा, सामूहिक कार्यक्रम, व्यक्तिगत इच्छायें आदि जैसी गतिविधियों से निकटता से जुड़ा हुआ हैं। हर व्यक्ति अपने खाली समय का सदुपयोग अपने अनुसार करता है। वहीं यदि महिलाओं के खाली समय की गतिविधियों की बात की जाये तो अधिकतर महिलाओं को घर के अन्दर का ही कार्य करते देखा जाता हैं, जिनमें सिलाई, कढ़ाई, पाककला, टी0वी0 देखना आदि जो महिलाओं के लिए उनकी पहचान हैं, जो आज तक चली आ रही हैं लेकिन इन कार्यो के अलावा भी देखा जाये तो महिलायें घर के बाहर निकलकर अपनी अलग पहचान बना रही हैं। हर युग में प्रतिभाशाली महिलाओं की कमी नही रही हैं। प्राचीन युग में जैसे गार्गी, आपाला, द्रोपदी आदि महिलायें अपने खाली समय का प्रयोग करके काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। वहीं मध्य काल में जहाँ महिलाओं को अधिक स्वतंत्रता नहीं थी उस समय में भी कुछ महिलाओं ने अपनी विशेषज्ञता दिखायी जैसे गुलबदन बेगम, नूरजहाँ, रजिया सुल्तान आदि। लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत हुआ सामाजिक दशाओं में बदलाव आया शिक्षा, कानून, तकनीकी क्षेत्र तथा आर्थिक रूप ने महिलाओं के दृष्टिकोण को पहले से अधिक सशक्त बनाया हैं। महिलाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुए हैं और उनके रचनात्मक कार्यों में भी परिवर्तन आया हैं। वह सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर अब पुरूषों के समान कार्य कर रही हैं। जहाँ महिलाएं पहले अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को दबा देती थीं अब खुलकर अपनी इच्छाओं को साकार कर रही हैं। मेघा पाटेकर, किरण बेदी, सुनीता विलियम्स, मैरी कॉम आदि जैसी महिलाओं ने विविध क्षेत्रों में अपने बुद्धि कौशल का परिचय दिया हैं। इसके अलावा भी कई महिलाओं ने अपने रचनात्मक कार्यों से काफी ख्याति प्राप्त की हैं।

खाली समय की गतिविधियाँ आन्तरिक व बाहरी होती हैं। आन्तरिक गतिविधियों में महिलाएं घर के अन्दर रहकर अपने खाली समय का सदुपयोग करती हैं। दूसरी गतिविधियां बाहरी हैं जिसमें घर से बाहर निकलकर अपने पसंदीदा क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही हैं। सोशल मीडिया के अनेक प्लेटफार्म जैसे- फेसबुक, व्हाट्सएप, ऑरकुट, ट्वीटर, इस्टाग्राम, आदि का विकास होने से महिलाएं देश-विदेश के लोगों से घर बैठे जुड़ रही हैं। अपनी रूचि के अनुरूप कार्यो को कर रही हैं साथ ही दूसरी महिलाओं को रोजगार प्रदान कर रही हैं। समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेकर वे अपनी अलग पहचान स्थापित कर रही हैं, जिससे उनका तथा उनके साथ कार्य कर रही महिलाओं का सशक्तीकरण हो रहा हैं।

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)

वर्तमान समय में कार्यशील महिलाओं की संख्या में निरंतर बदलाव आ रहा हैं अब महिलाऐं चाहें वे विवाहित हो या अविवाहित हों अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। परिवार चलाने या आत्मनिर्भर बनने या किसी भी कारण से अब महिलाऐं समाज में अपनी भागीदारी निभाने में पीछे नही हैं। लेकिन गृहणी के रूप में महिला को हमेशा एक गृहणी की भूमिका का निर्वहन करना रहता हैं, चाहे वह गैर नौकरी पेशा महिला हो या नौकरी पेशा महिला हो, जिम्मेदारियॉ तो उसे पूरी निभानी होती हैं। वे अपने हिस्से के काम किसी और के भरोसे पर नही छोड़ सकतीं। पुरूष तो तब भी अपनी व्यस्तता में अपना समय निकाल लेते हैं जैसे दोस्तों के साथ शहर से बाहर जाना, दोस्तों के साथ ड्रिंक्स आदि कई योजनायें उनके पास होती हैं अपने खाली समय का सदुपयोग करने के लिए। लेकिन विवाहित कामकाजी महिलाओं में खाली समय का काफी अभाव रहता हैं। उनको परिवार व कार्यस्थल दोनों पर अपनी भूमिका अदा करनी होती हैं। जितना भी समय मिलता हैं वह घर व कार्य को देती हैं। रचनात्मक कार्यो के लिए तो उनके पास समय ही नही रहता हैं।

साहित्य समीक्षा – दीपा माथुर[1] ने अपनी पुस्तक ''वूमेन फैमिली एण्ड वर्क'' में कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका का वर्णन करते हुऐ लिखा हैं कि स्त्री को आज कई भूमिकाएं निभानी पड़ती हैं। एक माँ, पत्नी, गृहणी का और साथ ही नौकरी पेशा महिला का और अपनी इन सभी भूमिकाओं को निभाते-निभाते वह काफी तनाव ग्रस्त हो जाती है। उन्होने अपने अध्ययन में बताया हैं कि एक स्त्री जो मात्र गृहस्वामिनी हैं उसकी अपेक्षा वह स्त्री जो दोहरी भूमिका निभाते हुऐ नौकरी भी करती हैं, व घर एवं परिवार का भी कामकाज सभालती हैं, अधिक तनाव ग्रस्त रहती हैं।

सिल्वे[2] अपने शोध पत्र में इण्डोनेशिया की 300 कार्यकारी महिलाओं और उनके सामाजिक नेटवर्क जैसे स्त्रोतों का विश्लेषण करते हैं। निष्कर्ष में विकास के स्त्रोत के रूप में सामाजिक पूंजी के लिंग आधारित सीमाओं तथा प्रभावों की ओर ध्यानाकर्षण करते हैं और साथ ही उन तरीकों की पहचान करता हैं जिसमें सामाजिक पूंजी के लाभ और लागत लिंग द्वारा संगठित हैं।

वी0पी0 राकेश[3] ने अपने शोधपत्र में पश्चिम उत्तर प्रदेश, मेरठ के जवाहर नगर का सर्वेक्षण किया हैं जिसका उद्देश्य यह जानना था कि कामकाजी महिलाओं की राजनीति में सहभागिता व राजनीतिक जागरूकता हैं या नहीं। इस सर्वेक्षण में 25 महिलाओं का चयन सुविधापूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया हैं, जिससें यह निष्कर्ष ज्ञात हुआ हैं कि अधिकांश महिलायें प्रजातन्त्र के बारे में जानती हैं। कामकाजी महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता व सहभागिता का प्रतिशत बढ़ा हैं। किन्तु अभी भी बहुत सी महिलायें राजनीतिक के विषय में कम जानती हैं।

रेनू पवार[4] का शोधपत्र कानपुर की एस0 एन0 सेन0 बालिका इंटर कॉलेज व कानपुर विद्या इंटर कॉलेज में कार्यरत महिला अध्यापिकाओं पर आधारित है, जिसमें से इन्होने 50 उत्तरदाताओं का चयन सुविधाजनक निदर्शन द्वारा किया हैं। अपने अध्ययन में उन्होंने कार्यरत महिलाओं के परिवारिक समायोजन, उनकी दोहरी भूमिका का निर्वहन व उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया हैं। उन्होने बताया हैं कि कार्यरत होने के कारण उन्हें परिवार व उनके कार्यों के बीच संतुलन स्थापित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं।

कार्यशील महिलाओं से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत यह खोजने का प्रयास किया गया हैं, कि विवाहित कार्यशील महिलाओं को दोहरी भूमिका के कारण खाली समय मिल पाता हैं या नही। वे अपने दोहरी भूमिका के दबाव को कम करने के लिए किन साधनों का उपयोग अधिक करती हैं। साथ ही उन गतिविधियों में वह अपनी रूचि के कार्यो को करती हैं या अन्य कार्यो को।

उद्देश्य– प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गए हैं।–

1. समाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि का उनके खाली समय की गतिविधियों पर प्रभाव का अध्ययन।
2. विवाहित कार्यशील महिलाओं के खाली समय में किये गये कार्यो का अध्ययन।
3. विवाहित कार्यशील महिलाओं में सामाजिक क्रियाकलापों की रूचि का अध्ययन।

परिकल्पना – प्रस्तावित अध्ययन के लिए निम्नलिखित कार्यकारी उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

1. विवाहित कार्यशील महिलाओं को खाली समय का अभाव रहता हैं।
2. विवाहित कार्यशील महिलायें खाली समय का उपयोग टी0वी0 देखने में अधिक करती हैं।

3. विवाहित कार्यशील महिलाओं में सीखने की चाह रहती हैं।

अध्ययन की प्रांसगिकता – वर्तमान समय में महिलाएं आत्मनिर्भर, स्वनिर्मित, आत्मविश्वासी हैं, जिसने पुरुष प्रधान समाज के चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है, चाहे उच्च वर्ग हो या मध्यमवर्ग, महिलाएं वकील, इंजीनियर, चिकित्सा, पत्रकार आदि जैसे कई क्षेत्रों को अपना रही हैं। आज महिलाएँ पुरूषों से कन्धें से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र में सहयोग दे रही हैं। जहाँ कभी इसी समाज में स्त्री की कमाई को अनुचित समझा जाता था। आज उसी समाज में महिलाओं की कमाई से घर चलने लगा हैं, दोनों ही कमाते हैं। बदलती हुई आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में मध्यमवर्गीय परिवार में पति व पत्नी दोनों का योगदान अनिवार्य हैं। देश में कामकाजी महिलाओं का इतिहास कोई बहुत पुराना नहीं हैं। इसे यूं मान लेना चाहिए कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में स्वतंत्रता और समानता के सिद्धान्त से प्रभावित होकर महिलाओं में आत्मनिर्भरता के लिए जो नई सोच, नई चेतना पैदा हुई हैं, यह उसी का परिणाम हैं। स्त्री शिक्षा में प्रगति हुई उसी ने इस क्षेत्र में लोगों को उत्साहित किया। अच्छे जीवन स्तर की इच्छा को बल मिला यह तो समय की आवश्यकता हैं, परिवार की आवश्यकता, व्यक्तिगत अहम् की तुष्टि, समय व्यतीत करने की चाह आदि ऐसे कारण हैं जो कामकाजी महिलाओं के केन्द्र बिन्दु हैं।[5] आज हर कोई महिलाओं की नौकरी को प्रतिष्ठा के रूप में देखता हैं लेकिन महिलाओं के जीवन में कोई परिवर्तन नही आया हैं उन्हें पूरें दिन नौकरी करने के बाद घर आ कर बच्चों की देखभाल, घर की देखभाल आदि ऐसी अनंत भूमिकाओं को निभाना होता हैं।

प्रमिला कपूर ने अध्ययन में पाया हैं कि अधिकांश पति अपनी पत्नी का सहयोग पारिवारिक आय की वृद्धि में चाहते हैं। परंतु साथ ही वे पति घर के काम मे हाथ बँटाने तथा बच्चों की देखभाल करने के लिए तैयार नही थे, वह यह मानतें हैं कि यह काम तो पत्नी का ही हैं। भले ही वह पति के ही जैसी नौकरी क्यों न करती हो यद्यपि अधिकांश कामकाजी स्त्रियाँ अपने इस दुहरे उत्तरदायित्व को निभाने के लिए तैयार हैं। परंतु उन्हें अपने पतियों से इस काम में शायद ही कोई सहयोग मिलता है।[6] इन भूमिकाओं को निभाने के चलते उनके पास समय का काफी अभाव रहता हैं, जिसमें से वे अपने लिए समय निकाल सकें। महिलाओं पर विवाह के बाद एक के बाद एक जिम्मेदारियों का बोझ ऐसे डाला जाता हैं कि उनकी रचनात्मक कार्यो की रूचियॉ भी धीरे-धीरे धूमिल हो जाती हैं। अपने लिए अल्प और परिवार के लिए अत्यधिक व्याकुल रहती हैं। अपने सपनों को भूल कर ससुराल वालों को खुश करने में लगी रहती हैं, जिससे काफी महिलायें मानसिक तनाव में रहती हैं क्योंकि वे जो करना चाह रहीं थीं वह नही कर पाती हैं। इसके कारण उनके हृदय में अंतर्द्वन्द की भावना बनी रहती है, क्योंकि महिलाओं के सशक्तीकरण में उनके घर के कार्य व कार्यालय के कार्यों के अलावा उनके खाली समय की गतिविधियों के पसंद के कार्य भी सम्मिलित हैं, जो समय-समय पर महिलाओं को ख्याति दिला चुके हैं। महिलाओं का सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी से उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं को खुलने का मौका प्राप्त हुआ हैं। वहीं तकनीकि क्षेत्र में प्रगति से महिलाओं के पास अनेक मंच हैं अपनी रचनात्मकता को दिखाने के जो आज के समय में देखा जा रहा है। महिलाओं में भी कुछ महिलायें अपने खाली समय में अपने पसंदीदा कार्य करना पसंद करती हैं, तो कुछ महिलाओं का खाली समय अन्य कार्यो में ही व्यतीत हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि विवाहित कार्यशील महिलाओं को अपने व्यस्त समय से खाली समय प्राप्त हो पाता है या नही। महिलायें खाली समय का उपयोग किस काम के लिए करती हैं। महिलायें सामाजिक क्रियाकलापों में से किसमें रूचि रखती हैं ? जिसका अध्ययन इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया हैं।

शोध प्रारूप – प्रस्तुत शोधपत्र अनुसंधानकर्ती द्वारा एम0जे0पी0 रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली में पीएच. डी. शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ ''विवाहित कार्यशील महिलाओं में भूमिका द्वन्द का सामाजिक प्रभाव : समाजशास्त्रीय अध्ययन' (बरेली नगर के विशेष सन्दर्भ में'' पर आधारित हैं। अध्ययन का प्रारूप विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित हैं। प्रस्तुत अध्ययन बरेली नगर की विवाहित कार्यशील महिलाओं पर आधारित हैं। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिग, राजस्व तथा अन्य सरकारी व निजी क्षेत्रों से कार्यशील महिलाओं का चयन किया गया हैं। शोध कार्य के लिए 300 विवाहित कार्यशील महिलाओं का उद्देश्यपूर्ण निदर्शन

पद्धति के आधार पर चयन किया गया हैं।

तथ्यों का संकलन - प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची व अवलोकन प्रविधि के माध्यम से किया गया है। अनुसंधानकर्ता ने स्वयं अवलोकन करके सूचनादाताओं से सम्पर्क किया उनके अनुभवों को साझा करके तथ्यों को प्राप्त किया है। द्वैतीयक स्त्रोत के माध्यम से व्यापक तौर पर पूर्व में किये गये अध्ययन, पत्र-पत्रिका, प्रकाशित रिपोर्ट, इंटरनेट तथा अन्य शोधकर्ताओं के द्वारा पूर्व में किये गये अध्ययन व प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध ग्रन्थों का अध्ययन किया गया।

विश्लेषण :- परिवार सामाजिक संगठन की मौलिक इकाई हैं। परिवार समाजीकरण का प्राथमिक आधार हैं। परिवार को हम संस्था तथा समिति दोनों ही रूपों में देखते हैं। परिवार को जब नियमों या कार्यप्रणाली के रूप में देखे तो संस्था हैं और सदस्यता के दृष्टिकोण में समिति हैं। परिवार की स्थिति मानव समाज में केन्द्रीय होती हैं। उत्तरदाताओं के परिवार के संबंध में उनसे प्राप्त जानकारी तालिका संख्या 1 में प्रदर्शित है।

तालिका संख्या-1

परिवार का स्वरूप

परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	181	60.33
एकाकी परिवार	119	39.66
कुल योग	300	100

उक्त तालिका संख्या 1 में विवाहित कामकाजी महिलाओं के परिवारिक स्वरूप को ज्ञात किया गया हैं, जिसको संयुक्त व एकाकी परिवार में बॉटा हैं। 60.33 प्रतिशत संयुक्त परिवार, 39.66 प्रतिशत एकाकी परिवार से सम्बंधित हैं। उक्त विश्लेषण से स्पष्ट हुआ हैं कि संयुक्त परिवार में रहने वाली विवाहित कामकाजी महिलाओं की संख्या सबसे अधिक हैं। आगे उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के माध्यम से यह प्राप्त हुआ हैं कि संयुक्त परिवार में रहने के कारण महिलाओं को खाली समय प्राप्त हो जाता हैं, क्योंकि सदस्यों कि संख्या अधिक होने से घर के कार्यो में आसानी रहती हैं।

वर्तमान में परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परिवार के अधिकांश सदस्य नौकरी पेशा से जुड़े हैं। चाहे वे सरकारी, निजी या अन्य कोई व्यवसाय हो हर क्षेत्र में रोजगार के साधन हैं। उत्तरदाताओं के व्यवसाय के संबंध में प्राप्त जानकारी तालिका संख्या 2 में प्रदर्शित हैं।

तालिका संख्या-2

व्यवसाय सम्बंधी विवरण

व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
बैंकिग	39	13
शिक्षा	99	33
चिकित्सा	25	8.33
राजस्व	47	15.66
अन्य व्यवसाय	90	30
कुल योग	300	100

उक्त तालिका संख्या 2 में विवाहित कामकाजी महिलाओं के व्यवसाय को स्पष्ट किया गया हैं जिसमें 13 प्रतिशत बैंकिग क्षेत्र में संलगन हैं, इसी प्रकार 33 प्रतिशत शिक्षा, 8.33 प्रतिशत चिकित्सा , 15.66 प्रतिशत राजस्व, 30 प्रतिशत अन्य व्यवसायों में संलगन हैं, जैसे अपना व्यवसाय, ब्यूटी पार्लर, नगर निगम, रेलवे, पुलिस, नर्स, व अन्य कई क्षेत्रों में संलगन महिलाओं को भी शोधकर्त्री ने अपने अध्ययन में सम्मिलित किया हैं। इससे यह ज्ञात होता हैं कि सूचनादाताओं में सबसे अधिक शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत हैं। आगे तथ्यों के अनुरूप निष्कर्ष प्राप्त हुआ हैं कि शिक्षा क्षेत्र में कार्य कर रही महिलाओं को खाली समय अधिक प्राप्त हो जाता हैं, क्योंकि विद्यालय और महाविद्यालय में अधिक अवकाश रहता हैं, जिसका उपयोग वह कई कामों में करती हैं। अन्य व्यवसायों वाली उत्तरदाताओं को खाली समय का अभाव रहता हैं जिस कारण वे अपने मन चाहे कार्य नही कर पाती हैं।

समाज में अपनी पद प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए उसकी आर्थिक स्थिति का सुदृढ़ होना आवश्यक है। भारतीय समाज में आर्थिक स्थिति का जब उल्लेख होता है तो पुरूष वर्ग के सन्दर्भ में ही किया जाता है। लेकिन रोजगार के बदलते परिवेश में पुरूष व महिला दोनों ही अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में सहयोग दे रहे हैं। उत्तरदाताओं की मासिक आय संबंधी जानकारी तालिका संख्या 3 में प्रदर्शित है।

तालिका संख्या-3

मासिक आय

मासिक आय (हजार रू. में)	संख्या	प्रतिशत
30 तक	127	42.33
30 से 40	32	10.66
40 से 50	51	17

50 से 60	22	7.33
60 से 1 लाख	14	4.66
1 लाख से 2 लाख	20	6.66
2 लाख से अधिक	20	6.66
कुल योग	300	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 3 में महिलाओं की मासिक आय का विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि सर्वाधिक 42.33 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 30 हजार तक है। 10.66 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 30 से 40 हजार हैं। 17 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 40 से 50 हजार हैं। 7.33 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 50 से 60 हजार हैं। 4.66 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 60 हजार से एक लाख तक है। 6.66 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 1 लाख से 2 लाख हैं। 6.66 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 2 लाख से अधिक हैं। इससे यह ज्ञात होता हैं कि इसमें 30 हजार तक मासिक कमाने वाली महिलायें सबसे अधिक हैं और न्यूनतम संख्या 60 हजार से 1 लाख तक मासिक आय वाली महिलाओं की है। तथ्यों के अनुसार यह भी प्राप्त हुआ हैं कि कम मासिक आय होने के कारण महिलायें खाली समय का प्रयोग अधिक व्यय वाली गतिविधियों में नहीं करती हैं।

देखा जायें तो विवाहित कामकाजी महिलाओं की जिम्मेदारियों की कमी नहीं हैं। कार्यशील महिलाओं को गृहस्थी व कार्यालय की दोहरी भूमिका के निर्वहन में समय का काफी अभाव रहता हैं। कुछ महिलाएं कामकाज में व्यस्त होने के कारण अपने लिए खाली समय नही निकाल पातीं तो कुछ महिलाओं को काम के बाद भी खाली समय मिल जाता है। यहाँ यही जानने का प्रयास किया गया हैं कि विवाहित कार्यशील महिलाओं को खाली समय प्राप्त हो जाता हैं या नही। उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी को तालिका संख्या 4 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-4

खाली समय मिल जाता हैं।

जानकारी का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
हॉ	192	66
नही	102	34
कुल योग	300	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 4 के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि 66 प्रतिशत विवाहित कामकाजी महिलाओं को दोहरी भूमिका के बाद भी खाली समय मिल जाता है। वहीं 34 प्रतिशत महिलाओं को दोहरी भूमिका में अपने लिए समय नही मिलता। तथ्यों के अनुरूप यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश महिलाओं को दोहरी भूमिका के बाद भी अपने लिए खाली समय मिल जाता है क्योंकि वह संयुक्त परिवार में रहती हैं। वहीं जिन उत्तरदाताओं को खाली समय कम प्राप्त होता हैं के अधिकतर एकाकी परिवार में रहती हैं। परिवार के कार्यो की जिम्मेदारी उन्हीं के ऊपर होती है तथा उनका व्यवसाय भी उन्हें प्रभावित करता है। देर तक कार्यालय में समय व्यतीत करना जो उनको मानसिक तथा शारीरिक थकावट देता है। तथ्यों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त है कि परिकल्पना संख्या 1 ''विवाहित कार्यशील महिलाओं को खाली समय का अभाव रहता हैं।'' परिकल्पना सार्थक सिद्ध नही हुई हैं।

अधिकतर महिलाओं को कामकाज में व्यस्त होने के बाद भी अपने लिये खाली समय मिल जाता है जिसका उपयोग वह किसी न किसी ढंग से कर लेती हैं। शोधकर्त्री ने यह भी जानने का प्रयास किया कि उत्तरदाताओं को कितना खाली समय प्राप्त हो जाता हैं? उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी तालिका संख्या 5 में प्रदर्शित हैं।

तालिका संख्या-5

कितना खाली समय प्राप्त होता हैं?

जानकारी का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1 घण्टे तक	20	10.41
1 से 2 घण्टा	60	31.12
2 से 4 घण्टा	90	46.68
4 घण्टे से अधिक	22	11.45
कुल योग	192	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 5 के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि 10.41 प्रतिशत उत्तरदाताओं को 1 घण्टा प्राप्त होता हैं। इसी प्रकार 31.12 प्रतिशत को 1 से 2 घण्टा, 46.68 प्रतिशत को 2 से 4 घण्टा, 11.45 प्रतिशत 4 घण्टे से अधिक प्राप्त होता हैं। तथ्यों के अनुरूप यह ज्ञात हुआ हैं कि अधिकांश महिलाओं को दोहरी भूमिका के बाद भी अपने लिए थोड़ा बहुत खाली समय मिल जाता हैं। अधिकतर उत्तरदाता संयुक्त परिवार में रहती हैं जिसके कारण घर के कार्यों की जिम्मेदारी थोड़ी कम हो जाती है, जिससे उन्हें खाली समय प्राप्त हो जाता है। शिक्षा क्षेत्र में होना भी उनके समय को प्रभावित करता है। शिक्षिका होने के नाते उन्हें समय अधिक प्राप्त हो जाता है। वहीं

जिन उत्तरदाताओं को खाली समय कम प्राप्त होता है अधिकतर वह उत्तरदाता एकाकी परिवार में रहती हैं, जिसके कारण उनके कार्यो की जिम्मेदारी उन्ही के ऊपर होती हैं।

कार्यशील महिलायें काफी रचनात्मक होती हैं। वे अपने व्यस्त समय के तनाव को दूर करने के लिए कोई न कोई माध्यम अवश्य निकाल लेती हैं। विवाहित कार्यशील महिलायें अपने खाली समय का उपयोग किन कार्यो को करने में करती हैं उसका विवरण तालिका संख्या 6 में प्रदर्शित हैं।

तालिका संख्या-6

खाली समय के कार्य

कार्यों का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
सामाजिक क्रियाकलाप में भागीदारी	70	36.45
टी0 वी0 देखना	40	20.83
सोशल मीडिया	30	15.62
गाने सुनना	20	10.41
अन्य	32	16.66
कुल योग	192	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 6 के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि विवाहित कार्यशील महिलायें सबसे अधिक सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी 36.45 प्रतिशत, 20.83 प्रतिशत टी0वी0, 15.62 प्रतिशत सोशल मीडिया, 10.41 प्रतिशत गाने सुनना व अन्य 16.66 प्रतिशत में फिल्म देखना, घूमना, उपन्यास पड़ना, आदि कार्यों को खाली समय में करती हैं। तथ्यों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अधिसंख्यक उत्तरदाता सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी करके अपने खाली समय का सदुपयोग करती हैं। अध्ययन में अधिकतर उत्तरदाता शिक्षा क्षेत्र से संबंधित हैं जिस कारण वे अधिक सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी निभाती हैं। प्राप्त जानकारी के अनुसार अधिकतर महिलाओं को घर से बाहर की गतिविधियॉ पसंद होती हैं। टी0 वी0 व सोशल मीडिया देखने वाली उत्तरदाता अधिकतर बाहरी कार्यो को करना कम पसंद करती हैं। घर के अन्दर ही अपने खाली समय का उपयोग करती हैं। अधिकतर महिलायें कम आय के कारण भी अधिक खर्च नही करती हैं। तथ्यों से यह निष्कर्ष प्राप्त हैं कि परिकल्पना संख्या 2 ''विवाहित कार्यशील महिलायें खाली समय का उपयोग टी0 वी0 देखने में अधिक व्यतीत करती हैं।'' सार्थक सिद्ध नही हुई हैं।

महिलायें अपना व्यस्त समय निकालकर सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी निभाती हैं जिससे वे अपने व्यस्त समय का तनाव कम करती हैं अनेक अलग-अलग व्यक्तियों से मिलती हैं उनसे प्रभावित होती हैं, जिससे सामाजिक अन्तक्रिया बढ़ती हैं। महिलाओं को सामाजिक व सांस्कृतिक चीजों से जोड़ती हैं। शोधकर्त्री ने उनसे यह जानने का प्रयास किया कि वे कौन सी सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी निभाती हैं? जिसका विवरण तालिका संख्या 7 में प्रदर्शित हैं।

तालिका संख्या-7

कौन सी सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी

क्रियाकलाप	संख्या	प्रतिशत
शादी समारोह	35	50
सांस्कृतिक कार्य	15	21.42
सामाजिक समारोह	10	14.28
अन्य	10	14.28
कुल योग	70	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 7 से स्पष्ट हैं कि 50 प्रतिशत महिलायें शादी समारोह में जाती हैं। इसी प्रकार 21.42 प्रतिशत महिलायें सांस्कृतिक कार्य, 14.28 प्रतिशत महिलायें सामाजिक समारोह, 14.28 प्रतिशत महिलायें अन्य सामाजिक क्रियाकलापों में जैसे चुनावी ड्यूटी में भाग लेना, समाजसेवा, कमेटी, गरीब बच्चों की मदद आदि में अपने खाली समय का उपयोग करती हैं। तथ्यों स्पष्ट हुआ हैं कि अधिकतर उत्तरदाता शादी समारोह में अधिक रूचि लेती हैं। अधिकतर उत्तरदाता लोगों से मिलना, पारिवारिक सम्बन्धों व सामाजिक सम्बन्धों को जोड़ने में अधिक ध्यान देती हैं। आगे यह भी ज्ञात हुआ हैं कि अधिकतर महिलायें अपने व्यवसाय के कारण सामाजिक समारोह में भागीदारी करती हैं, न कि अपनी पसंद से।

महिलाओं में कई महिलाएं कुछ अलग करना चाहती हैं उनके कुछ सपने होते हैं, जिन्हें वह पूरा करने को अग्रसर रहती हैं। परंतु नौकरी लग जाने व शादी हो जाने के बाद वे कार्यालय व गृहस्थी के बीच सन्तुलन साधने में अपना पूर्ण जीवन व्यतीत कर देती हैं। शोधकर्त्री ने उनसे यह जानने का प्रयास किया कि विवाहित कार्यशील महिलाओं में सीखने की चाह होती हैं या नही। इसका विवरण तालिका संख्या 8 में प्रदर्शित हैं।

तालिका संख्या-8
नया सीखने की चाह

सीखने की चाह	संख्या	प्रतिशत
हॉ	174	58
नही	126	42
कुल योग	300	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 8 से स्पष्ट हुआ हैं कि 58 प्रतिशत महिलाओं को कुछ नया सीखने की चाह होती हैं, वही 42 प्रतिशत महिलाओं को नया सीखने की चाह नहीं होती हैं। तथ्यों से यह स्पष्ट हुआ हैं कि अधिकांश महिलाओं को नया सीखने व करने की चाह होती है और वे अपनी चाह को पूरी करती हैं क्योंकि उनका परिवार उन्हें सहयोग देता है। वहीं तथ्यों से यह निष्कर्ष भी प्राप्त हुआ हैं कि जिन महिलाओं को नया सीखने की चाह नही हैं उनमें कुछ महिलायें ऐसी हैं जो कुछ नया सीखना नही चाहती हैं और कुछ महिलायें ऐसी हैं जो सीखने की चाह रखती हैं लेकिन उन्हें दोहरी भूमिका के कारण समय नहीं मिला, ऐसी महिलायें ज्यादातर मानसिक तनाव में रही हैं। स्पष्ट हैं कि महिलाओं में कुछ नया सीखने की ललक हमेशा से रहती हैं। लेकिन अनंत भूमिकाओं के कारण समय न मिलना और जो समय प्राप्त होता हैं वह अन्य कार्यो में व्यतीत हो जाता हैं और कुछ करने की चाह कहीं दब जाती हैं। तथ्यों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ हैं कि परिकल्पना संख्या 3 ''विवाहित कार्यशील महिलाओं में सीखने की चाह रहती हैं।'' परिकल्पना सार्थक सिद्ध होती है।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विवाहित कार्यशील महिलायें अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आत्मनिर्भर बनने के लिए दोहरी भूमिका में लीन रहती हैं। तथ्यों से यह ज्ञात हुआ हैं कि दोहरी भूमिका के कारण भी महिलाओं को थोड़ा बहुत खाली समय प्राप्त हो जाता हैं। अधिकतर उत्तरदाताओं की संयुक्त परिवार में रहने के कारण घर के कार्यों की जिम्मेदारी थोड़ी कम हो जाती हैं। कार्यशील महिलायें खाली समय का उपयोग सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी अधिक निभाने में करती हैं तथा टी0वी0 देखने में व्यतीत करती हैं। सामाजिक क्रियाकलापों में भागीदारी से वे अपने आपको समाज से जोड़ती हैं। घर से बाहर निकलकर अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति करती हैं, जिससे उन्हें सम्मान प्राप्त होता हैं। इससे यह ज्ञात होता हैं कि कार्यशील महिलायें खाली समय में बाहरी गतिविधियों को अधिक पसंद करती हैं। कार्यशील महिलायें शादी समारोह में अधिक रूचि लेती हैं क्योंकि वह सामाजिक रूप से जुड़ने में विश्वास करती हैं और अपनी अलग पहचान प्रदर्शित करती हैं। साथ ही यह भी ज्ञात हुआ हैं कि अधिकांश विवाहित कामकाजी महिलायें कुछ नया करना या सीखना चाहती थी उस चाह को पूरी करती हैं। लेकिन उन महिलाओं की भी कमी नही हैं जो दोहरी भूमिका में व्यस्त रहने के कारण नही कर पायी जिससे यह ज्ञात हुआ हैं कि महिलायें अभी खुलकर अपने खाली समय का उपयोग नही कर पाती हैं।

सन्दर्भ

1. माथुर दीपा, 'वूमेन फैमिली एण्ड वर्क,' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1992, पृ. 23
2. Rochel, Silvey & Elmhirst Rebecca , *'Engendering Social Capitals: Women Workers and an Rural- Urban Networks in Indonesia"s Crisis World Development'*, 31 May, 2003, p.p. 65-79
3. राकेश वी0 पी0, 'कामकाजी महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता एवं राजनीतिक सहभागिता'', शोध मंथन, वॉ0 7 न0 2, 2016 पृ. 24-31
4. पवार रेनू, 'कार्यरत महिलाओं के परिवारिक समायोजन का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', शोध मंथन, वा8 8 नं03 सितबर, 2017, पृ.150-156
5. सिंह ऋचा, 'कार्यरत महिलाओं के समक्ष व्यवसाय और गृह का भूमिका द्वन्द', राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018, पृ.102
6. निमकाफ उद्धत कपूर प्रमिला, 'मैरिज एण्ड वर्किंग विमेन इन इण्डिया', विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1961, पृ. 14-15

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ रिंकी आर्या

सूचक शब्दः– महिला, सशक्तीकरण, स्वयं सहायता समूह, भूमिका।

महिला सशक्तीकरण आज के समय का एक ज्वलन्त मुद्दा है जो महिलाओं को पुरूषों के समान विकास के अवसर प्रदान करने के पक्ष में है। सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान हेतु वर्तमान में अनेकों योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन और संचालन किया जा रहा है जिससे ग्रामीण महिलाओं को उनके क्षेत्र में ही बचत करने, ऋण सुविधा, कौशल प्रशिक्षण एवं रोजगार के अवसर देकर उनको सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्त किया जा सके जिससे वे स्वयं, गांव एवं देश के विकास में भागीदारी कर सकें। इसी क्रम में भारत सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु स्वयं सहायता समूह योजना का संचालन किया जा रहा है जो ग्रामीण महिलाओं को उनके क्षेत्र में ही रोजगार प्राप्त करा कर महिलाओं के सशक्तीकरण की एक अग्रणी योजना बन कर उभरी है। प्रस्तुत अध्ययन 'महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिकाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' हल्द्वानी विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में है जिसमें स्वयं सहायता समूहों में कार्यरत महिलाओं के सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का अध्ययन करके समूहों में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक इत्यादि और समूह में भागीदारी एवं महिला सशक्तीकरण को जानने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना : किसी भी देश के विकास में पुरूषों के साथ-साथ महिलाओं का योगदान भी नितांत आवश्यक होता है। महिलाएं समाज का अभिन्न अंग हैं। अतः सामाजिक, आर्थिक विकास की अवधारणा महिलाओं के विकास एवं सशक्तीकरण के बिना अधूरी है। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए पं जवाहर लाल नेहरू कहते हैं कि–"यदि आपको विकास करना है तो महिलाओं का उत्थान करना होगा। महिलाओं का विकास होने से समाज का विकास स्वतः हो जाएगा।"[1] हमारा देश एक ग्राम प्रधान देश है और यहां की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है इसमें आधी आबादी इन्हीं महिलाओं की है। अतः विकास के किसी भी क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता के बिना किसी भी राष्ट्र का विकास अधूरा माना जाएगा।

गरीबी समाप्त करने और ग्रामीण महिलाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार की ओर से समय-समय पर विभिन्न प्रकार की योजनाएं चलायी जा रही हैं जिससे ग्रामीण महिलाओं को अपने गांव में ही रोजगार प्राप्त हो सकें और गरीबी को समाप्त किया जा सके। गरीबी उन्मूलन के लिए भारत सरकार द्वारा निम्न प्रकार की योजनाएं एवं कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है जैसे-मनरेगा योजना,[2] मुद्रा योजना, स्टार्टअप भारत योजना, स्टैंडअप योजना, दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना, जनधन योजना, दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन योजना एवं स्वयं सहायता समूह योजना इत्यादि।

नाबार्ड ने स्वयं सहायता समूहों के द्वारा गरीब महिलाओं को सूक्ष्म वित्त की सुविधा देते हुए उन्हें संगठित बैंकिंग सेवा से जोड़ने का प्रयत्न किया है।[3] स्वयं सहायता समूह की यह योजना दो तरीके से ग्रामीण विकास में सहायता पहुंचाती है। पहला तरीका, यह निम्न स्तर के निर्धनों को गरीबी दूर करने का अवसर देती है एवं दूसरा तरीका, यह उन लोगों का सशक्तीकरण भी करती है जिससे वे अपना निर्णय स्वयं ले सकें। संगठित रूप से बाहरी दुनिया के साथ उनका संपर्क बढ़े एवं वे नेतृत्वकर्ता की भूमिका में आ सकें।[4]

इस दिशा में, भारत सरकार द्वारा 'स्वयं सहायता समूह' कार्यक्रम का सूत्रपात महिलाओं को रोजगार की दिशा में आगे बढ़ाते हुए सशक्त और सबल बनाने के लिए किया गया है। स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बनकर ग्रामीण महिलाओं हेतु वरदान साबित हो रहा है।[5] वैश्विक स्तर पर स्वयं सहायता समूहों का प्रारम्भ बांग्लादेश से माना जाता है। 1976 में

❑ **शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, एम.बी.जी.पी.जी. कॉलेज हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)**

चिटगांव विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री प्रोफेसर मोहम्मद युनूस को स्वयं सहायता समूहों का सृजनकर्ता कहा जाता है।[6] विकासशील देशों के लिए स्वयं सहायता समूह जमीनी स्तर पर जनसामान्य के आर्थिक सशक्तीकरण का एक अहम माध्यम है। वहीं दूसरी तरफ इस अवधारणा को न केवल आम लोगों द्वारा अपनाया जाता है बल्कि दुनिया भर की सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं भी स्वयं सहायता समूह के महत्व समझने लगी हैं। भारत में आर्थिक उदारीकरण के दौरान स्वयं सहायता समूहों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया और इस प्रक्रिया में ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) का मुख्य योगदान रहा। वहीं भारत की नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान स्वयं सहायता समूहों को जमीनी स्तर पर विकासात्मक योजनाओं के कार्यान्वयन में उपयोग में लाया गया।[7]

महिला सशक्तीकरण : सशक्तीकरण ऐसी प्रक्रिया है जो एक व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से अपने विकास के संबंध में ठोस निर्णय लेने और प्रभावी गतिविधियों में सम्मिलित होने के योग्य बनाती है।[8] इस प्रकार महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं को पुरूषों के समान वैधाानिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता हो।[9]

प्रेजर और सेन, ने महिला सशक्तीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है "महिला सशक्तीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें कोई शक्तिहीन अपने जीवन के पहलुओं पर बेहतर नियंत्रण पा लेता हैं। इसके अन्तर्गत भौतिक, बौद्धिक, मानवीय, आर्थिक, विश्वास, मूल्य एवं मनोवृत्ति सभी सम्मिलित हैं।[10]

महिलाओं के उत्थान के लिए भारत सरकार समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाओं को क्रियान्वयन करती रहती है जिससे महिलाएं सशक्त हों, अधिकार सम्पन्न हों, विकास की प्रक्रिया में समानता का अवसर मिले। इसी क्रम में वर्ष 1975 को 'महिला दिवस' के रूप में और वर्ष 2001 को 'राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण वर्ष' के रूप के मनाने की घोषणा करके सरकार ने महिलाओं को विकास के हर क्षेत्र में समान का अवसर प्रदान करने का प्रयास किया है।

स्वयं सहायता समूह :- स्वयं सहायता समूह के अंतर्गत 10-20 महिलाएं, जोकि समान सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि और समान विचारधारा से संबंधित हैं, अपनी छोटी-छोटी बचतों को इकठ्ठा करके कोष बना लेती हैं और इस कोष की धनराशि का इस्तेमाल सदस्यों के द्वारा अपनी उत्पादन या उपभोग संबंधी जरूरतों की पूर्ति हेतु किया जाता है।[11] गुप्ता व पंथी के अनुसार-'वास्तव में स्वयं सहायता समूह गांव के व्यक्तियों का एक ऐसा संगठन है जो अपनी स्वेच्छा से संगठित होकर, नियमित स्तर पर थोड़ी -थोड़ी बचत कर सामूहिक रूप से निधि जमा करते हैं और जिसका उपयोग सदस्यों की आकस्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।'[12] भारत सरकार द्वारा महिलाओं को आर्थिक स्तर पर सशक्त बनाने हेतु प्रति वर्ष विभिन्न योजनाएं एवं कार्यक्रमों का संचालन करती है जिससे ग्रामीण महिलाएं अपने क्षेत्र में रहते हुए ही अपने आपको रोजगारपरक बना सकें जिसके लिए सरकार द्वारा अनेक योजना एवं कार्यक्रमों का संचालन किया रहा है जिसमें से 'स्वयं सहायता समूह' एक प्रमुख योजना है जो महिला सशक्तीकरण में अहम भूमिका का निर्वाह कर रही है।

साहित्य समीक्षा :- सूर्यमुर्ति, आर. ने 'माइक्रो फाइनेन्स एण्ड कास्ट वीमेन सेल्फ हेल्प ग्रुप्स इन केरलः लोन फॉर मेम्बर्स ऑर अदर्स' के अपने अध्ययन में स्वयं सहायता समूहों का महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया और अध्ययन में पाया कि स्वयं सहायता समूहों से उपार्जित ऋण को महिलाएं आपस में विभाजित करके अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं का निवारण करती हैं।[13]

पाण्डेय, शशि ने अपने अध्ययन 'स्वयं सहायता समूह, लघु ऋण एवं महिला सशक्तीकरण : एक अध्ययन' में पाया कि महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने में, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्त बनाने और उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने में स्वयं सहायता समूहों ने अहम भूमिका निभायी है। साथ ही उनको विशिष्ट पहचान दिलाने में विशेष योगदान दिया है जिस कारण महिलाएं स्वयं एवं गांव के विकास में भी अहम भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।[14]

सूंठा, चंद्र दत्त, ने अपनी पुस्तक 'लघु वित (माइक्रोफाइनेन्स) एवं ग्रामीण विकास' में कहा है कि लघु वित्त ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों एवं अति निर्धनों के सशक्तीकरण का प्रमुख उपकरण बन गया है। लघु वित्त हस्ताक्षेपों ने गरीबों तक वित्तीय सेवाओं की पहुंच, वित्तीय समावेशन तथा गरीबों

विशेष रूप से महिलाओं को सामाजिक रूप से गतिमान कर सशक्तीकृत करने के लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है।[15]

सिंह, यू. वी., हिम्मत सिंह और गुरनाम सिंह, ने अपने अध्ययन में पाया कि अगर सदस्यों का उद्देश्य अच्छा हो, तो असमान समाजार्थिक समूह भी सफलतापूर्वक चल सकते हैं। अध्ययन में अध्यक्ष, सचिव तथा कोषाध्यक्ष बेहतर शिक्षा स्तर होने के कारण अच्छे परिणाम दे पाये। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से दूरदराज के ग्रामीण गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने और उन्हें साहूकारों से मुक्ति दिलाने में लघु वित्त की यह नवीन अवधारणा आश्चर्यजनक परिणाम दे सकती है।[16]

यादव, कुलदीप एवं प्रसाद जितेन्द्र, ने अपने अध्ययन 'महिलाओं के आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूहों की भूमिकाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' में देखा है कि स्वयं सहायता समूहों में कार्यरत महिलाओं में समूह से मिले धन का आपस में लेन-देन और ऋण लेकर रोजगार से जुड़े प्रशिक्षण प्राप्त कर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने की एक प्रबल इच्छा है। निश्चय ही इस प्रकार की पहल से स्वयं सहायता समूह का गठन महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया को सशक्त करने में मील का पत्थर सिद्ध हो सकता है।[17]

तिवारी, राकेश कुमार, ने अपने अध्ययन 'महिला सशक्तीकरण एवं स्वयं सहायता समूहः एक समाजशास्त्रीय विमर्श' में पाया कि ग्रामीण महिलाओं के जीवन में स्वयं सहायता समूह का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा है। यह योजना स्थानीय स्तर पर महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों के अवसर सृजन कराकर उनके स्वावलंबन और आत्मविश्वास में वृद्धि कर रही है। स्वयं सहायता समूह ने परिवार एवं समाज में महिलाओं के निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को बढ़ाया है।[18]

सोनूपुरी, ने 'स्वयं सहायता समूह एवं महिला सशक्तीकरणः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण', के अपने अध्ययन में पाया कि स्वयं सहायता समूह निर्धनता उन्मूलन में एवं ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाई हैं। जिससे महिलाओं की अपने परिवार में आर्थिक सहभागिता बढ़ गयी है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से जमा किये गये धन से महिलाएं अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा एवं बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराने में समक्ष हुई हैं जिससे उनके जीवन में सुधार आया है। स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं के पारिवारिक निर्णय लेने की क्षमता के विकास में अहम भूमिका का निभायी है। इस प्रकार महिलाओं को बैंकिंग व्यवस्था के लेन देन संबंधी ज्ञान में बढ़ोतरी हुई है। स्वास्थ्य, शिक्षा के प्रति जागरूकता में वद्धि के साथ ही महिलाओं की कार्यकुशलता में भी बढ़ोतरी हो रही है। जिसके बाद महिलाएं अपने विचारों को स्वतंत्रत रूप से व्यक्त करने में सक्षम हो रही हैं।[19]

अध्ययन के उद्देश्य

1. स्वयं सहायता समूहों में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. स्वयं सहायता समूहों में भागीदारी के बाद महिलाओं में होने वाले सशक्तीकरण का अध्ययन करना।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन उत्तराखण्ड राज्य में स्थित जनपद नैनीताल के हल्द्वानी विकासखण्ड के ग्राम पंचायत 'वजूनियाहल्दू' के कुल 10 स्वयं सहायता समूहों में कार्यरत कुल 95 महिला उत्तरदाताओं में से 60 प्रतिशत (57) महिला उत्तरदाताओं पर आधारित है जिनका चयन दैव निदर्शन की लॉटरी पद्धति द्वारा अध्ययन की इकाई के रूप में किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची एवं द्वितीय तथ्यों का संग्रहण पुस्तकों, शोध पत्रिका, समाचार पत्रों एवं मासिक पत्रिकाओं एवं भारत जनगणना इत्यादि के माध्यम से किया गया है। तत्पश्चात् प्राप्त आकड़ों का सारणीयन, वर्गीकरण एवं विश्लेषित किया गया है।

तालिका संख्या -01

जागरूकता में वृद्धि आधार पर उत्तरदाताओं का विवररण

जागरूकता में वृद्धि	आवृति	प्रतिशत
हॉ	34	59.65
नहीं	23	40.35
कुल योग	57	100

उपर्युक्त तालिका 01 से स्पष्ट होता है कि 59.65 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि समूह में भागीदारी के बाद उनकी जागरूकता में वृद्धि हुई है। जबकि 40. 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इससे इनकार किया है। वहीं ज्यादातर 59.65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जागरूकता में वृद्धि को स्वीकार किया हैं।

तालिका संख्या-02

निर्णय लेने की क्षमता के विकास में वृद्धि के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि	आवृति	प्रतिशत
हॉ	33	57.89
नहीं	24	42.11
कुल योग	57	100

उपर्युक्त तालिका 02 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 57.89 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं का मानना है कि समूह में भागीदारी के पश्चात् उनकी निर्णय क्षमता का विकास हुआ है और अब वे किसी भी मुद्दे पर बेहतर निर्णय लेने लगी हैं जबकि 42.11 प्रतिशत उत्तरदाताओं का उत्तर नकारात्मक रहा। वहीं अधिकतर 57.89 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा निर्णय में वृद्धि को माना गया है।

तालिका संख्या -03

परिवार के महत्वपूर्ण मुद्दों पर राय देने के अधिकार में वृद्धि के आधार पर उत्तरदाताओं का विवररण

राय देने के आधिकार में वृद्धि	आवृति	प्रतिशत
हॉ	37	64.91
नहीं	20	45.61
कुल योग	57	100

उपर्युक्त तालिका 03 से स्पष्ट होता है कि 64.91 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना हैं कि समूह में भागीदारी करके उनके ज्ञानवर्द्धन में वृद्धि होने से वह परिवार के लिए बेहतर राय देने में अपने आपको सक्षम महसूस करती हैं जिसके कारण उनकी राय का महत्व पहले से बढ़ गया है । जबकि 45.61 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि उनकी स्थिति में परिवार में राय देने के संबंध में कोई बदलाव नहीं आया है। स्पष्ट है कि समूह की अधिकांश 64.91 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने यह बात स्वीकार किया कि उनको परिवार के महत्वपूर्ण मुद्दों पर राय देने के अधिकार में वृद्धि हुई है।

तालिका संख्या-04

आर्थिक स्तर पर मजबूती के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

आर्थिक स्तर पर मजबूती	आवृति	प्रतिशत
हॉ	30	52.63
नहीं	27	47.37
कुल योग	57	100

तालिका 04 से स्पष्ट होता है कि 52.63 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि वे समूह में भागीदारी के बाद आर्थिक स्तर पर मजबूत हुई हैं जबकि 47.37 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक स्तर में मजबूती के विपक्ष में उत्तर दिया। स्पष्ट है कि ज्यादातर उत्तरदाताओं द्वारा आर्थिक स्तर में वृद्धि को स्वीकार किया गया।

तालिका संख्या-05

रोजगार के अवसरों की प्राप्ति में वृद्धि के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

रोजगार के अवसरों की प्राप्ति	आवृति	प्रतिशत
हॉ	31	54.39
नहीं	26	45.61
कुल योग	57	100

उपर्युक्त तालिका 05 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 54.39 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने माना कि समूह में भागीदारी के बाद उनको अनेकों रोजगार जैसे, पशुपालन, डेयरी उत्पादन एवं मशरूम उत्पादन इत्यादि के द्वारा रोजगार के अवसरों की प्राप्ति हुई है जबकि 45.61 प्रतिशत उत्तरदाता रोजगार से अभी वंचित हैं। स्पष्ट है कि अधिकतर 54.39 प्रतिशत उत्तरदाताओं को रोजगार की प्राप्ति हुई है।

तालिका संख्या-06

समूह द्वारा अर्जित आय को खर्च करने की स्वतंत्रता के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

आय खर्च करने में स्वतंत्रता	आवृति	प्रतिशत
हॉ	37	64.91
नहीं	21	36.84
कुल योग	57	100

उपर्युक्त तालिका 06 से स्पष्ट होता है कि 64.91 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें समूह में भागीदारी करके जो धन प्राप्त होता है वे उसे खर्च करने में स्वतंत्रत हैं जबकि 36.84 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने कहा कि उन्हें अभी भी अपनी अर्जित आय को खर्च करने की पूर्ण रूप से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। इससे स्पष्ट है कि अधिकतर 64.91 प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि उन्हें समूह से अर्जित आय को खर्च करने की स्वतंत्रता है।

तालिका संख्या-07
बैंकिंग लेन-देन संबंधी जानकारी में वृद्धि के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

जानकारी में वृद्धि	आवृति	प्रतिशत
हॉ	38	66.67
नहीं	19	33.33
कुल योग	57	100

उपर्युक्त तालिका-07 से स्पष्ट होता है कि 66.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि हॉ समूह में भागीदारी करने के बाद उन्हें बैंकिंग लेन-देन संबंधी जानकारी में वृद्धि हुई है, जिसके बाद वे बैंक के लेन देन संबधी कार्यों को स्वयं करने में सक्षम हो गयी हैं। जबकि 33.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि अशिक्षित या कम शिक्षित होने के कारण उन्हें बैंकिंग प्रणाली जटिल लगती है और वे अभी भी बैंकिंग लेन-देन से संबंधी कार्यों को करने में अपने को असमर्थ मानती हैं। विवरण से स्पष्ट है कि अधिकांश 66.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का समूह में भागीदारी के पश्चात् बैंकिंग लेन-देन संबंधी ज्ञान में वृद्धि हुई है।

तालिका संख्या-08
परिवार से प्राप्त सम्मान में वृद्धि के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

उत्तर	आवृति	प्रतिशत
हॉ	39	68.42
नहीं	18	31.58
कुल योग	57	100

तालिका संख्या-08 के विश्लेषण से पता चलता है कि 68.42 प्रतिशत महिलाएं यह स्वीकार करती हैं कि समूह में भागदारी के पश्चात् उनके परिवार से मिलने वाले सम्मान में वृद्धि हुई है जबकि 31.58 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उन्हें परिवार से मिलने वाले सम्मान में कोई बदलाव नहीं आया है। स्पष्ट है कि अधिकतर उत्तरदाताओं को परिवार से मिलने वाले सम्मान में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त विवरण के अवलोकन से स्पष्ट है कि स्वयं सहायता समूह महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सशक्तीकरण में उल्लेखनीय कार्य कर रहा हैं जिसमें महिलाएं भागीदारी करके अपने आपको समाज में अलग पहचाने बनाने में सफल हुई हैं। स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण महिलाओं को जागरूक बनाने में एवं सही निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि की है साथ ही उनको परिवार के महत्वपूर्ण मुद्दों पर अपनी राय देने का अधिकार दिया है और रोजगार देकर उनकी आर्थिक स्थिति का भी मजबूत किया है, जिसके बाद महिलाओं में स्वयं द्वारा अर्जित आय को अपनी स्वेच्छा से खर्च करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी है और अब वे बैंकिंग प्रणाली की जटिल प्रक्रिया को समझने में सक्षम हो गयी हैं। ये सब कार्य महिलाओं को सशक्तीकरण की दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जिसने उनको परिवार में सम्मान की प्राप्ति में भी मदद की है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि स्वयं सहायता समूह महिलाओं को सशक्त करने में, सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक रूप ऊपर उठाने का सफल उपकरण के रूप में कार्य कर रहे हैं जिससे जुड़कर अधिकांश महिलाओं को रोजगार प्राप्त हुआ है वहीं महिलाओं का एक भाग ऐसा भी है जो समूह में भागीदारी के बाद भी सशक्तीकरण से वंचित है। इससे स्पष्ट है कि सफलता की राह अभी दूर है यह तब पूरी नहीं होगी जब समूह से जुड़ी प्रत्येक महिला सशक्त नहीं हो जाएगी। सरकार को सभी के समान अवसर के लिए अभी और कार्य करने की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार को जमीनी-स्तर पर कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. मोदी के. एम.,'ग्रामीण महिला रोजगार में स्वयं सहायता समूहों का योगदान', कुरूक्षेत्र, वर्ष 60, अंक 12, अक्टूबर 2014, पृ. 25
2. कुमार श्याम, 'महिला सशक्तीकरण में मनरेगाा की भूमिकाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा,वर्ष 18, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016, पृ.145
3. मोदी के. एम., पूर्वोक्त, पृ. 26
4. गौरव कुमार, 'ग्रामीण विकास परियोजनाएं : एक नजर में', कुरूक्षेत्र, वर्ष 60 अंक 4, फरवरी 2014, पृ.30
5. मोदी के. एम., पूर्वोक्त, पृ. 26
6. जोशी, घनश्याम एवं सिंह अवधेन्द्र प्रताप, 'सामाजिक कल्याण' (बापा 202) उत्तराखण्ड़ मुक्तविश्वविद्यालय, 2014, पृ.213
7. तिवारी नीलेश कुमार एवं गुप्ता आकांक्षा, 'ग्रामीण भारत में गैर-सरकारी संस्थाओं, स्वयं सहायता समूहों एवं निजी क्षेत्र की सार्थक भूमिका', कुरूक्षेत्र, वर्ष 65 अंक 9, जुलाई 2019, पृ. 40
8. पंचायत सशक्तीकरणः ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों हेतु हस्त-पुस्तिका, निदेशालय पंचायतीराज उत्तराखण्ड, देहरादून (उत्तराखण्ड), 2014,पृ.78
9. कश्यप आलोक कुमार, 'भारतीय समाज में नारीः दशा एवं दिशा', आर्या पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-2012, पृ. 25
10. कुमार श्याम, पूर्वोक्त, पृ.146
11. मोदी के. एम., पूर्वोक्त, पृ.25
12. गुप्ता एवं पंथी, उद्धृत, पाण्डेय शशि, 'स्वयं सहायता समूह, लघु ऋण एवं महिला सशक्तीकरणः एक अध्ययन', इन्टरनेशनल जरनल आफ एडवांसेज इन सोशल साइंसेज, वाल्युम 4, 2016, पृ.64
13. सूर्यमुर्ति. आर., उद्धृत, सोनूपुरी, 'स्वयं सहायता समूह एवं महिला सशक्तीकरणः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण', राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा,वर्ष 17, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015, पृ.80
14. पाण्डेय शशि, पूर्वोक्त, पृ.68
15. सूंठा, चन्द्र दत्त, 'लघु वित्त (माइक्रोफाइनेन्स) एवं ग्रामीण विकास', जगदम्बा पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2010, पृ. 11-12
16. सिंह, यू. वी., सिहं हिम्मत एवं सिंह गुरनाम, उद्धृत सूंठा चंद्र दत्त, पूर्वोक्त पृ.102
17. यादव कुलदीप, 'महिलाओं के आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूहों की भूमिकाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष 17 अंक 02, जुलाई-दिसम्बर, 2015, पृ.55
18. तिवारी राकेश कुमार, 'महिला सशक्तीकरण एवं स्वयं सहायता समूह : एक समाजशास्त्रीय विमर्श', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 20 अंक 01, जनवरी-जून, 2018, पृ.59
19. सोनूपुरी, पूर्वोक्त, पृ.82

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

रोजगार के क्षेत्र में दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल केंद्रों की भूमिका का विश्लेषण

❑ सुश्री तनुजा

सूचक शब्द : ग्रामीण कौशल केन्द्र, कौशल प्रशिक्षण

लोकतांत्रिक भारत सरकार युवाओं के लिए दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना डी.डी.यू.जी.के.वाई. के माध्यम से प्रशिक्षण देने का कार्य कर रही है जिससे युवाओं में योग्यता व आत्मनिर्भरता आए। यह ग्रामीण विकास मंत्रालय का एक ग्रामीण व शहरी रोजगार कार्यक्रम है। इस योजना को 25 सितंबर 2014 को लाया गया, वर्ष 2011 जनगणना के अंतर्गत देश की ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में 15-35 वर्ष की आयु के बीच 5.5 करोड़ लगभग कामगार हैं। इसके अतिरिक्त जनसंख्या को रोजगार प्राप्ति के अवसर प्राप्त करने के उद्देश्य से सरकार 2022 तक 200-500 मिलियन प्रशिक्षित युवाओं को लक्षित कर रही है। यह अध्ययन साहित्य समीक्षा और द्वितीय आंकड़ों पर आधारित है जिसके पहले भाग में डी डी यू जी के वाई और विभिन्न कौशल प्रशिक्षण और विकास कार्यक्रम के माध्यम से समावेशी आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में इसकी अहम भूमिका है। बाद का भाग मध्यप्रदेश में योजना की प्रगति को देखता है। इस अध्ययन में द्वितीय आंकड़ों का उपयोग कर योजना की प्रगति को समझने का प्रयास किया गया है जिसे मध्यप्रदेश में राज्य कार्यान्वयन एजेंसी द्वारा आपूर्ति किया जाता हैं।

हमारे देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। इसलिए हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं, कि हिंदुस्तान की आत्मा और भविष्य गांवों में रहता है। इसके बावजूद स्वतंत्रता के इतने साल बीतने के बाद भी गांवों में रहने वाले अपने आप को पूर्ण रूप से सक्षम नहीं कर पाए। अभी भी गांवों में शिक्षा की कमी है जिससे बेरोजगारी का स्तर बढ़ता जा रहा हैं। लोग अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते, इनका भविष्य भी बहुत कठिन दिखाई देता है। इसलिए ग्रामीणों और गरीब परिवारों को अपने समृद्धि और विकास के उद्देश्य से किसी योजना या प्रशिक्षण कार्यक्रम से जुड़ना आवश्यक हैं जिससे उनका सपना साकार हो सके, वे अपने आप को प्रशिक्षित कर रोजगार पा सकें, क्योंकि देश के ग्रामीण क्षेत्र आज भी गरीबी की श्रेणी में ही आते हैं। खेती में उपज और रोजगार की संभावना भी बहुत कम होती जा रही है जिसके कारण ग्रामीण युवा तेजी से शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप बुनियादी, पारिवारिक तनाव का विस्तार हो रहा हैं। फलस्वरुप युवाओं में रोजगार की आवश्यकता और भी तेजी से बढ़ती जा रही है। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 व राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम, पंचवर्षीय योजना, लाया गया, जिसमें लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा, जागरूकता तथा आर्थिक विकास पर जोर दिया गया, वहीं मनरेगा के अंतर्गत 100 दिनों के रोजगार से अवगत कराया गया, लेकिन समय के साथ सरकार को लगा कि ग्रामीण स्तर पर रोजगार के साथ लोगों को प्रशिक्षित करना अति आवश्यक हैं जिससे ग्रामीणों में जागरूकता आएगी और वे आत्मनिर्भर बनेंगे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए अनेकानेक योजनाएँ लायी गईं। इन योजनाओं के अंतर्गत दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना अपना अहम स्थान रखती है जिसे 25 सितंबर 2014 में लागू किया गया। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 15-35 वर्ष की आयु के बीच 5.5 करोड़ संभावित कामगार हैं। सरकार 2022 तक 200-500 मिलियन प्रशिक्षित युवाओं को लक्षित कर रही है, क्योंकि सरकार का मानना है कि ग्रामीणों को रोजगार से पहले प्रशिक्षित किया जाए तो वह पूर्ण रुप से जागरूक होंगे, अपने रोजगार को पूर्ण रूप से समझेंगे। लोगों के अंदर आत्मविश्वास बढ़ेगा इसलिए सरकार द्वारा बहुत ही अपेक्षा के साथ शुरू की गई यह कौशल विकास योजना हैं।[1]

अध्ययन का महत्व : प्रस्तुत अध्ययन मध्यप्रदेश के इंदौर

❑ शोध अध्येत्री राजनीति विज्ञान, मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, इंदौर (म.प्र.)

शहर में स्थित युवाओं के लिए कौशल प्रशिक्षण के प्रभावशीलता पर केंद्रित है, जिसे भारत सरकार द्वारा उम्मीदों के साथ क्रियान्वित किया गया है।

साहित्य समीक्षा :

प्रसाद अवध[2] ने अपने अध्ययन 'गांव में सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन' के माध्यम से स्पष्ट किया कि प्रारंभ से ही ग्रामीण स्तर पर सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक परिवर्तन के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन अति आवश्यक रहा है, जिससे समाज में परिवर्तन हो सके क्योंकि ग्रामीण स्तर पर शिक्षा व सुविधाओं का अभाव देखा गया है आर्थिक स्तर भी निम्न रहता है, यही कारण है कि स्वतंत्रता के पश्चात समय-समय पर सरकार द्वारा योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया, इसे ग्रामीणों को विशेष ध्यान में रखकर तैयार किया जाता रहा है लेकिन आज भी योजनाएं संपूर्ण ग्रामीण स्तर पर सफल नहीं हो पायी क्योंकि गांव के लोगों में इसके प्रति जागरूकता नहीं आई। कुछ लोग योजनाओं को समझ नहीं पाते तो कुछ सरकारी दफ्तरों का चक्कर काटना नहीं चाहते यही कारण है कि उन्हें पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता।

सोलंकी ललिता[3] ने अपने अध्ययन 'महिला आर्थिक सशक्तीकरण एवं पंचायती राज' में बताया कि ग्रामीण स्तर पर महिलाओं की स्थिति बेहतर नहीं है, क्योंकि समाज में पुरुषों द्वारा महिलाओं को हमेशा से दबाया जाता रहा है, उन्हें चारदिवारी के अंदर ही देखा गया है। इस परिस्थिति का सबसे बड़ा कारण अशिक्षा व भेदभाव है, लेकिन समाज को अगर समृद्ध व सशक्त बनाना है तो महिलाओं को भी पुरुषों के बराबर लाना होगा उन्हें आर्थिक, शैक्षणिक व सामाजिक रूप से सक्षम बनाने की आवश्यकता है, जिससे महिलाएं देश के विकास में अपना योगदान दे सके, क्योंकि महिलाओं को शिक्षा आर्थिक रूप से स्वावलंबी एवं सामाजिक स्तर पर सशक्त बनाती है।

जोशी प्रियंका[4] ने अपने अध्ययन 'दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना' में पाया कि डी.डी.यू.जी के.वाई. युवाओं को प्रशिक्षित करने में सक्षम हैं। योजना ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत आती है, इसे न केवल विशेष प्रशिक्षण देने के लिए बनाया गया है बल्कि भविष्य को प्रशिक्षित करने का एक बड़ा परिस्थितिकीय तंत्र है। उन्होंने अपने अध्ययन से स्पष्ट किया है कि (DDUGKY) प्रशिक्षण के विशेष गुणवत्ता के लिए प्रयासों में तीन रणनीतियां सम्मिलित हैं। यह कार्यक्रम ग्रामीण परिवारों से संपर्क कर उन्हें प्रशिक्षण के लिए जागरूक करती हैं तथा उनकी बेटियों को सुरक्षा की गारंटी देती है। दूसरा (DDUGKY) रोजगार व व्यवस्था में जाने के लिए पूरा सहायता व मार्गदर्शन करती हैं। तीसरा ग्रामीण प्रवासी केंद्रों को सहयोग करती है, जिससे शहर से आने वालों की सहायता करने में मदद मिल सके। डी.डी.यू.जी के. वाई पूर्व प्रशिक्षुओं के अवधारणा में सुधार करना चाहता है, उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि महिलाएं इस प्रशिक्षण से जुड़े रहने के लिए संघर्ष करती हैं। वही परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी (PIA) ने तो यहां तक कहा कि महिलाएं केवल कुछ महीनों तक शहरी प्लेसमेंट में जाने के बाद इस रोजगार से अलग हो जाती हैं। ऐसा या तो पारिवारिक दबाव के कारण होता है, या वह ग्रामीण क्षेत्रों को ज्यादा प्राथमिकता देती है।

थॉमस टेसी[5] ने अपने अध्ययन Role of Employment Training Programme Analysis of Performance of DDUGKY' से स्पष्ट किए कि ज्यादातर कौशल विकास योजनाएं सीधे नौकरी/रोजगार की आवश्यकताओं से संबंधित होती हैं, वही व्यक्ति की अपनी सामान्य विकास के साथ एक छोटा अनुपात सम्मिलित रहता है।

करुणामति[6] ने छत्तीसगढ़ राज्य के नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में राज्य सरकार की विकास की योजनाओं के प्रभाव पर किए गए अध्ययन में पाया कि नक्सल प्रभावित छत्तीसगढ़ जैसे राज्य में सरकारी योजनाओं से ग्रामीणों को जोड़ने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसके बावजूद सरकार योजनाओं को आम जनता तक पहुंचाने में सक्षम दिख रही है, ग्रामीण स्तर पर निम्न योजनाएं लागू कर क्रियान्वित किया जा रहा है। सड़क निर्माण, शैक्षणिक, आर्थिक एव चिकित्सा स्तर को विशेष महत्व दिया गया, जिससे लोगों का बुनियादी स्तर ऊपर उठे तथा अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कार्यान्वित की गई योजनाएं ज्यादातर आम जनता तक पहुंच रही है,लेकिन जो परिवार नक्सलियों से पीड़ित हैं उनके लिए सरकार द्वारा दी जाने वाली योजनाएं पूर्ण नहीं है। वे अपनी सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं, जिस पर सरकार ध्यान दे रही है पीड़ित परिवार को रोजगार,शिक्षा के क्षेत्र में छात्रवृत्ति, प्रशिक्षण केंद्रों का संचालन किया जा रहा है जिससे ग्रामीणों में जागरूकता आये वे स्वयं को आत्मनिर्भर बना सकें।

सिंह अखिलेश कुमार[7] द्वारा झारखंड राज्य में बढ़ती

हुई बेरोजगारी पर किए गए अध्ययन 'झारखण्ड राज्य में कौशल विकास कार्यक्रम का प्रभाव' के माध्यम से स्पष्ट किया गया कि भारत में सबसे बड़ा मुद्दा बेरोजगारी है, जिसका कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है, क्योंकि जितनी तेजी से देश में जनसंख्या बढ़ रही है, उतनी ही तेजी से देश में बेरोजगारी बढ़ रही है। इस परिस्थिति में सरकार से पूर्ण रोजगार की कल्पना करना तो कठिन है, लेकिन जो हमारे देश में युवा पीढ़ी हैं, जिसकी आयु 15-35 के बीच है जिसके रोजगार के लिए सरकार द्वारा चलाए गए कौशल विकास योजना की भूमिका विशेष रूप से दिखाई दे रही है, क्योंकि इतनी तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या में पूर्ण रोजगार पाना बहुत कठिन है। इस परिस्थिति में जो व्यक्ति कार्य कुशल नहीं है उसको रोजगार योग्य प्रशिक्षित कर रोजगार दिलाना अति आवश्यक है। भारत सरकार द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही हैं, जिससे बेरोजगार व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रोजगार पा सके, राज्य सरकार भी युवाओं के विकास को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर योजनाओं का संचालन कर रही है। झारखंड सरकार द्वारा कौशल विकास मिशन सोसाइटी का गठन किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य बेरोजगार युवाओं को कौशल विकास प्रशिक्षण देकर रोजगार योग्य बनाना तथा युवाओं को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु राज्य में कौशल विकास योजना को तेजी से बढ़ाने के लिए सघन रणनीति तैयार करना है, जिसका लक्ष्य 2021 तक 20 लाख लोगों को कौशल विकास प्रशिक्षण देना है, जिससे कुशल श्रम शक्ति की उपलब्धता में वृद्धि होने से झारखंड भारत में कौशल का केंद्र बिंदु बन सकेगा।

उद्देश्य :

1. ग्रामीण रोजगार में कौशल प्रशिक्षण की भूमिका को समझना।
2. दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना के माध्यम से कौशल प्रशिक्षण और प्लेसमेंट की प्रगति आधिकारिक रिकार्ड के आधार पर देखी जाएगी।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित हैं जिसमें विभिन्न लेख, परिपत्र, रिपोर्ट सम्मिलित हैं। इसमें ग्रामीण रोजगार व कौशल प्रशिक्षण के सभी पहलुओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है यह जानने का प्रयास किया गया है कि इसका तथा युवाओं एवं उसके परिवारों पर कितना प्रभाव पड़ा हैं। इससे ग्रामीण एवं शहरी प्रशिक्षु किस तरह लाभान्वित हो रहे हैं, पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया हैं। इसके अंतर्गत शैक्षणिक स्तर के साथ-साथ वित्तीय स्तर को भी बढ़ावा मिला हैं। लोगों में आत्मनिर्भरता आई हैं। अतः इस अध्ययन का उपयोग कर इस योजना को समझने की कोशिश की गई हैं।

योजना का परिचय : भारत में ग्रामीण कौशल योजना का आरंभ ग्रामीण आजीविका की गुणवत्ता को और बेहतर करने के लिए एक विशेष पहल हैं। केंद्र सरकार द्वारा ग्रामीण युवाओं को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए चलायी गयी हैं। इसे सितंबर 2014 को आरंभ किया गया, वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश के ग्रामीणों में 15- 35 वर्ष की आयु के बीच 5.5 करोड़ लगभग कामगार हैं तथा इसके अतिरिक्त जनसंख्या को भारत सरकार द्वारा रोजगार का अवसर उपलब्ध कराना होगा ग्रामीण युवाओं के कौशल और आर्थिक क्षमता को सुदृढ़ बनाने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा लायी गई योजनाओं में DDUGKY एक महत्वपूर्ण योजना है जो युवाओं के शैक्षणिक विकास के साथ-साथ आर्थिक स्तर को भी विकसित करती है, क्योंकि ग्रामीण निर्धनों को विकसित करने में कई सारी चुनौतियों का सामना करना पड़ता हैं। जैसे- शिक्षा, आर्थिक स्थिति, कौशल प्रशिक्षण की कमी जिसे विश्व स्तर पर मजबूत बनाने, रोजगार का अवसर उपलब्ध कराने पर बल तथा रोजगार को स्थाई बनाने एवं विश्व स्तर पर रोजगार का सृजन करने के माध्यम से (DDUGKY) इस अंतर को पाटने का कार्य करती है। यह योजना तीन स्तरीय हैं। तकनीकी सहायता, नीति निर्माण के साथ कामकाजी एजेंसी के रूप में (DDUGKY) विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्य करती है। इस योजना से जुड़े राज्य मिशन आवश्यकता पड़ने पर अपना सहयोग देती है। इसके अंतर्गत सामाजिकता से वंचित वर्गों को लाने के लिए संपत्ति का 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति 15 प्रतिशत अल्पसंख्यक तो वहीं 3 प्रतिशत विकलांग व्यक्तियों के लिए रखा गया है। इस कौशल कार्यक्रम में युवाओं की संख्या का एक तिहाई महिलाएँ रखी गई हैं।

समय सीमा : DDUGKY में 576 घंटे (3 महीने) से लेकर 2304 घंटे (12 महीने) तक प्रशिक्षु को वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाती हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 25696 से 1 लाख तक आर्थिक अनुदान प्रति

व्यक्ति को दिया जाता हैं। यह अनुदान वास्तव में योजना के समय काल, प्रशिक्षण के प्रकार (आवासीय गैर आवासीय) पर निर्भर करता हैं। यह योजना सभी राज्यों, केंद्र शासित प्रदेशों तथा इनके सभी जिलों में कार्यान्वित की जा रही है जो 7427 से ज्यादा ब्लॉक के लोगों पर अपना प्रभाव डालता हैं। 52 व्यवसाय क्षेत्रों से 552 से ज्यादा सहकर्मियों द्वारा 1426 परियोजनाएं संचालित की जा रही हैं। 9.2 लाख से ज्यादा युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया हैं और 4. 9 से ज्यादा युवाओं को 30 दिसंबर 2019 तक रोजगार दिया गया हैं।[8]

तालिका -1

भारत में डीडीयू-जीकेवाई की स्थिति[9]

	2019-20	2020-21	योग
प्रशिक्षित लाभार्थी	238521	3692	242213
नियुक्त लाभार्थी	149958	31061	181019
कुल प्रशिक्षण केन्द्र	1220	1703	.
ट्रेडों के प्रकार	433	502	.
प्रतिशत	63	84.1	75

तालिका 1 से स्पष्ट होता है कि सभी मानदंडों का स्तर नीचे गिरा है। इसमें दो साल की तुलना की गई हैं। जबकि अनेक स्रोतों से स्पष्ट होता है कि संख्या दर में कमी कठिन निगरानी और सर्वोच्च गुणवत्ता का संकेत है। इसमें उन केंद्रों को बाहर रखा गया जो सही तरीके से कार्य नहीं कर रहे थे। वहीं नियुक्तियों के प्रतिशत में बढ़ोतरी (प्रतिशत लाभार्थियों को रखे गए अनुपात) से सकारात्मक प्रगति कि पुष्टि की जा सकती हैं, जो 2019-20 में 63 प्रतिशत से बढ़कर 2020-21 में 84. 1 प्रतिशत हो गयी। जब योग परिणाम को देखा जाए तो वह 2019 -20 और 2020 -21 का 75 प्रतिशत है। जो कि एक सकारात्मक संकेत है कि ये योजना हमारे समाज में कितनी सफल हो रही हैं।

मध्यप्रदेश में डी डी यू जी के वाई : मध्यप्रदेश में डी डी यू जी के वाई ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत लागू की जा रही योजना है। मध्यप्रदेश दीनदयाल अंत्योदय कार्यक्रम राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के रोजगार को सतत विकसित बनाए रखने के लिए नोडल एजेंसी है, जो पंजीकृत परियोजना एजेंसी (PIA) के प्रस्ताव को स्वीकार करती हैं, जिसका (PRN) न. व मध्यप्रदेश में डी डी यू जी के वाई को लागू करने के लिए ऑनलाइन http// :wwwruralskill.in पर एप्लिकेशन फीस के साथ रजिस्ट्रेशन कराते हैं तथा इस योजना से सकारात्मक रूप से जुड़ते हैं जिसका परिणाम सफलतापूर्वक दिखता है। मध्यप्रदेश राज्य में 52 जिले सम्मिलित हैं। 97 परियोजनाएं कार्यान्वयन एजेंसी (PIA) के अंतर्गत डी डी यू जी के वाई के लिए 126 मान्यता प्राप्त प्रशिक्षण केंद्र हैं। इसका प्रदर्शन संचालन के 6 साल बाद योजना वर्ष वार दिखाया गया हैं।

तालिका 2

मध्य प्रदेश में डीडीयू-जीकेवाई की स्थिति[10]

	2019-20	2020-21	प्रतिशत	योग
प्रशिक्षण दिया	11364	214	-	11578
प्रशिक्षित	10241	176	89.97	10417
स्थापित	7262	755	69.24	8017
प्रमाणित	3277	0	28.3	3277

इस योजना के अंतर्गत प्लेसमेंट और प्रशिक्षण को मध्य प्रदेश में लागू करने के लिए पिछले 2 वर्षों में 11578 युवाओं ने प्रशिक्षण शुरू किया जिसमें 10417 (89.93 प्रतिशत) युवाएं प्रशिक्षित हुए हैं। इसमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि (10.3 प्रतिशत) का प्रशिक्षण अभी भी पूरा नहीं हुआ है जो याद कराता है कि इसमें और अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है जिससे बीच में ही इस कार्यक्रम से अलग हो जाने प्रशिक्षण कार्यकाल को पूरा नहीं कर पाने का कारण पता चल सके। इसमें यहां से उल्लेखनीय है कि राज्य का प्रदर्शन देश के प्रदर्शन से कम हैं जिसका मुख्य कारण कोरोना महामारी का प्रभाव राज्यों पर कम ज्यादा जिसके परिणाम स्वरुप वर्ष 2020 में लॉकडाउन रहा था, हो सकता है।

तालिका 3

मध्य प्रदेश में परियोजना कार्यान्वयन एजेन्सी (PIA) की भूमिका[11]

PIA का नाम	लक्ष्य	शुरू किया	प्रतिशत	प्रशिक्षित	प्रतिशत	पलेसमेंट	प्रतिशत	आकलन किया	प्रमाणित
एआईएसईसीटी	7009	5817	83%	5044	72%	2732	39%	3676	1634
अमेजिंग सिक्योरिटी सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड	1200	432	36%	314	26%	28	2%	0	0
अपोलो मेदस्किल्स लिमिटेड	2500	1484	59%	1073	43%	113	5%	669	669
एरेस सॉफ्टवेयर एंड एजुकेशन टेक्नोलॉजी प्रा. लि.	1000	134	13%	0	0%	0	0%	0	0
एसोसिएशन फॉर ग्रास रूट्स डेवलपमेंट रिसर्च एंड एक्शन	700	318	45%	298	43%	91	13%	108	108
कैपिटल इन्फो लाइन मार्केटिंग प्रा. लि.	650	210	32%	205	32%	98	15%	204	135
सेंटर ऑफ टेक्नोलॉजी एंड एंटरप्रेन्योरशिप डेवलपमेंट	870	880	101%	663	76%	403	46%	257	250
सेंटम वर्क स्किल्स इंडिया लिमिटेड	12854	11366	88%	10795	84%	1125	9%	8120	2224
सीएल एजुकेट लिमिटेड	3309	1720	52%	1486	45%	269	8%	709	253
ड्रीम विवर एजूटेक प्रा. लि.	2100	1236	59%	935	45%	169	8%	752	543
डिवैथ इन्फोटेक प्रा. लि.	540	280	52%	99	18%	38	7%	57	57
फोकस एडुकेयर प्रा. लि.	1900	1441	76%	1213	64%	295	16%	548	479
जेम लर्निंग सर्विसेज प्रा. लि.	700	210	30%	105	15%	0	0%	0	0
ग्रामीण उत्थान समिति	475	470	99%	388	82%	203	43%	285	251
हेरौड ट्रेनिंग एंड एजुकेशन इंडिया प्रा. लि.	750	334	45%	290	39%	176	23%	277	186
आई सी ए एडुस्किल्स प्रा. लि.	8654	7826	90%	7114	82%	3562	41%	4634	2306
खटोर फाइबर एंड फैब्रिक्स लिमिटेड	2000	157	8%	122	6%	0	0%	0	0
लोक भारती स्किलिंग सॉल्यूशंस प्रा. लि.	940	554	59%	554	59%	8	1%	206	195
महिमा फाइबर प्रा. लि.	1500	700	47%	428	29%	132	9%	310	208
मंथन ग्रामीण एवं समाज सेवा समिति	4200	1635	39%	1635	39%	527	13%	0	0
मोसैक नेटवर्क इंडिया प्रा. लि.	2650	1077	41%	751	28%	26	1%	481	50
एम पी कोन्न लिमिटेड	2000	230	12%	230	12%	166	8%	0	0
निदान टेक्नोलॉजी प्रा. लि.	630	70	11%	70	11%	0	0%	0	0
ओरियन एजूटेक प्रा. लि.	1771	1190	67%	767	43%	275	16%	598	535
पीसी ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट लिमिटेड	2901	2209	76%	2203	76%	1545	53%	2123	1760
पीथमपुर ऑटोक्लस्टर	386	315	82%	235	61%	96	25%	232	209
प्रशांति एजुकेशन एंड वेलफेयर सोसायटी	734	70	10%	0	0%	0	0%	0	0
प्रतिभा सिंटेक्स लिमिटेड	1500	440	29%	352	23%	62	4%	0	0
क्युज कॉर्प लिमिटेड	8098	6703	83%	5011	62%	3287	41%	4886	2983
रोमन टेक्नोलॉजी प्रा. लि.	1000	210	21%	78	8%	4	0%	72	53
आर एस डब्ल्यू एम लिमिटेड	800	560	70%	439	55%	215	27%	438	276
एस ए एफ एजुकेट लर्निंग प्रा. लि.	2500	1867	75%	981	39%	202	8%	700	239
सहज विलेज लिमिटेड	2200	559	25%	559	25%	10	0%	124	86
समाधान समाज सेवा संगठन	600	310	52%	237	40%	91	15%	220	210
एसएटी चिकित्सा प्रसार कमंडल यवतमाल डिस्टयवतमाल	800	338	42%	303	38%	51	6%	173	0
शक्ति इन्फोटेक प्रा. लि.	600	85	14%	0	0%	0	0%	0	0
शांतिजी डीआईएसपीएटी एंड पावर प्रा. लि.	1900	560	29%	420	22%	182	10%	159	0
श्री बाला जी इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस प्रा. लि.	875	348	40%	340	39%	62	7%	329	326
श्री विश्वा मित्र शिक्षण समिति	1075	838	78%	637	59%	149	14%	410	366
स्किल्स रूट एडु टेक्निकल कंसलटिंग इंडिया प्रा. लि.	400	334	84%	181	45%	55	14%	158	125
स्मार्ट ब्रेंस इंजीनियर एंड टेक्नोलॉजी प्रा. लि.	400	75	19%	70	18%	0	0%	0	0
श्रीमती लक्ष्मी देवी सेनानी चौरिटेबल ट्रस्ट	1725	395	23%	395	23%	302	18%	310	76
सूर्यवायर्स प्रा. लि.	2500	753	30%	496	20%	2	0%	315	162
एसवीजी एक्सप्रेस सर्विसेज प्रा. लि.	2000	931	47%	701	35%	86	4%	368	30
टीम लीज सर्विसेज लिमिटेड	1274	1230	97%	509	40%	269	21%	343	331
टेक्नो पार्क एडवाइजर्स प्राइवेट लिमिटेड	4990	1494	30%	1406	28%	467	9%	785	233
वीद पीपल	404	300	74%	230	57%	176	44%	230	206
वर्ल्ड क्लास सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड	1900	1025	54%	778	41%	59	3%	399	281
	102464	**61720**	60%	**51140**	50%	**17808**	17%	**34665**	**18035**

तालिका 3 परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी के अंतर्गत आने वाले केंद्रों में प्रशिक्षुओं के आधार पर प्रशिक्षण आरंभ होने, पूरा होने, नियुक्ति दिए जाने तथा रखे गए लक्ष्य की पूर्ति को दर्शाती है तथा इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किस प्रकार से परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी (PIA) प्रशिक्षुओं की नियुक्ति के लिए आगे बढ़कर पहल कर रही हैं ताकि उनको रोजगार मिल सके और वह आत्मनिर्भर बन सकें।

निष्कर्ष : इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना (DDUGKY) विभिन्न समुदाय, वर्गो से आए युवाओं को प्रशिक्षण व रोजगार का मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रेरित करती है। इस योजना से जुड़ने के उपरांत पूर्ण रूप से प्रशिक्षित किया जाता हैं। जिसके परिणाम स्वरूप उस वर्ग समुदाय के युवाओं को जो स्वयं के सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं अपने जीवन में छोटी-छोटी जरूरतों से वंचित रह जाते हैं, वो प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद स्वयं को योग्य एवं सक्षम पाते हैं। जिसके माध्यम से अपने व्यवसाय व रोजगार के गुणवत्ता को विकसित करते हैं। इस योजना का प्रभाव हमारे समाज के सिर्फ प्रशिक्षुओं पर ही नहीं बल्कि उनके परिवार पर भी दिखाई दे रहा है, आर्थिक स्थिति से परेशान परिवार वालों पर से कर्ज का बोझ कम हो रहा है तथा स्वयं को आगे बढ़ते हुए अपनी जरूरतों को आसानी से पूरा कर पा रहे हैं। इस योजना का सबसे सकारात्मक पहलू यह है कि प्रशिक्षण काल में जाति, वर्ण, लिंग, धर्म के आधार पर किसी प्रकार से भेदभाव नहीं किया जाता सबको समान रूप से प्रशिक्षित कर योग्य बनाया जाता हैं जिससे वे पूर्ण सक्षम व आत्मनिर्भर बन पायें, जिसके परिणाम स्वरुप अपने जीवन का निर्णय आसानी से कर पाएं कि क्या सही और क्या गलत है। रोजगार हो या स्वयं का व्यवसाय बहुत ही योग्यता और आत्मनिर्भरता के साथ कर पायें।

सन्दर्भ

1. http://ddugky.gov.in (Guidlines) Page 15 July-2016
2. प्रसाद अवध, 'गांव में सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन', रावत पब्लीकेशनस, जयपुर, 2008
3. सोलंकी ललिता, 'महिला आर्थिक सशक्तीकरण एवं पंचायती राज', क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2015
4. Joshi Priyanka, 'Deen Dayal Upadhyay Grameen Kaushalya Yojana Extinguishing India-Bharat Divide: A SWOT' Analysis', International Journal of Academic Research and Development, Volume-3;Issue-2; March 2018; pp. 721-725
5. Thomas Tessy, *'Role of Employment training programs-Analysis of performance of DDUGKY'*, Scholars Journal of Arts, Humanities and Social sciences. DOI: 10.21276/sjahss.2018.6.1.23
6. राजपूत नवीन सिंह करूणामती, 'छत्तीसगढ़ राज्य के नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में राज्य सरकार की विकासकारी योजनाओं के प्रभाव का अध्ययन', सोलंकी ललिता, पूर्वोक्त, पृ. 59-64
7. सिंह अखिलेश कुमार, 'झारखण्ड राज्य में कौशल विकास कार्यक्रम का प्रभाव - एक अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 22, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2020, पृ. 123
8. http://ddugky.gov.in (Guidlines) pp. 21-36 July-2016
9. http://ddugky.gov.in
10. https://kaushalpragati.nic.in
11. https://kaushalpragati.nic.in

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

प्रथम विश्व युद्ध और हरियाणा

❑ सुश्री स्वीटी

आपदा किसी भी मानव समाज के लिए बहुत बड़ी चुनौती होती है, इन आपदाओं के पीछे कई कारण छुपे हुए होते हैं, जो मानव के साथ-साथ प्रकृति के अन्य जीवों को भी समान रूप से प्रभावित करते हैं। यह अचानक से होने वाली एक विध्वंसकारी घटना है। आपदा एक ऐसी प्रतिकूल स्थिति है जो पर्यावरणीय, मानवीय, भौतिक एवं सामाजिक वातावरण सभी तत्त्वों पर प्रभाव डालती है। आपदा के प्रभाव कई बार मनुष्य के लिए चुनौतियों के साथ-साथ कुछ संभावनाएँ भी लाते हैं। ये संभावनाएँ मनुष्य के लिए नए अवसर के रूप में भी देखी जाती हैं। आपदा को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, एक प्राकृतिक आपदा व दूसरी मानव निर्मित आपदा।

प्राकृतिक आपदा में मुख्य रूप से भूकम्प, ज्वालामुखी, सुनामी व तूफान आदि घटनाओं को सम्मिलित किया जा सकता है, जिनका मनुष्य प्रबन्धन तो कर सकता है, परन्तु उन्हें रोक नहीं सकता। मनुष्य इन घटनाओं के प्रभाव को कम करने के लिए प्रबन्धन करता है, जिससे इनसे होने वाले विनाश को कम से कम किया जा सके।

दूसरी तरफ मानव निर्मित आपदा, ये वे आपदायें हैं जिनके लिए कहीं न कहीं मानव व उसके क्रियाकलाप उत्तरदायी होते हैं, जैसे पर्यावरण प्रदूषण कई कारणों से होता है, परन्तु उसके प्रदूषित होने के कारणों में एक मुख्य कारण मानव द्वारा प्रकृति के संसाधनों का अत्यधिक मात्रा में दोहन करना है। इसी प्रकार खतरनाक पदार्थों का रिसाव, कई तरह के वैज्ञानिक परीक्षण आदि भी पर्यावरण को बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित करते हैं। इन समस्त आपदाओं में मुख्य आपदा है युद्ध, जो पूर्ण रूप से एक मानव निर्मित आपदा है।

आपदा एक ऐसी प्रतिकूल स्थिति है जो पर्यावरणीय, मानवीय, भौतिक एवं सामाजिक वातावरण सभी तत्वों पर प्रभाव डालती है। आपदा को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, एक प्राकृतिक व द्वितीय मानव निर्मित। प्राकृतिक आपदा में मुख्य रूप से भूकम्प, ज्वालामुखी, सुनामी व तूफान आदि घटनाओं को सम्मिलित किया जा सकता है, जिनका मनुष्य केवल प्रबन्धन कर सकता है, उन्हें रोक नहीं सकता। दूसरी तरफ मानव निर्मित आपदा वो आपदा है जो मानव के क्रियाक्लापों के परिणामस्वरूप देखने को मिलती है, जिसमें पर्यावरण प्रदूषण व युद्ध जैसी आपदा है। युद्ध एक पूर्ण रूप से मानव निर्मित आपदा है जो इसमें सम्मिलित होने वाले सभी वर्गों को प्रभावित करता है व सदैव से मानव समाज का हिस्सा भी रहा है। प्रस्तुत शोध में हम इसी मानव-निर्मित आपदा युद्ध से भारत के एक क्षेत्र हरियाणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार ब्रिटेन का उपनिवेश होने के परिणामस्वरूप भारत भी प्रथम युद्ध में सम्मिलित हुआ तथा हरियाणा ने भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटेन का साथ दिया जिसके अनेक प्रभाव भी हरियाणा पर देखने को मिले।

युद्ध का प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से उसमें सम्मिलित होने वाले और सम्मिलित न होने वाले सभी वर्गों पर पड़ता है, परन्तु युद्ध के प्रभाव उसके स्वरूप पर भी निर्भर करते हैं। युद्ध सदैव से मानव समाज का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। प्राकृतिक रूप से जीव अपने अस्तित्व और हितों को लेकर असुरक्षित रहा है। मनुष्य भी इसी प्राकृतिक स्थिति का सामना आदिकाल से करता रहा है। अतः मनुष्य एवं अन्य जीवों के बीच विवाद का कारण उसके अपने जीवन का अस्तित्व एवं हित रहे हैं।

दो देशों के बीच युद्ध अक्सर कूटनीतिक असफलता के कारण होते हैं, जो मुद्दे कूटनीति से हल न हों उनको फिर सैन्य बल के द्वारा हल किया जाता है। इसी रूप से अगर प्रथम विश्व युद्ध की बात की जाये तो इस युद्ध को लेकर इतिहासकारों के अलग-अलग मतभेद देखने को मिलते हैं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह युद्ध केवल एक महाद्वीपीय युद्ध था, क्योंकि इस युद्ध में यूरोप से बाहर कोई लड़ाई देखने को नहीं मिलती। दूसरी तरफ कुछ इतिहासकारों का मानना है कि 1914 तक सम्पूर्ण विश्व के 68 से 70 प्रतिशत भाग पर यूरोप का आधिपत्य स्थापित हो चुका था, जिसके कारण जो देश ब्रिटेन या

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

अन्य यूरोपीय देशों के उपनिवेश थे, उन्हें भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध में भाग लेना पड़ा था। भारत भी उस समय ब्रिटेन का उपनिवेश था, जिसके कारण तब ब्रिटेन की विदेश नीति भारत पर भी लागू होती थी, इसी के परिणामस्वरूप भारत को अपने पड़ोसी देशों बर्मा व अफगान से भी युद्ध करना पड़ा था। इसी विदेश नीति के अंतर्गत भारत ने प्रथम विश्व युद्ध में भाग लिया था।

प्रस्तुत शोध-पत्र में हम प्रथम विश्व युद्ध का ऐतिहासिक विश्लेषण हरियाणा के विशेष संदर्भ में करेंगे। हरियाणा 1803 में सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि के अंतर्गत ब्रिटिश भारत का हिस्सा बना जिसके बाद ब्रिटिश भारत की जो भी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक नीतियाँ भारत के अन्य प्रांतों पर लागू होतीं वे हरियाणा क्षेत्र को भी प्रभावित करती थीं। 1849 में पंजाब को भी ब्रिटिश सरकार ने अपने अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया। इसके बाद हरियाणा व पंजाब से काफी संख्या में नवयुवक ब्रिटिश आर्मी में सम्मलित होने लगे। लेकिन 1857 की क्रांति के बाद सैन्य भर्तीकरण की इस प्रक्रिया में प्रथम विश्वयुद्ध तक अनेक बदलाव देखने को मिले।

1857 की क्रांति से पहले लगभग 70000 भारतीय सैनिक ब्रिटिश आर्मी में शामिल थे। परन्तु 1857 की क्रांति के समय 39000 भारतीय सैनिकों ने ही अंग्रेजी सरकार के प्रति अपनी वफादारी का प्रमाण दिया था। बाकी सभी सैनिकों ने अंग्रेजों के खिलाफ भारतीय रियासतों व जनता का साथ दिया जिसको दृष्टिगत रखते हुए अंग्रेजी सरकार ने 'द पील कमीशन' (1859)[1] और 'द हाई लेवल ईडन कमीशन' (1879)[2] नामक दो कमीशनों को ब्रिटिश भारतीय सेना व पुलिस में सुधारों के लिए नियुक्त किया। इन दोनों कमीशनों की मुख्य सिफारिशों के आधार बहुत सारी भारतीय जातियों व धर्मों के लोगों को सेना की सेवाओं से निलम्बित किया गया। इनमें कुछ मुख्य जातियों व धर्म जैसे म्हार, बंगाली, ब्राह्मण, गुर्जर, अहीर और भारतीय मुस्लिमों की (1892-1914) तक सेना में नियुक्तियों पर रोक लगाए रखी।

लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध भारतीय सेना के लिए एक नई दिशा व अवसर लेकर आया। इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार को सेना में नई नियुक्तियों की अत्यधिक आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार ने अपनी नीतियों में बदलाव किया। प्रारंभ में ब्रिटिश भारतीय सेना दो भागों में विभाजित थी, एक 'योद्धा' व दूसरी 'अयोद्धा'। ब्रिटिश भारतीय सेना में 'योद्धाओं की संख्या 1 अगस्त 1914 के अनुसार, 1,55,423 थी, जिनमें लगभग 15,000 ब्रिटिश अधिकारी थे। जबकि 'अयोद्धाओं की संख्या 45,660 थी।[3] इसके साथ ही सेना की अन्य टुकड़ी 'इम्पीरियल सर्विस' भी थी, जिसको ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रशिक्षित किया जाता था। इस टुकड़ी में 22,479 सैनिक शामिल थे[4], जिनका कार्य ब्रिटिश भारत के आंतरिक व बाहरी हिस्सों में शांति व सुरक्षा प्रदान करना था। परन्तु प्रथम विश्व युद्ध में अधिक से अधिक सैनिकों की आवश्यकता होने के कारण सैन्य-विभाजन से अपनाये गए नियमों में बदलाव किये गए और लाहौर व मेरठ डिविजनों को तुरंत प्रतिबद्ध करके गैलीपोली जैसे स्थानों पर भेजा गया। सबसे बड़ी संख्या में भागीदारी मेसोपोटामिया में पूर्वी अफ्रीका में व मिश्र फिलिस्तीनी ऑपरेशन थी[5], जिसका विवरण इस प्रकार है-

तालिका संख्या 1

	Combatants		Non-Combatants	Total
	Indian Officers and Warrant Officers	Indian Other Ranks		
To France	1911	82974	47611	132496
To East Africa	826	33633	12477	46906
To Mesopotamia	7812	287753	293152	588717
To Egypt	1889	94596	19674	116159
To Gallipoli	90	3003	1335	4428
To Salonika	31	3643	1264	4938
To Aden	343	15655	4245	20243
To Persian Gulf	615	17537	11305	29453
Total	**13517**	**538794**	**391063**	**943340**

Source: India's Contribution to the Great War, the Government Printing Press, Calcutta, 1923, pp. 96-97

भारत के प्रत्येक क्षेत्र से पुरुषों ने इस युद्ध में अधिक से अधिक संख्या में भाग लिया था। यही वह समय था, जब पंजाब व हरियाणा में भी ब्रिटिश राज के प्रति निष्ठा प्रदर्शन करने की लहर उत्पन्न हुई, जिसका एक कारण हरियाणा जैसे क्षेत्र में रोजगार के विकल्प के रूप में देखा जाना भी था। हरियाणा क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक संगठनों ने भी सैन्य भर्ती के लिए नवयुवकों को प्रोत्साहित किया, इसके साथ ही महात्मा गांधी व बाल गंगाधर तिलक ने भी गांव-गांव जाकर युवकों को सेना भर्ती के लिए प्रेरित किया।[6]

इसी संदर्भ में 19 सितम्बर 1914 को माइकल ओ डायर ने शिमला के 'बारिस कोर्ट' में पंजाब विधान परिषद् की बैठक में पंजाब के युद्ध में प्रवेश की घोषणा कर दी, और युवकों को प्रोत्साहित करने के लिए उनकी गौरवशाली परम्पराओं को बनाए रखने का आह्वान किया।[7] इस प्रकार एक बड़ी संख्या में नवयुवकों को युद्ध में भाग लेने के लिए तैयार किया गया, जिसमें छोटे किसान से लेकर बड़े जमींदार व व्यवसायी भी सम्मिलित थे, जिनकी ब्रिटिश सरकार में रूचि न होकर स्वयं के हित सम्मिलित थे। इनमें से कुछ शिक्षित वर्ग ब्रिटिश साम्राज्य के साथ इसलिए भी थे, क्योंकि उनका मानना था कि ब्रिटिश सरकार की हार होने पर भारत पर किसी अन्य देश का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा और एक नये साम्राज्य से तो पुराना साम्राज्य बेहतर है। युद्ध में ब्रिटिश सरकार के जीतने के बाद कुछ लाभ मिलने की उम्मीद से भी इन लोगों ने युद्ध में भाग लिया।

यह वह समय था जब सरकार को जनसंख्या के प्रत्येक वर्ग के समर्थन की आवश्यकता थी और प्रत्येक वर्ग ने युद्ध के प्रकोप में अपने हितों को आगे बढ़ाने का उत्कृष्ट अवसर देखा।[8] लार्ड हार्डिंग ने भी अपने मेधावी नेतृत्व को प्रदर्शित करते हुए विक्टोरिया क्रास के लिए भारतीय सैनिकों की पात्रता[9] व 'हरियाणवी का स्पेक्ट्रम' जैसे भाषणों के द्वारा अधिक से अधिक जनसंख्या को उत्साहित करने का कार्य किया।[10] 1914 से पहले सैन्य भर्तीकरण के दौरान मार्शल रेस थ्योरी (Martial Race Theory) को अपनाया जाता था, क्योंकि लार्ड राबर्ट, जो 1885-1893 तक ब्रिटिश भारतीय सेना के 'कमाण्डर- इन-चीफ' थे, ने इस सिद्धान्त का विवरण देते हुए बताया कि सम्पूर्ण भारत में अच्छे योद्धा नहीं मिलते हैं, केवल उन्हीं क्षेत्रों में अच्छे योद्धा मिलते हैं, जहाँ अक्सर लड़ाई होती रहती है, क्योंकि जिस क्षेत्र में लंबे समय से लड़ाई नहीं हुई है, वहाँ के पुरुष आलसी हो जाते हैं तथा युद्ध कौशल भी भूल जाते हैं। इसलिए सेना में अधिकतर भर्ती उसी क्षेत्र व वर्ग से करनी चाहिए जहाँ लड़ाइयाँ अधिक होती रहती है। 1909 से 1914 तक कमाण्डर-इन-चीफ रह चुके सर ओ मोरे क्रेग भी इस सिद्धान्त के पक्ष में थे।[12]

14 अगस्त 1914 से 31 मार्च 1916 तक 13048 सैनिक हरियाणा से युद्ध में भर्ती हुए थे, यह आंकड़ा उन जिलों से अधिक था, जहाँ पहले से सैन्य सम्बन्ध थे, जिसमें रोहतक ने 5000 से अधिक व गुड़गांव ने 3000 से अधिक सैनिक दिये। हरियाणा से युद्ध में भर्ती के प्रयासों में योगदान करने वाले नेताओं में रोहतक से सर छोटू राम, चौधरी राव बहादुर, लालचंद व प्रभुदयाल, गुड़गांव से राव बहादुर सिंह बलवीर, हिसार से सुखलाल, चौधरी लाजपतराय, पंडित जानकी प्रसाद तथा करनाल से बैन गोपाल प्रमुख थे।

1916 तक सेना भर्ती की प्रक्रिया श्रेणी के अनुसार होती थी, परन्तु 1917 में इसे 'प्रादेशिक प्रणाली' द्वारा बदल दिया गया। इस नई प्रणाली में 'डिविजनल (संभागीय) भर्ती अधिकारियों की नियुक्ति की गई जिनका कार्य अपने-अपने क्षेत्र से अधिक से अधिक संख्या में नवयुवकों को भर्ती करना था। इस समय भारत में 75 श्रेणियाँ सेना में भर्ती के लिए योग्य घोषित की गई[13], परन्तु अब भी भर्ती प्रक्रिया को कृषक समुदाय तक सीमित रखा गया। प्रत्येक प्रांत में एक प्रांतीय भर्ती बोर्ड की स्थापना की गई जिनका कार्य विभागीय भर्ती अधिकारियों के कार्य को समन्वित करना था, जिसके द्वारा अकेले हरियाणा से 8504 पुरुषों को भर्ती किया गया, जिसका विवरण इस प्रकार है-

तालिका संख्या 2

Recruitment of Man Power According to Divisional Recruiting Officer

District/ State	Combatants in Indian Army on Jan. 01, 1915	People Cut list During					Total in Indian Army on Nov. 30, 1918
		Aug.	Jan. to June 1917	July to Dec. 1917	Jan. to May 1918	June to Nov. 1918	
Hisar	3046	2795	1438	4589	1251	3698	15461
Rohtak	6245	5025	3014	3661	1546	3950	22144
Gurgaon	2481	3440	2241	4048	2184	4869	18867
Karnal	633	532	635	1463	683	3005	6553
Ambala	1755	1256	482	989	1893	2070	8341
Jind	1283		579	711	578	868	7238
Pataudi	-		44	06	14	44	108
Loharu	06		71	14	21	47	159
Dujana	-			08	96	156	273
Total	**15449**	**13048**	**8504**	**15489**	**8266**	**18707**	**79144**

Source: Atul Yadav, Valour Unlimited (Haryana and the Indian Armed Forces (1914-2000), K.K. Publication, New Delhi, 2009, p. 22

1914 से पहले रोहतक से 6,245 पुरुष सेना में थे, जो नवम्बर 1918 तक 22,144 हो गए थे। प्रथम विश्व युद्ध में हरियाणा से सबसे अधिक संख्या में सैनिक रोहतक से ही भर्ती हुए थे। इसके बाद हिसार से 3,046 से 15,461 तथा तीसरे स्थान पर गुड़गांव से भर्ती हुए जहाँ 1914 तक 2,481 सैनिक ही थे अब 1918 में 18,867 तक आंकड़ा हो गया था। हरियाणा के अन्य शहरों व जिलों से भी बहुत बड़ी संख्या में नवयुवक भर्ती में सम्मिलित हुए जिसमें मुख्य रूप से अम्बाला, करनाल, दुजाना व जींद सम्मलित थे। युद्ध के लिए अन्य वस्तुओं का भी योगदान दिया गया जिसमें धनराशि से लेकर अनाज व अन्य सामग्री भी सम्मलित थी। हरियाणा के रोहतक जिले से युद्ध ऋण के रूप में 26,09,600 रुपये की धनराशि दी गई।[14] हिसार से युद्ध ऋण व अन्य निधियों का योगदान शानदार रहा, यहाँ से 1,62,155 रुपये की धनराशि देकर सहायता की।[15] प्रथम विश्व युद्ध के समय गुड़गांव की आबादी का एक विशाल हिस्सा कृषक होने के बावजूद 7,00,593 रुपये की धनराशि युद्ध ऋण के रूप में दी तथा युद्ध ऋण के साथ अगर अन्य निधियों को मिलाया जाए तो हिसार ने 2,23,939 रुपये की धनराशि से सहायता प्रदान की।[16] अम्बाला जिले ने भी जनशक्ति के साथ धन व अन्य सामग्री से प्रथम विश्व युद्ध में योगदान देते हुए 1500 ऊंट और 1200 खच्चर वाहक के साथ 2,02,250 रुपये की धनराशि प्रदान की।[17] व्यक्तिगत रूप से की गई सहायता से सिरसा के राय बहादुर सुख लाल ने 1,20,000 रुपये की धनराशि दी जो हरियाणा से सबसे अधिक व्यक्तिगत सहायता थी। उनकी पत्नी ने भी 1 लाख की धनराशि से सहायता की।[18]

इसके अलावा वन विभाग ने 50,000 रेलवे स्लीपर, 20000 टन जलाऊ लकड़ी, 1400 लास-सीढ़ी, 50000 बांस व 57000 गैलन तारपीन की आपूर्ति की। हिसार जिले से 5000 ऊँट व 2000 बैलगाड़ियों की आपूर्ति भी युद्ध में सहायता के लिए दी गई।[19] प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हरियाणा के लगभग सभी वर्गों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसके लिए 30 जुलाई 1917 में 'माइकल ओ डायर' ने करनाल में एक दरबार का आयोजन किया व कहा कि 'भारत सरकार ने उन लोगों को पुरस्कार की मंजूरी दी है जिन्होंने युद्ध के दौरान भर्ती में महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा ये पुरस्कार विशेष रूप से ग्रामीण वर्गों के लिए है, जिन्होंने अपनी वफादारी से युद्ध में सेवायें प्रदान की है।[20] इसके अतिरिक्त कुछ प्रमाण-पत्र, जमीन व धन आदि पुरस्कार भी वितरित किये गए। हरियाणा के रिसालदार बदलू सिंह को अपनी वीरता के लिए 'विक्टोरिया क्रास' से सम्मानित किया गया जो सेना का सर्वोत्तम सम्मान के लिए दिया जाने वाला

पुरस्कार था। इसके अतिरिक्त जमादार इंचाराम, जमादार लखीराम, जमादार अमीलाल व जमादार जयलाल को 'मिलिट्री क्रास' से सम्मानित किया।[21] इसके अतिरिक्त अन्य पुरस्कार भी वितरित किये गए।

युद्ध के प्रभाव : हरियाणा के किसानों, जमींदारों व व्यापारियों के साथ अन्य वर्गों ने भी युद्ध में ब्रिटिश सरकार की अत्यधिक सहायता प्रदान की थी। युद्ध समाप्त होने के बाद विश्व के साथ भारत पर व हरियाणा पर भी इसके प्रभाव देखने को मिले। युद्ध समाप्त होने के साथ ही विश्व को एक भयंकर महामारी से सामना हुआ जो युद्ध के दौरान सैनिकों में फैली थी। यह महामारी 'स्पेनिश फ्लू' के नाम से जानी जाती है। भारत में भी यह महामारी युद्ध से लौटकर आये सैनिकों से फैली व हरियाणा में भी उन्हीं के द्वारा इसका प्रसार हुआ। उसी समय अकाल के कारण भी हरियाणा की स्थिति दयनीय हो गई थी, जिसके लिए राहत कार्य के लिए सरकार ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये, परन्तु फिर भी फसलों के दाम गिरने लगे व महामारी के कारण गुड़गांव में 63071[22] व रोहतक में केवल अक्तूबर-नवम्बर में 30000 के करीब मृत्यु देखने को मिली[23] क्योंकि सरकार द्वारा दी गई सहायता अधिकतर शहरों तक सीमित रही।[24]

इसके अतिरिक्त प्रथम विश्वयुद्ध के अनेक अच्छे प्रभाव भी हरियाणा क्षेत्र पर हुए, जिनमें उद्योग प्रमुख हैं। युद्ध के दौरान वस्तुओं की मांग बढ़ने के कारण आपूर्ति को पूरा करने के लिए देश में औद्योगिक विकास तेजी से हुआ जिसका प्रभाव हरियाणा पर भी हुआ व हिसार और भिवानी में कपड़ा व ऊनी उद्योग स्थापित किये गए, जबकि रेवाड़ी और जगाधरी में धातु उद्योगों की स्थापना हुई। युद्ध से पूर्व हरियाणा की अधिकतर जनसंख्या राजनीति से दूर रहती थी। परन्तु युद्ध के दौरान राजनैतिक वर्गों के सम्पर्क में आने के कारण राजनैतिक जागरूकता उत्पन्न हुई तथा हरियाणा के जाट, अहीर, गुज्जर व राजपूत भी कांग्रेस व अन्य पार्टियों में सम्मलित होने लगे। इससे पूर्व केवल ब्राह्मण व बनिया जैसे वर्ग ही राजनीति से जुड़ते थे।[25]

हरियाणा क्षेत्र से प्रथम विश्व युद्ध में बड़ी संख्या में सैनिक फ्रांस, बेल्जियम, मेसोपोटामिया, गैलीपोली व अन्य कई देशों में गए, जहाँ उन्होंने दूसरे देशों के समाज व संस्कृति के बारे में जाना तथा उससे अपने विचारों में आने वाली जागरूकता को देखा। सैनिकों ने उनके रहन-सहन, शिक्षा व व्यवहार का अवलोकन करते हुए उन मूल्यों को अपने व अपने समाज पर अपनाना आरम्भ किया। युद्ध में सैनिकों ने शिक्षा के महत्व को भी समझा व स्कूल खुलवाने के लिए अनुदान प्रदान किया। युद्ध से पूर्व लड़कियों की शिक्षा पर बहुत कम या न के बराबर सोचा जाता था, परन्तु अब सैनिकों ने उनको भी शिक्षित करने के लिए कहा। अब उनके आदर्श व मूल्यों में जो परिवर्तन हुए वे समाज के एक बड़े वर्ग पर देखे गए। स्वच्छता व पहनावे की आदतों में भी परिवर्तन हुआ तथा भाषा में बदलाव के कारण अब उनका जीवन अधिक अनुशासित हो गया था। युद्ध में अधिकतर नवयुवकों ने भागीदारी ली थी, जब उनका सामना दूसरे देशों के शिक्षित नागरिकों से हुआ तो उनके विचारों में जागरूकता आने लगी अब पुरानी रूढ़िवादी परम्पराओं को न अपनाकर चहुमुखी प्रगति की ओर बढ़ने का प्रयास करने लगे। अब उन्हें स्वतंत्रता व दासता में रहने के अंतर का एहसास भी होने लगा था।[26] अब सैनिकों के आत्मविश्वास के साथ उनका दृष्टिकोण भी बदलने लगा, जिससे हरियाणा के समाज में महत्वपूर्ण सामाजिक व आर्थिक बदलाव आया।

निष्कर्ष : उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम विश्व युद्ध में हरियाणा ने ब्रिटिश साम्राज्य को पूर्ण सहयोग दिया था जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भी हरियाणा की जनता को प्रसन्न करने के लिए अनेक पुरस्कार, प्रमाण-पत्र व जागीरें वितरित कीं। हरियाणा के युवकों के सेना में सम्मलित होने के बाद उनके विचारों में परिवर्तन हुआ, जिसके कारण हरियाणा में शिक्षा व स्वच्छता को बढ़ावा मिला। हरियाणा के प्रत्येक वर्ग ने प्रथम विश्व युद्ध में योगदान दिया था, जिसके फलस्वरूप अब उनको रोजगार के रूप में भी एक और विकल्प मिल गया। इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि एक तरफ युद्ध के कारण जहाँ बहुत अधिक मात्रा में जन-धन की हानि हुई वहीं दूसरी तरफ युद्ध में जाने के परिणामस्वरूप ही कुछ लाभ भी देखने को मिले।

सन्दर्भ

1. Cohen Stephen P., *The Indian Army : Its Contributions to the Development of a Nation,* OUP India, New Delhi, 1990, p. 38.
2. Cohen Stephen P., *Ibid.,* p. 40
3. Yadav, Atul, *Valour Unlimited (Haryana and Indian Armed Forces) (1914-2000),* K.K. Publications, New Delhi, 2009, p. 16.
4. Pradhan, S.D., *Indian Army and the First World War,* in Ellinwood Dewitt C and Pradhan S.D. (Ed.), *India and World War I,* Manohar Publication, New Delhi, 1978, p. 53
5. Raja Ram, *Impact of First World War on the Punjab,* Ph.D. Thesis, Punjab University, Chamgarh, 1972, p. 92.
6. Sarkar, Sumit, *Modern India (1885-1947),* Laxmi Publication, Reprint Edition, 2008, p. 149.
7. Leigh, M.S., *The Punjab and the War,* Government Printing Press, Lahore, 1922, p. 29.
8. Raja Ram, *Impact of War,* p. 34.
9. Raja Ram, *Ibid.*, pp. 2-3
10. Raja Ram, *Ibid*., p. 34
11. Creagh General Sir O'Moor, *India Studies, London : Hutchinson and Co. 1920,* p. 283.
12. *The Tribune*, January 25, 1919.
13. Yadav, Atul, op.cit. p. 22
14. *Rohtak's War Work* (Deputy Commissoner, Rohtak), The RohtakDistrict Board, (1914-19), p. 33.
15. *Hisar War Work: The Effort of a Punjab District* (1914-19) Deputy Commissioner, Hisar (The Hisar District Board)
16. *Record of the War Work of the Gurgaon District* (Edited by Deputy Commissioner, Gurgaon), Scottish Mission Industry Ltd., Poona, 1923, p. 29.
17. Record of War Work in Ambala District (Compiled by H.H. Shak), March 1919, p. 16.
18. Home Department (Political Deposit), Govt. of India Proceeding, October 1918, No. 32.
19. Leigh, M.S., op.cit, pp. 74-75.
20. Michael O'Dwyer, *India as I knew it (1885-1925),* Unistar Books, 2015, p. 236.
21. Yadav, Atul, *Op.Cit.*, pp. 39-41.
22. *The Tribune*, 22 Jan. 1919; Home Department Political-D, Proceeding Jan., 1919, No. 41.
23. *The Tribune*, 25 Jan. 1919.
24. Leigh, M.S., op.cit , p. 11
25. Chander, Jagdish, *The First World War and its Impact on the Nationalist moment in Haryana,* proceeding Punjab History Conference, Patiala, 1976..., pp. 147-148.
26. Yadav, Atul, *Op.Cit.*, p. 53.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021 UGC-CARE List-Social Sciences

पाँचाल जनपद से प्राप्त एवं संग्रहालय में संरक्षित मुद्रांक : एक अध्ययन

❑ सरोज कुमारी
❖ डॉ. सुरभि श्रीवास्तव

छठी शताब्दी ई0पू0 के एक प्रमुख जनपद के रूप में स्थापित होने से पूर्व ही पाँचाल ने भारत के राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। पाँचाल जनपद आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न था। यहाँ से विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ एवं मुद्रांक, मृण्मूर्तियाँ उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। इनमें मुख्यतः भानुगुप्त एवं सूर्यमित्र की मुद्राएँ तथा मुद्रांक जैसे-चक्र अंकित मुद्रांक, अश्व निर्मित मुद्रांक, स्थावरस्य-स्थवर, धर्मोरक्षित रक्षित, सुधर्मधम्म महाविहारे, वामविष्णु, इसके साथ-साथ मुद्रांक पर स्थानीय प्रचलित कथाओं से सम्बन्धित लेख भी उत्कीर्ण हैं। यहाँ की मुद्राओं पर विभिन्न प्रकार के लेख, आकृति एवं देवी-देवताओं (हरिहर, गजलक्ष्मी) का चित्रांकन मिलता है। सम्भवतः इनमें से कुछ मुद्रांक व्यापारिक श्रेणियों, धार्मिक मठ या विहारों द्वारा प्रचलित किए गये थे। पाँचाल संग्रहालय में वर्तमान में यह मुद्रांक संरक्षित हैं जो कि पाँचाल जनपद की समृद्धि, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं।

छठी शताब्दी ई0पू0 के एक प्रमुख जनपद के रूप में स्थापित होने से पूर्व ही पाँचाल ने भारत के राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। यह क्षेत्र अपने दार्शनिक राजाओं के कारण भी प्रसिद्ध रहा है जैसे आरूणी, श्वेत केतु। जनपद पाँचाल ''पंच'' तथा ''आल'' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका तात्पर्य पाँच ऐतिहासिक संस्कृतियों के मिश्रण से है। पाँचाल दो भागों में विभक्त है। उत्तरी पाँचाल एवं दक्षिणी पाँचाल, उत्तरी पाँचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी जबकि दक्षिणी पाँचाल की राजधानी काम्पिल्य थी। वर्तमान में भौगोलिक दृष्टिकोण से पाँचाल के अन्तर्गत बरेली, बदायूँ, पीलीभीत, रामपुर, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, बिजनौर, एटा का आधा भाग, मैनपुरी, फर्रूखाबाद, इटावा, कानपुर जिलों के अधिकांश भू भाग आते हैं।

पाँचाल क्षेत्र गंगा दोआब की उपजाऊ मिट्टी कृषि क्षेत्र के लिए अनुकूल थी। सिंचाई के लिए यहाँ नदियों का जल पर्याप्त मात्रा में था। कृषि के विकास में पशुपालन ने भी योगदान दिया धीरे-धीरे यहाँ व्यापार भी प्रगति करने लगा। ऋग्वेद काल में व्यापारियों के लिए पाणि[1] एवं वणिज[2] का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक काल में लोहे के आगमन से शिल्प और व्यापार के विकास में प्रगति हुई तथा वैश्य वर्ग व्यापार से जुड़ गया[3] पद्‌म पुराण से ज्ञात होता है कि पाँचाल का कन्नौज नगर व्यापार का मुख्य नगर था। दूर-दूर से व्यापारी यहाँ अपना कीमती सामान बेचने आते थे। पाँचाल जनपद के संकिसा नगर से अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख प्रकाश में आये हैं जिसके अनुसार संकिसा नगर में चंदन की लकड़ी का व्यापार उन्नत स्थिति में था। जब पाँचाल में जैन व बौद्ध विकसित अवस्था में पहुँच गया उस समय अहिच्छत्र नगर एक बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन चुका था।[4] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि अहिच्छत्र मुक्ता व्यापार में अत्यधिक प्रसिद्ध था।[5]

अमर कोश गुप्तकाल में यहाँ की हाथी दाँत से निर्मित गुड़ियाओं का वर्णन करता है जो विशेष रूप से लोकप्रिय थीं। इन्हे 'पंचालिक' कहा जाता था एवं यह गुप्तकालीन व्यापार का मुख्य आकर्षण थीं।[6] यहाँ पर दोमट मिट्टी की प्रचुरता थी जो मृद्‌भाण्ड एवं मृण्मूर्तियों को बनाने के काम आती थी।[7] इसके अतिरिक्त बहुमूल्य पत्थरों का उद्योग अनेक धातुओं के मनके का उद्योग, मणियों, शीशों, शंख, हड्डियों एवं तांबे से बनी वस्तुओं का उद्योग काफी प्रसिद्ध था।

इस जनपद ने अर्थव्यस्था के दृष्टिकोण से भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। पाणिनी की अष्टाध्यायी में व्यापारिक सुगमता की दृष्टि से स्थल मार्गों का वर्गीकरण किया गया है जिसके अन्तर्गत रथपथ, गजपथ, यजपथ, संकुपथ, सिंहपथ का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] पाणिनी ने उत्तरापथ राजमार्ग का विस्तार से वर्णन करते हुए उससे

❑ **शोध अध्येत्री, डॉ. शकुन्तला मिश्र राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)**
❖ **असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, डॉ. शकुन्तला मिश्र राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)**

सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के व्यापारिक मार्गों के विषय में बताया है। उत्तरापथ राजगृह को तक्षशिला से जोड़ता था। यह स्थान गांधार की राजधानी थी। इस मार्ग में आने वाले अन्य प्रमुख नगरों में कन्यकुन्ज, संकिसा और इन्द्रप्रस्थ मुख्य थे[9] जो पाँचाल के तीन मुख्य नगर भी थे।

बौद्ध साहित्य भी पाँचाल की व्यापारिक गतिविधियों का उल्लेख करता है। पाँचाल क्षेत्र का संकिसा नगर एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था जो कि व्यापारिक नगरों के स्थल मार्ग से जुड़ा था। ऐसा माना जाता है कि संकिसा सौरोन और कन्नौज के मार्ग पर स्थित रहा होगा। अहिच्छत्र नगर जो कि उत्तरी पाँचाल की राजधानी थी एक बहुत बड़े व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। यह मुख्य राजमार्ग पर स्थित था[10] व्यापारिक गतिविधि का केन्द्र होने के कारण पाँचाल क्षेत्र से विभिन्न काल से सम्बन्धित मुद्राएं एवं मुद्रांक प्राप्त हुई हैं जिनमें से कुछ मुद्रांक पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित हैं। यह संग्रहालय रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली परिसर में स्थापित है तथा पाँचाल की समृद्ध कला एवं संस्कृति की विरासत को स्वयं में समाहित किए है।

सर्वप्रथम सिन्धु सभ्यता में मुद्रा का प्रचलन मिलता है जो सम्भवतः सिन्धु सभ्यता के वाणिज्य एवं व्यापार के विकास का मुख्य भाग थी। मुद्रांक अधिकांशतः पकी मिट्टी, कागज या धातु से निर्मित होती है। सिन्धु सभ्यता के बाद के कालों में भी मुद्रांक निरन्तर विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होते रहे हैं। पाँचाल अर्थव्यस्था के परिप्रेक्ष्य में मुदांकों की प्रमुख भूमिका रही है। मुद्रांकों पर बने चित्रों द्वारा उनके प्रचालित शासक, अर्थव्यस्था एवं धर्म से सम्बन्धित विषय में ज्ञात होता है। पाँचाल के संकिसा क्षेत्र से लगभग 115 मुद्रांक प्रकाश में आये हैं जिनमें से 73 भद्राक्षा एवं रामाक्षया से सम्बन्धित हैं। इन विभिन्न प्रकार के मुद्रांकों पर विशेष चिन्ह अंकित किए गए हैं। कुछ मुद्राओं पर शिव चिन्ह का अंकन है तो कुछ पर बैल एवं त्रिशूल का चित्र निर्मित है। प्राचीन लेख शास्त्रों के अनुसार यह मुद्रांक गुप्त काल तथा उससे पूर्व के माने जाते हैं।[11]

चित्र 1

(1) Seal of Ashwaghosa
Acc. No. : RU 165
Size-17.4mm & 21.8mm

यह मिट्टी से निर्मित अश्वघोष की मुद्रांक है जिसका काल दूसरी शताब्दी ए.डी. माना जाता है। इस मुद्रांक पर एक घोड़ा निर्मित है जिसका शीर्ष भाग नीचे की तरफ है। इसकी शारीरिक बनावट मांसल एवं बलिष्ठ है तथा पूँछ दायीं ओर प्रदर्शित है। इसके साथ ही ब्राह्मी लिपि में ''अश्वघोष'' लेख उत्कीर्ण है। सम्भवतः पाँचाल के स्थानीय शासक 'घोष' नामांत वाले शासकों द्वारा यह प्रचलन में लाया गया होगा।[12]

आषाठघोष : यह मुदांक भी पाँचाल से प्राप्त हुआ है परन्तु पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित नहीं है। इस मुद्रांक पर पाँचाल चिन्ह अर्थात् कुण्डली मारे सर्प अंकित है साथ ही साथ ''आषाठघोष'' लेख भी उत्कीर्ण है।[13] ऐसा अनुमानित है कि पाँचाल घोष शासकों द्वारा इस मुद्रा को प्रसारित किया गया होगा जिसका उद्देश्य व्यापारियों एवं सामान्य जनता द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से ले जाने के लिए चलन में लायी गई होगी।

(2). Gamas Seal Acc. No. : RU 164
Size-18.1mm & 21.2mm

चित्र 2

यह मिट्टी का मुद्रांक अहिच्छत्र से प्राप्त है एवं पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित है। इस मुद्रांक में दो पंक्ति की कथा उत्कीर्ण है। ऊपर की तरफ ब्राह्मी लिपि में गमस 'Gamas' और नीचे की ओर Malo[-] Sa 'मालो सां' उत्कीर्ण है जो अस्पष्ट है।

चित्र 3

(3) Aa [--] mbas Seal
Acc. No. : RU 166
Size-15.8mm

यह मुद्रांक भी अहिच्छत्र से प्राप्त एवं पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित किया गया है। इस पर उत्कीर्ण लेख अस्पष्ट आकृति उत्कीर्ण धुधले हो चुके हैं। इस सील के ऊपरी भाग पर एक पंक्ति में आदर्श वाक्य नीचे के भाग में लिखे हैं। इस पर खुदा हुआ लेख

ब्राह्मी लिपि में है।
Aa [--] mbas or Aa [ta or ya] mbas

चित्र 4

(4). Crescent above three hills type Seal
Acc. No. : RU 262
Size-21.9mm

यह पकी मिट्टी से निर्मित मुद्रांक अहिच्छत्र से प्राप्त है सम्भवतः इसका काल द्वितीय शताब्दी ए0डी0 माना गया है। इसमें तीन पहाड़ियों का चित्र अंकित किया गया है जिसमें दो छोटी पहाड़ियों के मध्य एक बड़ी पहाड़ी निर्मित है। इस पर कोई लेख उत्कीर्ण नहीं है।

चित्र 5

(5). "Yavedas" seal
Acc. No. RU 141
Size- 16.2 mm & 21.2mm

पाँचवा मुद्रांक भी अहिच्छत्र से ही प्राप्त है(द्वितीय शताब्दी ए0डी0)। इस मुद्रा में ब्राह्मी लिपि में एक पंक्ति उत्कीर्ण है जिसका अर्थ Yavedas. ……….. or Yavedam"s ………. Or Yavedise(Nulyanu).

अहिच्छत्र से प्राप्त अधिकांश मुद्रांक पकी हुई मिट्टी से निर्मित हैं। कुछ ताम्र निर्मित भी मिले हैं। ताम्र मुद्रांक पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित नहीं है क्योंकि पाँचाल संग्रहालय की स्थापना 2004 में हुई तथा इससे पूर्व प्राप्त इन कलाकृतियों को अन्य संग्रहालय में संरक्षित रख दिया गया था। पाँचाल से प्राप्त इन विभिन्न मुद्राओं के सम्बन्ध में यह अनुमान लगाया जाता है कि या तो यह नगर या किसी धर्म विहार या किसी राजा विशेष से सम्बन्धित होंगे।

सम्भवतः इन मुद्रांकों का प्रयोग पहचान पत्र या आज्ञा पत्र के रूप में करते रहे होंगे। एक अनुमान यह भी है कि यह मुद्रांक धार्मिक संस्थाओं, संगठनों एवं विहारों द्वारा जारी किये जाते होंगे। इसीलिए इन्हीं से सम्बन्धित कथा एवं आदर्श वाक्य इन पर उत्कीर्ण किये गये होंगे।

(6) Solar disc type seal
Acc. No. RU 140
Size- 15.5mm

चित्र 6

यह पकी मिट्टी से निर्मित मुद्रांक (द्वितीय शताब्दी ए0डी0) जो अहिच्छत्र से मिला है। इस पर एक बड़ी सौर चक्र की आकृति निर्मित है। इस पर कोई लेख उत्कीर्ण नहीं है। पाँचाल शासकों के कुछ सिक्कों पर सौर चक्र निर्मित है। सूर्य मित्र, भानु मित्र जिनके सिक्कों पर उगते सूर्य का अंकन है।

कुछ अन्य मुद्रांक भी यहाँ से प्राप्त हैं जो वर्तमान में यहाँ संरक्षित तो नहीं है परन्तु पाँचाल के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक विचारों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। इनमें से अन्य महत्वपूर्ण निम्नवत् हैं-

बंगपाल : पाँचाल के अहिच्छत्र से प्राप्त यह मुहर पाल शासकों से सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है। इसका उल्लेख कौशांबी के पभोसा अभिलेख से प्राप्त होता है।[14] ''बंगपालस्य'' लेख इस मुद्रांक पर उत्कीर्ण किया गया है तथा दूसरी भाग पर पाँचाल चिन्ह(कुण्डली मारे सर्प की आकृति) निर्मित है। इस मुद्रांक से यह स्पष्ट होता है कि पाल शासक अपने आन्तरिक एवं बाहरी राजकीय कार्यों में इसका प्रयोग करते थे।

देवनंद : अहिच्छत्र के नन्द शासकों में से एक शासक देवनंद का एक मुद्रांक प्राप्त हुआ है जिसके ऊपर 'कुमारनदुपतस्य-देवनदस्यं' लेख उत्कीर्ण है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पाँचाल के नंद शासकों द्वारा अपने वाणिज्य एवं व्यापार की प्रगति के लिए मुद्रांक का प्रचलन किया गया था।

पाँचाल के स्थानीय शासक घोष, पाल, नंद ने जिन मुद्राओं का प्रचलन किया यह राजकीय कार्यों व्यापार के लिए प्रयोग किये गये इसके अतिरिक्त यहाँ से प्राप्त अनेक मुद्रांकों पर धर्म सम्बन्धित चिन्ह निर्मित हैं जिससे स्पष्ट होता है कुछ मुद्रांक धार्मिक संस्थाओं अथवा विहारों द्वारा प्रसारित किये गये थे। इस प्रकार के मुद्रांकों का वर्णन निम्नवत् है-

गोठभूति : अहिच्छत्र से प्राप्त इस मुद्रांक पर प्राकृति

लिपि में ''गोठ भूतिस'' लेख उत्कीर्ण है। पाँचाल चिन्ह के साथ ही साथ स्वास्तिक चिन्ह भी निर्मित है। मुद्रांक पर अंकित चित्र से ज्ञात होता है कि यह किसी धार्मिक संस्था ने प्रारम्भ किया होगा।

स्थावरस्य-स्थवर : यह मुद्रांक अहिच्छत्र से प्राप्त है जिसमें ब्राह्मी लिपि में ''स्थावरस्य-स्थवर'' लेख लिखा हुआ है तथा इसके उपर घूमता हुआ चक्र बना है। वर्तमान में यह मुद्रांक हरियाणा झज्झर संग्रहालय में सुरक्षित है।[15]

श्रीवरवीर देवः इस मुद्रांक पर ''श्रीवरवीर देवस्य'' ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण लेख खुदा हुआ है यह अहिच्छत्र क्षेत्र से प्राप्त है। इसके उपर शंख एवं चक्र निर्मित है जो वैष्णव धर्म का प्रतीक है। स्पष्टतः यह किसी धार्मिक संस्था द्वारा प्रचलित करवाया गया होगा।

श्री द्वोट (Daudh) : पाँचाल से प्राप्त इस मुद्रांक पर ''श्री द्वौदस्य'' अंकित है तथा इसके ऊपर भी चक्र एवं शंख का चित्र अंकित किया गया है।

धर्मोरक्षितृ रक्षित : अहिच्छत्र से दो मुद्राएं ऐसे प्राप्त हुए हैं जिन पर ''धर्मोरक्षितरक्षित'' लेख खुदा हुआ है। इसमें से एक मुद्रांक प्रस्तर से निर्मित है जो इलाहाबाद के श्री जिनेश्वरदास के व्यक्तिगत संग्रहालय में सुरक्षित है।[16] और दूसरा खण्डित अवस्था में था तथा यह हरियाणा के झज्झर म्यूजियम में सुरक्षित है। इन मुद्रांको के ऊपर परसु एवं अर्द्धचन्द्र की आकृति अंकित है जिसका अर्थ है ''मारा हुआ धर्म, मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है। मुद्रांक के उपरी भाग में ''परशु'' व ''अर्द्धचन्द्र'' के चिन्ह शान्ति एवं राजदण्ड के प्रतीक हैं।[17]

सुधर्मधम्म महाविहारे : पाँचाल के रेहटुइया एवं अहिच्छत्र से प्राप्त मुद्रांकों में एक मुद्रांक पर ''सुधर्मधम्म महाविहारे'' लेख अंकित है। इस उत्कीर्ण लेख के ऊपर गुल्म लताओं में त्रिशूल का चिन्ह बना हुआ है।[18] इस मुद्रांक का अर्थ है ''सुधर्म नामक बौद्ध विहार''। इस लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः अहिच्छत्र क्षेत्र में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित ''सुधम्म'' नामक विशाल बौद्ध विहार स्थापित रहा होगा। सम्भवतः यह मुद्रांक विहारों के द्वारा भिच्छुओं की सुविधा के लिए निर्मित करवायें गये होंगे। बौद्ध विहार से सम्बन्धित एक अन्य मुद्रांक पर ''हरनकर विहारे संधस'' लेख उत्कीर्ण है जो यहाँ पर बौद्ध विहार होने का साक्ष्य देता है।

श्री महीदंड नायक : अहिच्छत्र से प्राप्त यह मुद्रांक न्याय विभाग द्वारा जारी किया गया प्रतीत होता है।[19]

पद्मानंदी : अहिच्छत्र से प्राप्त हुई इस मुद्रांक पर लेख उल्टा खुदा हुआ है तथा इस पर शंख चक्र का अंकन है। इसलिए इसका सम्बन्ध भगवान विष्णु से जोड़कर देखा गया है।

वाम विष्णु : यह अहिच्छत्र से प्राप्त ताम्र निर्मित पाँचवीं शताब्दी गुप्तकालीन मुद्रांक है। इस विलक्षण मुद्रांक पर ''वामविष्णु'' का अंकन है ऐसा माना जाता है कि यह हरिहर मंदिर से सम्बन्धित था।[20]

गजलक्ष्मी : अहिच्छत्र से प्राप्त इस मिट्‌टी के मुद्रांक पर कमल पर लक्ष्मी स्थानक मुद्रा में विराजमान हैं तो वहीं कुछ मुद्रा पर देवी लक्ष्मी को एक हाथ से धन वर्षा करते हुए उत्कीर्ण किया गया है तो कुछ मुद्राओं में देवी के हाथ में शंख निर्मित है तथा कुछ में दो हाथी के मध्य खड़ी देवी के ऊपर हाथी सूड़ से पानी की बौछार कर रहे हैं। यहाँ से प्राप्त इन मुद्राओं पर अंकित दृश्यों पर एक अन्य उद्‌देश्य हो सकता है जैसे गजलक्ष्मी के साथ पूर्ण कुंभ के चिन्ह उर्वरकता एवं समृद्धि के पर्याय हैं।[21]

पशुपति : पाँचाल क्षेत्र से प्राप्त की गई इस मुद्रा पर ''पशुपति'' लेख उत्कीर्ण है[22] जिस पर चीता, भेड़िया जैसे वन्य जीवों की आकृति निर्मित है इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ मुद्रांक ''वन्य विभाग'' द्वारा जारी किया गया होगा।

भास्करस्य : पाँचाल से प्राप्त इस पकी हुई मिट्‌टी की मुद्रांक में ब्राह्मी लिपि में ''भास्करस्य'' लेख उत्कीर्ण है।[23] श्री अहिच्छत्र, भुक्ता, कुमारमास्य अधिकरणस्यः यहाँ से प्राप्त इस गुप्तकालीन मुद्रा में ''श्री अहिच्छत्रभुक्तो कुमारमात्यधिकरणस्य'' लेख खुदा हुआ है।[24] इस मुद्रांक पर गज एवं लक्ष्मी का चिन्ह बना हुआ है। इसके किनारों पर बाहर की ओर मुख किए हुए दो सिंह के चित्र भी निर्मित हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पाँचाल साम्राज्य गुप्त शासकों के अधीन होने के पश्चात् किसी गुप्तवंशी शासक द्वारा जारी कराया गया होगा। इस संदर्भ में इतिहासकार परमेशवरीलाल गुप्ता का मत है कि यह भुक्ति का ओहदा वर्तमान की कमिश्नरी की भाँति रहा होगा।[25]

पुरातात्विक दृष्टिकोण से मुद्रांक पाँचाल के विभिन्न आर्थिक, धार्मिक, साँस्कृतिक पक्ष को उजागर करते हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से पाँचाल क्षेत्र में व्यापार प्रगतिशील व्यवस्था में था। इसके साथ ही साथ

इस क्षेत्र में विभिन्न धर्म एवं उससे सम्बन्धित विचार स्वतंत्र रूप से फले फूले। बौद्ध और जैन धर्म ने जहाँ व्यापार एवं व्यापारिक मार्गों के विकास में मुख्य योगदान दिया तो वहीं वैष्णव, शैव, शाक्त ने इस क्षेत्र के धार्मिक पक्ष को समृद्ध किया। इस प्रकार पाँचाल जनपद स्वयं में ''अनेकता में एकता'' के विचार को पूर्णतः समावेशित करता प्रतीत हो रहा है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद 1/33/3, 10/60/6
2. ऋग्वेद 6/1/196, 2/237
3. ऐतरेय ब्राहम्ण 1/2/3
4. पाल, शशि बाला, 'पंचाल', प्रथम संस्करण-2000, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ0 103
5. वही,
6. यू0पी0 डिस्ट्रीक्ट, गजेटियर-1968, पृ0 36
7. पाल, शशि बाला, पूर्वोक्त, पृ 151, आर0के0 साऊथ पंचाल कानपुर, 1985, पृ0 108
8. अष्टध्यायी 3/5/3
9. अष्टध्यायी 5/1/77 इन मार्गों का उल्लेख ग्रीक इतिहासकार स्ट्रेवो व प्लिनी ने भी किया है, हार्न, डब्लू.डब्लू, 'ग्रीक्स इन वैक्ट्रिया एंड इंडिया', पृ0 438
10. पाल, शशि बाला, पूर्वोक्त, पृ0 109
11. श्रीमाली, कृष्ण मोहन, 'हिस्ट्री ऑफ पाँचाल', प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण : मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1983, पृ0 129
12. पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित है।
13. पाँचाल संग्रहालय में संरक्षित है।
14. वाजपेयी, के0डी0, 'अहिच्छत्र', लखनऊ, 1956 पृ0 8
15. पाल, शशि बाला, पूर्वोक्त, पृ0 122
16. त्रिपाठी, आर.आर., 'स्टोन सील इन इलाहाबाद म्यूजियम', जे0एन0एस0 आई0, 28, 1966, पृ0 182-188
17. पाल, शशि बाला, पूर्वोक्त, पृ0 123
18. सिंह, के0पी0, 'पांचाल धर्म-पुरातत्व की दृष्टि में' मानविकी, भाग-1, 1990, पृ0 16
19. पाल, शशि बाला, पूर्वोक्त, पृ0 122-123
20. वही
21. श्रीमाली, कृष्ण मोहन, पूर्वोक्त, पृ0 134
22. सरस्वती, स्वामी ओमानन्द, 'प्राचीन भारत में मुद्रांक', मुद्रांक सं0 296
23. मिश्र, अतुल, अमर उजाला, बरेली, 24 जून, 1992, लेख
24. वाजपेयी, के0डी0, पूर्वोक्त, पृ0 11
25. गुप्ता, परमेश्वरी लाल, 'गुप्त साम्राज्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, जनवरी 1, 2011, पृ0 389

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम, 2010 : एक अनुभवात्मक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ डॉ. शीतल

सूचक शब्द :- प्रशासनिक मशीनरी, ई-शासन, लोक-निजी सहभागिता, प्रशासनिक जवाबदेही, त्वरित सेवा, प्रभावी एवं कार्यकुशल प्रशासन।

प्रस्तुत शोध आलेख मध्य प्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम, 2010 के क्रियान्वयन का अध्ययन है। मध्यप्रदेश शासन ने ''मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम, 2010" 25 सितम्बर 2010 को लागू किया। ऐसा कानून बनाकर लागू करने वाला मध्य प्रदेश देश का पहला राज्य बन गया है। यह अधिनियम नागरिकों को निश्चित समय-सीमा में सेवा प्रदान की गारंटी देता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि अधिनियम लागू होने से नागरिकों को त्वरित सेवा प्राप्त हो पा रही हैं या नहीं और सेवा प्रदाय की ऑनलाइन व्यवस्था से नागरिकों को सेवा प्राप्त करना सुगम हुआ है या नहीं। वस्तुतः प्रशासनिक अधिकारियों में जवाबदेही के स्तर को भी जाना गया है। सेवा प्रदाय की दिशा में आये परिवर्तनों से मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम, 2010 सुशासन की दिशा में एक नवीन कदम साबित हुआ है या नहीं, यह जानने का प्रयास किया गया है।

लोकतांत्रिक सरकार का प्रमुख दायित्व लोक कल्याण की ऐसी व्यवस्था स्थापित करना है जिसमें जनहित सम्पन्न हो सके। इस हेतु उसे अपने नागरिकों को कतिपय सेवाएँ भी प्रदान करनी होती है। "जनता की, जनता के लिए व जनता के द्वारा निर्वाचित सरकार लोकतांत्रिक सरकार होती है।"[1] अतः ऐसी लोकतांत्रिक सरकार में सम्प्रभु जनता का हित सर्वोपरि है। वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से जनकेन्द्रित कार्यों का क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है। सरकार का ध्येय अपने नागरिकों को सर्वसुविधायुक्त परिवेश देकर सुशासन स्थापित करना है।

लोक सेवा प्रदाय व्यवस्था को सुशासन का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विवेचनात्मक पहलू कहा गया है, क्योंकि इससे प्रत्येक नागरिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। भारत एक विकासशील देश है एवं एक सुव्यवस्थित पब्लिक सर्विस डिलीवरी के माध्यम से ही समावेशी एवं पोषणीय सामाजिक-आर्थिक विकास संभव हो सकता है।[2]

योजनाओं के निर्माण ही नहीं अपितु योजनाओं व शासन की अन्य सेवाओं की नागरिकों तक पहुंच को सुगम बनाने के उधेश्य से मध्यप्रदेश सरकार ने नागरिकों को सेवा प्राप्त करने के अधिकार को कानूनी रूप दिया है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा उठाये गये इस महत्वपूर्ण कदम से नागरिक अधिकारों का सशक्तीकरण व शासन का स्वरूप सुशासन की ओर उन्मुख हुआ है।

सुशासन की दिशा में मध्य प्रदेश सरकार ने एक क्रान्तिकारी पहल करते हुए प्रदेश के नागरिकों को प्रदान की जाने वाली चुनिन्दा सेवाओं को समय-सीमा में प्रदान करने की गारंटी देते हुए सम्पूर्ण प्रदेश में दिनांक 25 सितम्बर, 2010 को "मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम, 2010" लागू किया। ऐसा कानून बनाकर लागू करने वाला मध्य प्रदेश देश का पहला राज्य बन गया है। इस महत्वपूर्ण पहल का अनुसरण कर देश के अन्य राज्यों ने भी इस अधिनियम को अपने-अपने राज्य क्षेत्रों में लागू किया है।[3] यह अधिनियम नागरिकों को सेवा प्रदान की गारंटी ही नहीं देता वरन् एक निश्चित समय-सीमा के अंदर सेवा प्रदान करने की भी गारंटी देता है। इस अधिनियम के अनुसार लोकसेवकों को समय-सीमा में कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है और ऐसा न कर पाने पर लोकसेवकों पर आर्थिक जुर्माने का प्रावधान है। अधिनियम की धारा 7 में शास्ति के भुगतान के प्रावधानों का उल्लेख है। अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (1) के (क) में यह वर्णित है कि द्वितीय अपील प्राधिकारी की राय में पदाभिहित अधिकारी बिना पर्याप्त तथा युक्तियुक्त कारण से सेवा प्रदान करने में असफल रहा है तो वह पदाभिहित अधिकारी पर ऐसी एकमुश्त

❑ पोस्ट डाक्टोरल फैलो, लोक प्रशासन, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

शास्ति अधिरोपित कर सकेगा जो 500 रूपये से कम तथा 5000 रूपये से अधिक नहीं होगी।[4] सरकार द्वारा अधिसूचित सेवाएँ आम नागरिकों को एक निश्चित समय अवधि के अंदर उपलब्ध कराना है। अधिनियम की धारा 4 में पदाभिहित अधिकारी धारा 3 के अधीन अधिसूचित कोई सेवा प्राप्त करने के लिए पात्र व्यक्ति को, निश्चित की गई समय-सीमा के भीतर ऐसी सेवा प्रदान करायेगा। **अधिनियम** की धारा 3 में यह प्रावधान है कि राज्य सरकार समय-समय पर उन सेवाओं, पदाभिहित अधिकारियों, प्रथम अपील अधिकारियों, द्वितीय अपील प्राधिकारी तथा निश्चित की गई समय-सीमा को अधिसूचित कर सकेगी जिन पर यह अधिनियम लागू होगा।[5] प्रारम्भ में इसमें 9 विभागों की 26 सेवाएँ थीं, किन्तु सरकार द्वारा आम नागरिकों से जुड़ी सेवाओं में समय-समय पर वृद्धि की गई है।यह सेवाएं ऑनलाइन एवं आफलाइन दोनों ही माध्यम से प्रदान की जा रही हैं।

लोक सेवा केन्द्र की स्थापना :- मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम, 2010 को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए लोक -निजी भागीदारी (अर्थात पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप) के माध्यम से लोक सेवा केन्द्रों की स्थापना की गई। इन केन्द्रों का मुख्य कार्य अधिनियम में अधिसूचित सेवाएँ प्रदान करने के आवेदन प्राप्त करना व पदाभिहित अधिकारी तक पहुँचाकर उनके द्वारा लिये गये निर्णय आदि की जानकारी आवेदक को उपलब्ध कराना है।

अधिनियम की धारा 6 आवेदक को आवेदन नामंजूर होने पर या समय-सीमा पर सेवा प्रदान न करने पर अपील का अधिकार देती है।

प्रथम अपील :- यदि पदाभिहित अधिकारी द्वारा सेवा समय-सीमा में प्रदाय नहीं की जाती है या आवेदन नामंजूर कर दिया जाता है तो आवेदक के द्वारा 30 दिन के अंदर प्रथम अपील की जा सकती है। शासन द्वारा निर्धारित प्रथम अपील अधिकारी निश्चित समय-सीमा में पदाभिहित अधिकारी को सेवा प्रदान करने का आदेश देगा या अपील को रद्द कर सकता है।

द्वितीय अपील :- यदि प्रथम अपील अधिकारी द्वारा समय-सीमा में अपील आवेदन का निराकरण नहीं किया गया है अथवा आवेदक प्रथम अपील अधिकारी के निर्णय से संतुष्ट नहीं है तो ऐसे निर्णय की तारीख से 60 दिन के अंदर वह द्वितीय अपील कर सकता है। द्वितीय अपील अधिकारी निश्चित की गई अवधि के अंदर पदाभिहित अधिकारी को सेवा प्रदान करने का आदेश दे सकता है या अपील रद्द कर सकता है। पूर्व विहित अधिकारियों पर समय-सीमा में सेवा नहीं देने पर शास्ति आरोपित करने का प्रावधान भी अधिनियम में है।

अध्ययन के उद्देश्य :- मध्यप्रदेश शासन ने "मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम, 2010" लागू किया है जिसका प्रमुख लक्ष्य नागरिकों को त्वरित सेवा प्रदाय करना है। त्वरित सेवा प्रदाय के निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु शासन ने सेवा प्राप्त करने की निश्चित समय-सीमा निर्धारित की है तथा शासकीय अधिकारियों में जवाबदेही सुनिश्चित करने के उद्देश्य से शास्ति का प्रावधान रखा है। नागरिकों को त्वरित सेवा प्राप्त हो पा रही है या नहीं, शासकीय अधिकारियों में जवाबदेही बढ़ी है या नहीं प्रस्तुत अध्ययन यही जानने का प्रयास रहा है।

शोध प्रविधि :- अध्ययन का समग्र उज्जैन जिला है। **अवलोकन** की इकाइयाँ तीन श्रेणियों की हैं (1) हितग्राही (2) सेवा प्रदाता शासकीय अधिकारी (3) लोक सेवा केन्द्र के कर्मचारी।

प्रतिचयन की प्रविधि :- प्रथम स्तर पर हितग्राहियों का चयन दैव-निदर्शन पद्धति से किया गया है, विभिन्न विभागों के आवेदनों की सूचियों पर यादृच्छक संख्या अंकित कर कुल 8 केन्द्रों में प्रत्येक से 20 हितग्राही, द्वितीय स्तर पर सेवा प्रदाता अधिकारियों का उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन किया गया है। चूँकि सम्पूर्ण जिले में द्वितीय अपील का आवेदन प्राप्त न होने के कारण द्वितीय अपीलीय प्राधिकारी को सम्मिलित नहीं किया गया है। लोक सेवा केन्द्र में एक मुख्य संचालक सहित 4 कम्प्यूटर आपरेटर कार्यरत हैं। इस तरह प्रत्येक केन्द्र से मुख्य संचालक और 1 वरिष्ठ कम्प्यूटर आपरेटर का चयन किया गया।

प्रतिचयन का आकार :- शोध समग्र के अंतर्गत उज्जैन जिले में 8 लोक सेवा केन्द्र संचालित हैं। उज्जैन जिले के इन लोक सेवा केन्द्रों में 14 विभागों की सेवाओं के आवेदन 2014 तक प्राप्त हुये थे। यह विभाग निम्न हैं, -सामान्य प्रशासन विभाग, राजस्व विभाग, नगरीय प्रशासन एवं विकास विभाग, पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग, खाद्य, नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग, श्रम विभाग, सामाजिक न्याय विभाग, लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, गृह विभाग, किसान कल्याण एवं

कृषि विकास विभाग, ऊर्जा विभाग, महिला एवं बाल विकास विभाग। अतः प्रतिचयन का आकार निम्नानुसार है,-

हितग्राही	8×20	160
शासकीय अधिकारी	8×2	16
एल.एस.के. कर्मचारी	8×2	16
कुल		192

समंक संकलन विधि :-

समंकों का संकलन प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों के माध यम से किया गया। प्राथमिक आकड़ों का संकलन करने हेतु साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन तथा समूह चर्चा विधि का प्रयोग किया गया है। इनमें प्रथम साक्षात्कार अनुसूची हितग्राहियों के लिए, द्वितीय साक्षात्कार अनुसूची शासकीय अधिकारियों के लिए और तृतीय साक्षात्कार अनुसूची लोक सेवा केन्द्र के कर्मचारियों से संबंधित है।

उज्जैन का परिचय :- उज्जैन मध्यप्रदेश के उत्तर-पश्चिम भाग में उज्जैन संभाग का एक जिला है। इस जिले का भौगोलिक विस्तार 20°43' से 23°36' उत्तरी अंक्षाश व 75°00' से 76°30' पूर्वी देशान्तर तक है। यह जिला मालवा पठार के ह्रदय स्थल में स्थित है जिसका मुख्यालय उज्जैन शहर है। उज्जैन जिले का कुल क्षेत्रफल 6,091 वर्ग किलो मीटर है।[6] जिले में सात तहसील तराना, महिदपुर, उज्जैन, घटिया, नागदा, खाचरौद, बड़नगर हैं। इसके अतिरिक्त जिले में छः विकासखण्ड तराना, महिदपुर, उज्जैन, घटिया, खाचरौद, बड़नगर और सात नगरपालिकाएँ तराना, महिदपुर, उज्जैन, उन्हेल, नागदा, खाचरौद, बड़नगर हैं। इसके साथ ही उज्जैन जिले में उज्जैन नगर निगम भी गठित है।[7]

प्रदेश के सभी जिलों की भांति उज्जैन जिले में भी मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम 25 सितम्बर 2010 को प्रभावी हुआ। अधिनियम के कुशल क्रियान्वयन हेतु लोक सेवा प्रबंधन विभाग द्वारा प्रत्येक जिले के विकासखण्ड/तहसील स्तर पर एवं शहरी क्षेत्र में लोक सेवा केन्द्र की स्थापना का निर्णय लिया गया। अधिनियम को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए लोक-निजी भागीदारी (पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप) के माध्यम से लोक सेवा केन्द्रों की स्थापना की गई। इन केन्द्रों का मुख्य कार्य अधिनियम में अधिसूचित सेवाएँ प्रदान करने के आवेदन प्राप्त कर उनकी ऑनलाइन प्रविष्टि कर पदाभिहित अधिकारी तक पहुँचाना। अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवा या उनके द्वारा लिये गये निर्णय की जानकारी आवेदक को उपलब्ध कराना। जिले में आठ लोक सेवा केन्द्रों की स्थापना 25 सितम्बर 2012 को की गई। यह आठ लोक सेवा केन्द्र निम्नवत् है,- (1) नगर निगम उज्जैन, (2) तराना, (3) महिदपुर, (4) जनपद उज्जैन, (5) घटिया, (6) नागदा, (7) खाचरौद, (8) बड़नगर।

सेवा प्रदाय की व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सेवा प्राप्त करने के अधिकार को कानूनी रूप देते हुए मध्य प्रदेश शासन ने मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी अधिनियम, 2010 लागू किया जिसका प्रमुख लक्ष्य नागरिकों को त्वरित सेवा प्रदाय करना है। त्वरित सेवा प्रदाय के निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु शासन ने सेवा प्राप्त करने की निश्चित समय-सीमा निर्धारित की है तथा शासकीय अधिकारियों में जवाबदेही सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निश्चित समय-सीमा का पालन न करने पर अधिकारियों पर शास्ति के भुगतान का प्रावधान किया गया है। अधिनियम की धारा 7(4) में यह प्रावधान है कि आवेदक को बिना वैध कारण के विलम्ब से सेवा प्रदान किये जाने पर अधिकारी द्वारा चुकायी गई शास्ति की राशि आवेदक को क्षतिपूर्ति के रूप में दी जाएगी।

अधिनियम क्रियान्वयन के पश्चात सेवा प्राप्त की नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या नागरिक समय पर सेवा प्राप्त कर पा रहे हैं, सेवा प्राप्त करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं उसमें लगने वाले समय से संबंधित प्रश्न जैसे- आवेदन प्रपत्र प्राप्त करना, आवेदन प्रपत्र को भरना, जमा करना, निर्धारित समय-सीमा में सेवा का प्राप्त होना या न होना, आवेदन निरस्त की जानकारी का समय पर मिलना, निरस्तिरण के कारण की स्पष्ट जानकारी प्राप्त होना आदि सम्मिलित हैं। अतः हितग्राहियों से सेवा प्राप्त की नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत संचालित प्रक्रिया के व्यावहारिक स्वरूप को जाना गया है।

सारणी 1

हितग्राही उत्तरदाताओं के अनुसार

क्या आपको फार्म प्राप्त करने में कठिनाई हुई?

	हाँ	नहीं	योग
आवृत्ति	29	131	160
प्रतिशत	18.9	81.1	100

क्या आपने फार्म स्वंय भरा ?	हाँ	नहीं	योग
आवृत्ति	83	77	160
प्रतिशत	51.9	48.1	100

यदि नहीं, तो फार्म किसने भरा ?	आवृत्ति	प्रतिशत
एल.एस.के. कर्मचारी	8	5
मित्र व परिचित	41	25.6
स्थानीय प्रतिनिधि	7	4.4
अन्य	21	13.1
योग	77	100

किसी भी आवेदक को सेवा प्राप्त करने हेतु आवेदन करना होता है और यह आवेदन निश्चित प्रपत्र या प्रारूप में किया जाता है। अतः आवेदकों से आवेदन प्रपत्र प्राप्त करने, आवेदन प्रपत्र को भरने में हुई कठिनाई को जानने का प्रयास किया गया। कुल हितग्राही उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक को आवेदन प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई किन्तु 18.9 प्रतिशत हितग्राहियों को आवेदन प्राप्त करने में कठिनाई हुई। आवेदकों को यह कठिनाई सेवा प्राप्त की नवीन व्यवस्था से अनभिज्ञ होने, दुकानों में आवेदन प्रपत्र की अनुपलब्ध्ता, कुछ सेवाओं के आवेदन प्रपत्र व उसमें संलग्न होनें वाले दस्तावेजों का विभागीय अधिकारियों द्वारा निर्धारण न किये जाने के कारण हुई। चयनित उत्तरदाताओं में से अधिकतर हितग्राही उत्तरदाता शिक्षित हैं। अतः सर्वाधिक आवेदकों ने अपने आवेदन प्रपत्र स्वयं भरें, जबकि 50 प्रतिशत से भी कम आवेदकों ने किसी ओर से आवेदन प्रपत्र भरवायें। इनमें से एल.एस.के. कर्मचारियों से, मित्र व परिचितों से, स्थानीय प्रतिनिधियों से एवं अन्य लोगों में जैसे- अपरिचित सहायक, एल.एस.के. की कतार में खड़ें व्यक्तियों, दुकानदारों, वकीलों आदि से आवेदन प्रपत्र भरवाने की स्थिति स्पष्ट हुई।

सारणी 2

हितग्राही उत्तरदाताओं के अनुसार

क्या आपको सेवा प्राप्त हुई?	हाँ	नहीं	योग
आवृत्ति	95	65	160
प्रतिशत	59.4	40.6	100

कुल हितग्राही उत्तरदाताओं में से 50 प्रतिशत से अधिक हितग्राहियों को सेवा प्राप्त हुई है। इनमें वे हितग्राही भी सम्मिलित है जिन्हें निश्चित समय-सीमा व अपील उपरान्त सेवा प्राप्त हुई।

सारणी 3

हितग्राहियों के अनुसार

क्या आपका आवेदन निरस्त हुआ?	हाँ	नहीं	योग
आवृत्ति	69	91	160
प्रतिशत	43.1	56.9	100

यदि हाँ तो क्या निरस्त होने की सूचना प्राप्त हुई?	हाँ	नहीं	योग
आवृत्ति	60	9	69
प्रतिशत	37.5	5.6	100

यदि हाँ तो सूचना कब मिली?	आवृत्ति	प्रतिशत
समय-सीमा के पूर्व	8	13.3
समय-सीमा पर	30	50
समय-सीमा उपरान्त	22	36.6
योग	60	100

आपका आवेदन किस कारण से निरस्त हुआ?	आवृत्ति	प्रतिशत
सेवा प्राप्त करने की पात्रता न होने से	21	30.4
दस्तावेज पूर्ण न होने से	29	42
अन्य	19	27.5
योग	69	100

नागरिकों को सेवा मिलना ही पर्याप्त नहीं है अपितु सेवाओं का समय पर मिलना अधिक प्रासंगिक है। यदि किसी व्यक्ति को प्यास लगी है तो उसकी प्यास बुझाने तक उसके लिए एक गिलास पानी का महत्व प्राण तुल्य है, इसके उपरान्त नहीं। इसी प्रकार यदि न्यायलय द्वारा किसी विवाद का निर्णय समय पर किया जाता है तो वह न्याय है और समय उपरान्त वही निर्णय वादी को अन्याय प्रतीत होता है।

अधिनियम क्रियान्वयन हेतु निर्मित नियम में यह प्रावधान है कि पदाभिहित अधिकारी द्वारा यदि आवेदक का आवेदन निरस्त किया जाता है, तो उसे निरस्ति का कारण लिखित रूप में देना अनिवार्य होगा। इस नियम के अनुपालन स्वरूप सर्वाधिक हितग्राहियों को उनके आवेदन निरस्त होने की जानकारी प्रदान की गई है जिनमें से सर्वाधिक 50 प्रतिशत को निरस्त की सूचना समय-सीमा के अन्तर्गत प्राप्त हुई। हितग्राहियों के आवेदन निरस्त

होने के कारणों में सेवा प्राप्त करने की पात्रता न होना, दस्तावेज पूर्ण न होना एवं कुछ आवेदकों का आवेदन अन्य कारणों से निरस्त होना बताया गया। निरस्त होनें के अन्य कारण में आने वाले इन आवेदकों के आवेदन निरस्त होने का स्पष्ट कारण नहीं बताया गया था। कुल आवेदकों में सर्वाधिक आवेदकों के आवेदन दस्तावेज पूर्ण न होने के कारण निरस्त हुये हैं। इसका कारण आवेदकों को आवेदन में सम्मिलित होने वाले दस्तावेजों की जानकारी की कमी नहीं वरन् विभागों द्वारा संबंधित सेवाओं के आवेदन हेतु निर्धारित दस्तावेजों के अतिरिक्त कई प्रकार के अन्य दस्तावेजों की मांग करना है। हितग्राहियों के अनुसार कुछ सेवाओं को प्राप्त करने हेतु निर्धारित शुल्क से कई गुना अधिक व्यय दस्तावेजों को बनवाने में हुआ है। अतः वर्तमान सेवा प्रदाय व्यवस्था की यह व्यवस्था अधिनियम के प्रमुख लक्ष्य सेवा प्रदाय व्यवस्था को सहज बनाने में बाधक हुई है। इसमें सुधार किये जाने की आवश्यकता है।

सारणी 4
हितग्राहियों के अनुसार

		हाँ	**नही**	**कोई राय नहीं**	**योग**
समय-सीमा के निर्धारण से क्या शासकीय अधिकारियों में जवाबदेही बढ़ी है?	आवृति	112	40	8	160
	प्रतिशत	70.0	25.0	5.0	100
अधिनियम के प्रभावी होने से क्या शासकीय अधिकारियों में कोई सकारात्मक परिवर्तन हुआ है?	आवृति	101	46	13	160
	प्रतिशत	63.1	28.8	8.1	100
LSK के कर्मचारियों के मतानुसार					
अधिनियम क्रियान्वयन के पश्चात क्या शासकीय अधिकारियों में जवाबदेही बढ़ी है?	आवृति	12	1	13	16
	प्रतिशत	75.0	6.2	18.8	100
अधिनियम क्रियान्वयन के पश्चात् क्या शासकीय अधिकारियों में कोई सकारात्मक परिवर्तन आया है?	आवृति	10	1	5	16
	प्रतिशत	62.5	6.2	31.2	100

सारणी 5
शासकीय अधिकारियों के अनुसार
क्या पूर्व की अपेक्षा अब नागरिकों को त्वरित सेवाएँ मिल रही हैं?

	हाँ	नहीं	योग
आवृत्ति	15	1	16
प्रतिशत	93.8	6.2	100

सेवा प्रदाय की नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत सेवा प्रदान करने वाले सर्वाधिक शासकीय अधिकारी उत्तरदाताओं ने अपने कार्यानुभव के आधार पर बताया है कि वर्तमान सेवा प्रदाय व्यवस्था के अन्तर्गत उनके कार्यभार में कमी आई है। अब वह अधिक व्यवस्थित रूप से नागरिकों को सेवा प्रदान कर पाते हैं।

स्पष्ट है कि सर्वाधिक अधिकारी उत्तरदाताओं ने यह भी बताया है कि अधिनियम क्रियान्वयन उपरान्त सेवा प्रदाय की ऑनलाइन प्रक्रिया से शासकीय व्यवस्था अधिक कार्यकुशल हुई है। अधिकारी उत्तरदाता यह भी मानते हैं कि अधिनियम के प्रावधान के अन्तर्गत सेवा प्रदाय के समय-सीमा के निर्धारण किये जाने से सेवा प्रदाय कार्य में गतिशीलता आई है। अब वह सेवा प्राप्ति के आवेदनों का शीघ्रता से ऑनलाइन निराकरण करने में सक्षम हुए हैं। आवेदन संबंधी अभिलेखों की साफ्टकॉपी व हार्डकॉपी दोनों तरह से दस्तावेजों की जाँच कर सेवा प्रदाय संबंधी निर्णय निश्चित समय-सीमा के अन्तर्गत लेने में सक्षम हुये हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण में अधिनियम की प्रभावशीलता के सन्दर्भ में हितग्राही उत्तरदाताओं में सर्वाधिक ने स्वीकार किया है कि सेवा प्रदान की वर्तमान व्यवस्था अधिक सुविधाजनक है व पुरानी व्यवस्था की अपेक्षा सेवा प्राप्त करने में समय व खर्च में कमी आई है। साथ ही अधिकारी उत्तरदाताओं में अधिकांश के अनुसार अधिनियम क्रियान्वयन के पश्चात उनका कार्यभार कम हुआ है

जिसके परिणाम स्वरूप उनके कार्य में गतिशीलता आई है व शासकीय व्यवस्था अधिक कार्यकुशल हुई है। LSK के कर्मचारी उत्तरदाताओं में सर्वाधिक के अनुसार वर्तमान की सेवा प्रदाय व्यवस्था में नागरिकों को त्वरित सेवाएँ प्राप्त हो रही हैं।

मनु वत्सल शर्मा एवं नवीन सुरापानेनी ने अधिनियम लागू होने की पूर्व स्थिति संबंधी अपने अध्ययन में पाया कि भारत के अधिकांश नागरिक सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान किए जाने से संतुष्ट नहीं हैं,[8] किन्तु प्रस्तुत शोध अध्ययन में पाया गया है कि अधिनियम क्रियान्वयन के पश्चात सेवा प्राप्त करने की प्रक्रिया में आवेदन प्रक्रिया व सेवा प्रदाय प्रक्रिया सहज हुई है जिसके परिणाम स्वरूप अधिकांश हितग्राहियों को निर्धारित समय-सीमा में सेवाएँ प्राप्त हुई हैं।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पूर्व की अपेक्षा नागरिक अब निर्धारित समय-सीमा में सेवा प्राप्त कर रहे हैं अर्थात नागरिकों द्वारा सेवा प्रदान हेतु किये गये आवेदनों का निराकरण निश्चित समय-सीमा में सम्भव हुआ है। इसके साथ ही आवेदन निरस्तिकरण होने पर आवेदकों ने अपील कर आवेदन निरस्तिकरण का स्पष्ट कारण जानते हुए अपनी बात भी अपीलीय अधिकारी के समक्ष रखी है। अपील उपरान्त अपीलकर्ताओं को सेवाएँ भी प्राप्त हुई हैं।

पूर्व की अपेक्षा सेवा प्रदाय की प्रक्रिया को पूर्ण करने में अधिकारी तुलनात्मक रूप से अब अधिक जवाबदेह हुए हैं। हितग्राही, अधिकारी व LSK के कर्मचारियों के सर्वाधिक उत्तरदाताओं ने माना कि सेवा प्राप्त के आवेदनों पर अब शीघ्र कार्यवाही की जाती है अर्थात कहा जा सकता है कि अधिनियम के अन्तर्गत शास्ति वसूली के प्रावधान ने अधिकारियों को समय-सीमा में सेवा प्रदान करने हेतु बाध्य किया है।

अतः सुशासन के जिन मानकों को आधार बनाकर अधिनियम क्रियान्वित किया गया है, अध्ययन में प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण अनुसार अधिनियम लागू होने के पश्चात से प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यवाहियों में हुआ परिवर्तन सकारात्मक सुधार का सूचक है जिसके परिणाम स्वरूप प्रशासनिक व्यवस्था नागरिकोन्मुखी, परिवर्तनोन्मुखी, लक्ष्योन्मुखी व अन्तिम रूप से कतिपय अपवादों के बावजूद सुशासन की ओर उन्मुख हुई प्रतीत होती है।

संदर्भ

1. HICKS, JOHN D. 'Lincoln, Defender of Democracy', Prairie Schooner,Vol.4, No.1, 1930, pp.16-25.
2. गजेटियर, जिला उज्जैन, 1995.
3. गुप्ता, सुनील, एवं कमल कुमारसिंह, 'सुशासन', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली-2012,पृ.214.
4. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका, जिला सांख्यिकीय कार्यालय उज्जैन, उज्जैन-2010.
5. मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम, 2010 'जन-प्रतिनिधियों के लिए अध्ययन-सामग्री', सुशासन एवं नीति विश्लेषण स्कूल, भोपाल -2012,पृ.3.
6. मध्यप्रदेश शासन, लोक सेवा प्रबंधन विभाग, मंत्रालय, आदेश क्र. 928/2012/लो.से.प्र./61 भोपाल दिनांक 03.08.2012.राज पत्र (असाधारण) क्र. 456 भोपाल, शुक्रवार दिनांक 17 सितम्बर 2010.
7. मध्यप्रदेश शासन विधि एवं विधायी कार्य विभाग, मध्यप्रदेश लोक सेवाओं के प्रदान की गांरटी अधिनियम, 2010, मध्यप्रदेश राजपत्र, क्र. एफ 308-5-01-2010, भोपाल-24 सितम्बर 2011.
8. शर्मा, मनु वत्सल एवं सुरापानेनी, नवीन, 'सेंटर फॉर मीडिया स्टीडीज', बिजनेस स्टैण्डर्ड, 25/26 मार्च-2006.

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव पश्चिमी राजस्थान के विशेष संदर्भ में

❑ डॉ. गौरव कुमार जैन
❖ शारदा चौधरी

सूचक शब्द :– जलवायु परिवर्तन, अतिशय तापमान, असामान्य व अनियमित वर्षा, बायोफ्यूल, जैविक खेती।

डिजास्टर मैनेजमेंट इन इंडिया की एक रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश का 85 प्रतिशत भाग किसी न किसी प्रकार की आपदाओं के दायरे में आता है जिसमें 40 मिलियन हेक्टेयर जमीन बाढ़, 8 प्रतिशत भाग चक्रवात और 68 प्रतिशत जमीन सूखे से प्रभावित होती है। इसके मूल में जलवायु परिवर्तन को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में पिछले 30– 40 वर्षों के तापमान व वर्षा के आंकड़ों का प्रयोग करते हुए पश्चिमी राजस्थान की जलवायु परिवर्तन का अध्ययन किया गया है ताकि जलवायु परिवर्तन का पश्चिमी राजस्थान की कृषि पर प्रभाव दिखाया जा सके। जलवायु परिवर्तन के कारण पश्चिमी राजस्थान में अतिशय तापमान व असामान्य वर्षा के कारण कृषि उत्पादन पर प्रभाव पड़ा है तथा साथ ही पशुपालन भी प्रभावित हुआ है। तापमान के कारण पशुओं को मिलने वाले हरे चारे में कमी आती है और दूध उत्पादन प्रभावित होता है। इस शोध पत्र में पश्चिमी राजस्थान में असामान्य व अनियमित वर्षा के कारण उत्पन्न बाढ़ व सूखे के दृश्य व प्रभाव को भी रेखांकित किया गया है । इन सभी का एकमात्र उपाय है ग्रीन हाउस गैसों को नियंत्रित करना/ इसके लिए वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग, सोलर ऊर्जा व परमाणु ऊर्जा के उत्पादन, वृक्षारोपण, बायोफ्यूल का उपयोग, जैविक खेती व पारंपरिक कृषि प्रणाली को प्रोत्साहन देना अति आवश्यक है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं आदि सभी के लिए बहुत ही चिंताजनक विषय है। संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (यूएनएफसीसीसी) के अनुसार जलवायु परिवर्तन का मूल कारण मानवीय गतिविधियां हैं। जलवायु परिवर्तन फिलहाल खाद्यान्न असुरक्षा के रूप में सामने दिख रहा है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन और रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशक दवाइयों के उपयोग से खाद्यान्न की गुणवत्ता अत्यधिक प्रभावित हुई है।

कृषि भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग है, हमेशा रही है और सदियों से भारत वासियों की आर्थिक व सांस्कृतिक जिंदगी से जुड़ी रही है। आज भी करीब दो तिहाई जनसंख्या कृषि व कृषि उत्पादों पर निर्भर है। समस्त मानव जीवन कृषि पर निर्भर है और कृषि मानसून के अनिश्चित स्वभाव के फलस्वरूप अतिवृष्टि, असामान्य वर्षा, सूखा व बाढ़ कृषि को प्रभावित किए जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन राजस्थान के किसानों के लिए एक चिंताजनक विषय हो गया है क्योंकि जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बाढ़ और सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं ने तो कृषि को प्रभावित किया है साथ ही निरंतर घटता हुआ भूजल स्तर कृषि के लिए समस्या बनता जा रहा है। शिक्षित और तकनीकी ज्ञान से परिष्कृत लोगों के अलावा एक अशिक्षित किसान भी आज इस बात को जानने लगा है कि धरती गर्म होती जा रही है जिसके कारण बीज के स्वस्थ अंकुरण के लिए आवश्यक नमी और गर्मी का संतुलन पहले जैसा नहीं रहा।

जलवायु परिवर्तन के बारे में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित संयुक्त राष्ट्र के अंतर शासकीय समिति के अध्यक्ष राजेंद्र पचौरी[1] ने स्पष्ट रूप से यह चेतावनी दी है कि भारत सहित कई देशों की कृषि पैदावार जलवायु परिवर्तन के कारण बुरी तरह प्रभावित होगी। इससे उबरने के लिए किसानों को जल व प्राकृतिक संसाधनों के संयमित दोहन की आवश्यकता है। इसके लिए किसानों को कृषि के तौर-तरीकों और फसल चक्र में बदलाव लाने को प्राथमिकता देनी चाहिए। पचौरी ने वर्ष 2007 में वैश्विक तापमान में 4 डिग्री सेल्सियस बढ़ोतरी की संभावना व्यक्त की है जिसका सीधा मतलब वर्षा के पैटर्न में भारी बदलाव के फलस्वरूप जल संसाधन

❑ सहायक प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)
❖ शोध अध्येत्री, भूगोल विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

व जैव विविधता पर विपरीत प्रभाव है। अतः अनुभव किया जा रहा है की अब हम पुनः जैविक खेती जैसी पारंपरिक कृषि की ओर ध्यान दें तथा इसे अपनाएं ताकि कम पानी व सूखे की स्थिति में भी पर्याप्त उपज दी जा सके। वर्तमान समय में बंजर भूमि का संवर्धन करने में जैव उर्वरक एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं।

शोध अध्ययन क्षेत्र:[2] राजस्थान राज्य देश के उत्तरी पश्चिमी भाग में स्थित है। यह देश का सबसे बड़ा राज्य है। ग्लोब पर राजस्थान की ज्यामितीय स्थिति $23^0 3'$ उत्तरी अक्षांश से $30^0 12'$ उत्तरी अक्षांश के बीच तथा $69^0 3'$ पूर्वी देशांतर से $78^0 17'$ पूर्वी देशांतर के मध्य है। राजस्थान राज्य की पश्चिमी व उत्तर - पश्चिमी सीमा पाकिस्तान के साथ 1070 किलोमीटर लंबी सीमा बनाती है। यह एक विषमकोणीय चतुर्भुज की आकृति के समान है। कर्क रेखा इसके दक्षिण भाग में बांसवाड़ा से होकर गुजरती है। राजस्थान के लगभग मध्य भाग से दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर अरावली पर्वतमाला गुजरती है जो मारवाड़ के मैदान को मेवाड़ के पठार से अलग करती है।

राजस्थान का समस्त पश्चिमी भाग जिसे मारवाड़ के नाम से जाना जाता है प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र है। पश्चिमी व उत्तरी पश्चिमी भाग थार का मरुस्थल कहलाता है। इसके अंतर्गत गंगानगर, हनुमानगढ़, जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, नागौर, जोधपुर, पाली, चूरु झुंझुनू, सीकर, जालौर जिले भी आते हैं।

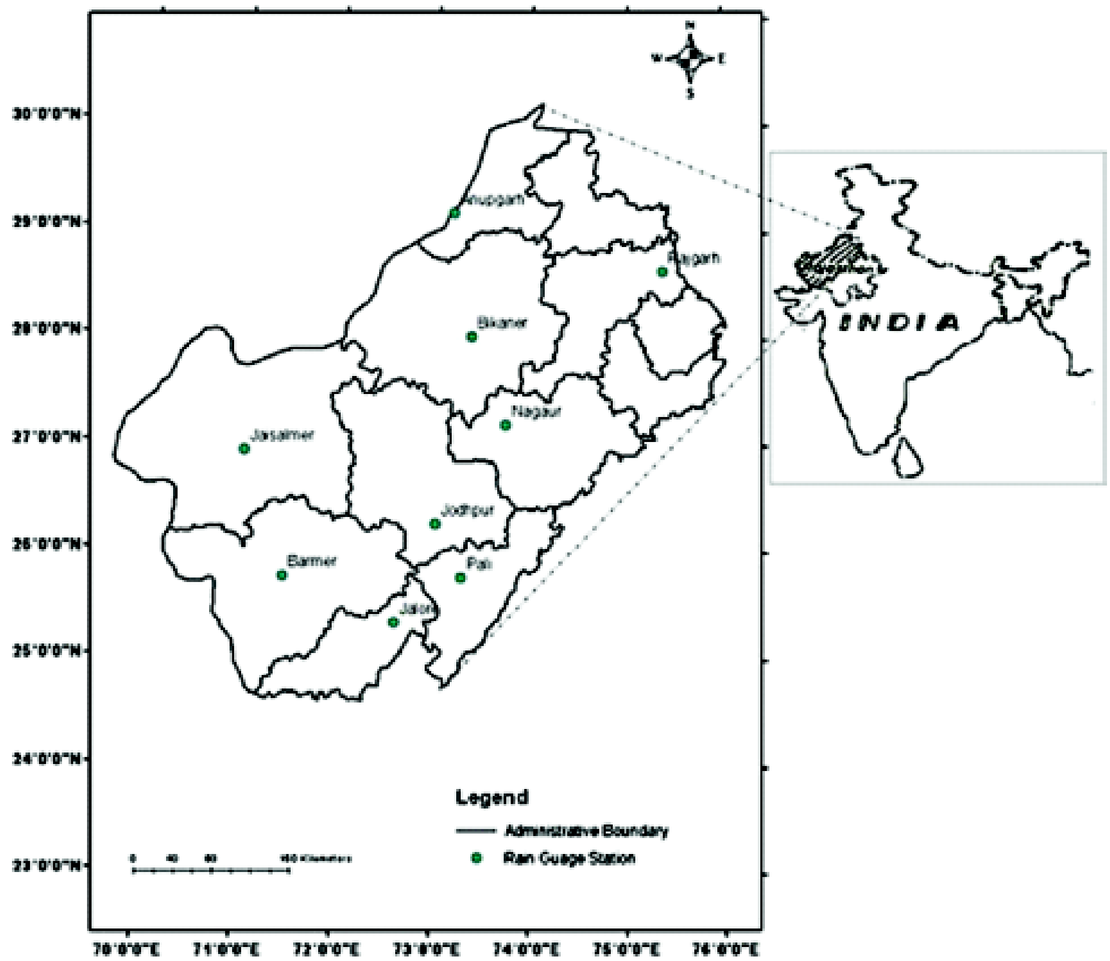

अध्ययन के उद्देश्य

1. भूमि की घटती उर्वरा शक्ति, उत्पादन की बढ़ती लागत, भंडारण और विपणन की समस्या, कृमियों का प्रकोप, कम अवधि में अधिक उपज देने वाली फसलों की कमी, जलवायु परिवर्तन और मानसून की अनियमितता बड़ी समस्या है। इन सब चुनौतियों के चलते राजस्थान में कृषि को समन्वित रुप से विकसित करने की आवश्यकता है।
2. विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण के लिए ठोस चिंता परिलक्षित होनी चाहिए। तात्कालिक रुप से शहरों में हीटवेव से हो रही बर्बादी को रोकने के प्रयास किये जाने चाहिए।
3. अधिक तापमान व वर्षा की कमी से सिंचाई हेतु भू-जल संसाधन का अधिक दोहन किया जाएगा। जिससे धीरे-धीरे भू-जल इतना ज्यादा नीचे चला जाएगा कि उसका दोहन करना आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी सिद्ध होगा।
4. कृषि पर पड़ने वाले जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के अनेक उपाय हैं जिनको अपनाकर हम कुछ हद तक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से अपनी कृषि को बचा सकते हैं।

जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। जल आपूर्ति की भयंकर समस्या उत्पन्न होगी तथा सूखे व बाढ़ की बारम्बारता में वृद्धि होगी। अर्ध शुष्क क्षेत्रों में शुष्क मौसम अधिक लम्बा होगा जिससे फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। वर्षा की अनिश्चितता भी फसलों के उत्पादन को प्रभावित करेगी तथा जलस्त्रोतों के अधिक दोहन से जल स्त्रोतों पर संकट के बादल मंडराने लगंगे।

परिकल्पना

1. जलवायु परिवर्तन से पश्चिमी राजस्थान में तापमान व वर्षा के औसत में बदलाव आया है।
2. जलवायु परिवर्तन से पश्चिमी राजस्थान में तापमान व अतिवृष्टि जैसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।
3. जलवायु परिवर्तन से भूजल स्तर में परिवर्तन आया है।
4. जलवायु परिवर्तन से कृषि क्षेत्र में भूमि उपयोग में परिवर्तन आया है।

शोध विधि : प्रस्तुत शोध पत्र में पश्चिमी राजस्थान में कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को दर्शाया गया है। राज्य व जिला स्तर पर संबंधित संस्थाओं से सूचनाएं व समंक एकत्रित किए गए हैं। वास्तविक व सामान्य मानसूनी वर्षा का औसत, पिछले सालों के तापमान का औसत आदि के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को दिखाया है। प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों के रूप में समाचार पत्रों , पत्र - पत्रिकाओं एवं वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा जारी प्रगति प्रतिवेदनों का उपयोग किया गया है।

जलवायु परिवर्तन का पश्चिमी राजस्थान की कृषि पर प्रभाव : जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि पर मंडराते खतरों के प्रति सचेत करते हुए इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च इन एग्रोफोरेस्ट्री के निदेशक कूलूस टॉपर[3] ने भी अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आने वाले दिन जलवायु परिवर्तन के भीषणतम उदाहरण होंगे जो कृषि उत्पादकता पर चोट, जल दबाव, बाढ़, चक्रवात व सूखे जैसी गंभीर दशाओं को जन्म देंगे। वास्तविकता यह है कि जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से संपूर्ण विश्व में खाद्यान्न संकट की विकरालता बढ़ जाएगी जो चिंता व चिंतन का विषय है।

बढ़ती जनसंख्या, बढ़ते उद्योगों एवं विध्वंस होते वनों एवं जंगलों के कारण विश्व बढ़ते तापमान एवं जलवायु परिवर्तन जैसी ज्वलंत समस्याओं से जूझता हुआ विनाश के कगार पर खड़ा है। ऐसा अनुमान व्यक्त किया गया है कि गत एक शताब्दी के दौरान पृथ्वी के औसत तापमान में लगभग 0.74 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि हुई है जबकि गत 50 वर्षों के दौरान वैश्विक तापमान में वृद्धि दोगुनी हो गई है।

विभिन्न रिपोर्ट एवं आंकड़ों के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि पश्चिमी राजस्थान में तापमान व जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पादन में कमी अंकित की जा रही है। फसल चक्र अनियंत्रित व असंतुलित होता जा रहा है।[4] जलवायु परिवर्तन से गेहूं व सरसों के उत्पादन में कमी आई है। जलवायु परिवर्तन से लूणी व सहायक नदियों के तटों पर जल बहाव, लवणता, बाढ़ व औद्योगिक प्रदूषण में वृद्धि के कारण जल की उपलब्धता में कमी आने का खतरा बढ़ गया है।

पश्चिमी राजस्थान में खेती, उद्योगों व पीने के लिए भूमिगत जल का उपयोग भी सर्वविदित है किंतु जलवायु परिवर्तन के साथ उचित जल प्रबंधन व जल उपयोग व्यवस्था विद्यमान नहीं होने से भू - जल स्तर तेजी से

गिरता जा रहा है जिसके कारण डार्क जोन एरिया में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है तथा आगामी वर्षों में जल की समस्या भीषण होने की प्रबल संभावना है।

जलवायु परिवर्तन के कारण पश्चिमी राजस्थान में गर्मी और सर्दी के मौसम के बीच में तापमान की खाई भी लगातार घटती जा रही है। तापमान का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव स्वास्थ्य, खेती और जल स्रोतों पर दिखने लगा है। मौसम विभाग के अनुसार फरवरी और अप्रैल के महीने के औसत तापमान में 7.8 डिग्री से अधिक अंतर नहीं है जबकि यह 17 – 18 डिग्री होना चाहिए।[5]

Rajasthan map indicating IMD observatories

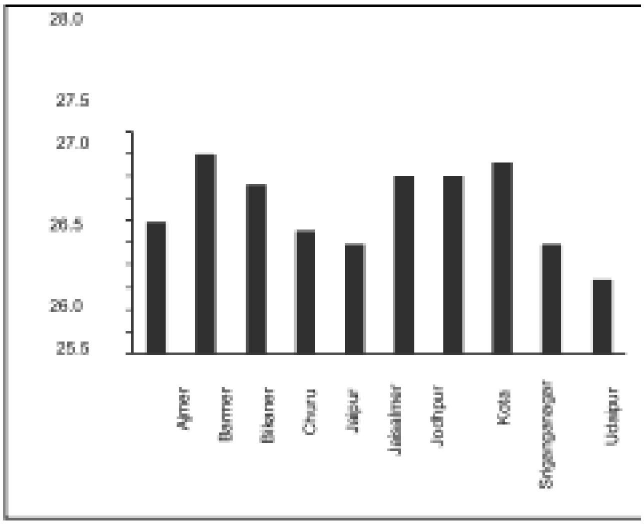

Average temp (1971-2010)

उपर्युक्त चित्र में पिछले 30 वर्षों के दौरान अधिकतम , न्यूनतम एवं औसत की भिन्नता को दिखाया गया है जिससे स्पष्ट है कि तापमान में लगातार वृद्धि जारी है। गेहूं की बुआई के दौरान तापमान में बढ़ोतरी के प्रभाव से अनाज की पैदावार में कमी आई है। सरसों की फली आने और बीज विकसित होने की अवस्था के दौरान न्यून तापमान के प्रभाव से बीजों के कड़ेपन को नुकसान पहुंचा है और बीज की उपज में काफी हद तक कमी आई है। राजस्थान में गेहूं व सरसों की उपज में कमी हुई है यह क्रमशः मौसमी प्रति 2.49, 0. 92 कुंतल प्रति हेक्टेयर की दर से कम हुई है।[6]

फसलों की पैदावार पर पड़ने वाले तापमान के प्रभाव को कम करने के लिए प्रतिरोधी जुताई , पलवारना , लवणों का पर्णीय छिड़काव आदि तकनीके अपनानी चाहिए।

डूबता रेगिस्तान[7] : जलवायु परिवर्तन ने पश्चिमी राजस्थान में अनियमित व असामान्य बारिश को जन्म दिया है जिससे यहां कभी बाढ़ तो फिर कभी सूखा ही रह जाता है। एक औसत वर्षा ही कृषि के लिए उत्तम होती है। सूखे के कारण फसलें पानी के अभाव में चौपट हो जाती हैं तो बाढ़ के कारण सड़ जाती हैं। इनके आगे भी कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैसे – बाढ़ के कारण मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत हट जाती है जबकि सूखे से मिट्टी की नमी ही समाप्त हो जाती है। मरुस्थली क्षेत्र में बाढ़ न केवल अनियमित होती जा रही है बल्कि विनाशकारी रूप भी धर रही है।

जालौर जिले के होती गांव में सात बरसाती नदियां आकर मिलती हैं, इन नदियों में 2017 आई बाढ़

जालौर के होती गांव सहित आसपास के सभी गांव में आज से 50 साल पहले तक यहां आकर मिलने वाली सात बरसाती नदियों की उपजाऊ मिट्टी से खेती लहलहाती थी लेकिन पिछले 2 दशकों से हुई अनियमित वर्षा ने बरसाती नदियों को ऐसी मतवाली बना दिया कि वे अपनी धारा ही बदल बैठी।

डेढ़ दशक से पश्चिमी राजस्थान बाढ़ का प्रकोप झेल रहा है। अमेरिका में जलवायु परिवर्तन पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत करने वाले जोधपुर के विक्रम एस. राठौड़[8] ने बताया कि वास्तव में पिछले सालों में बंगाल की खाड़ी का मानसून कमजोर पड़ रहा है और अरब सागरीय मानसून मजबूत हो रहा है।

रेगिस्तान में बाढ़ के इतिहास को खंगालने वाले पाली जिले के पारिस्थितिकी वैज्ञानिक के. पी. व्यास[9] बताते हैं कि यह बारिश ऐसे ही आने वाले समय में हुई तो संभव है कि रेगिस्तान एक बार फिर हरा - भरा हो जाए जैसा कि हजारों साल पहले हुआ करता था। यहां की पारिस्थितिकी में भी बदलाव संभव होगा और सूखे इलाकों में पनपने वाले जीवाणु खत्म हो जाएंगे।

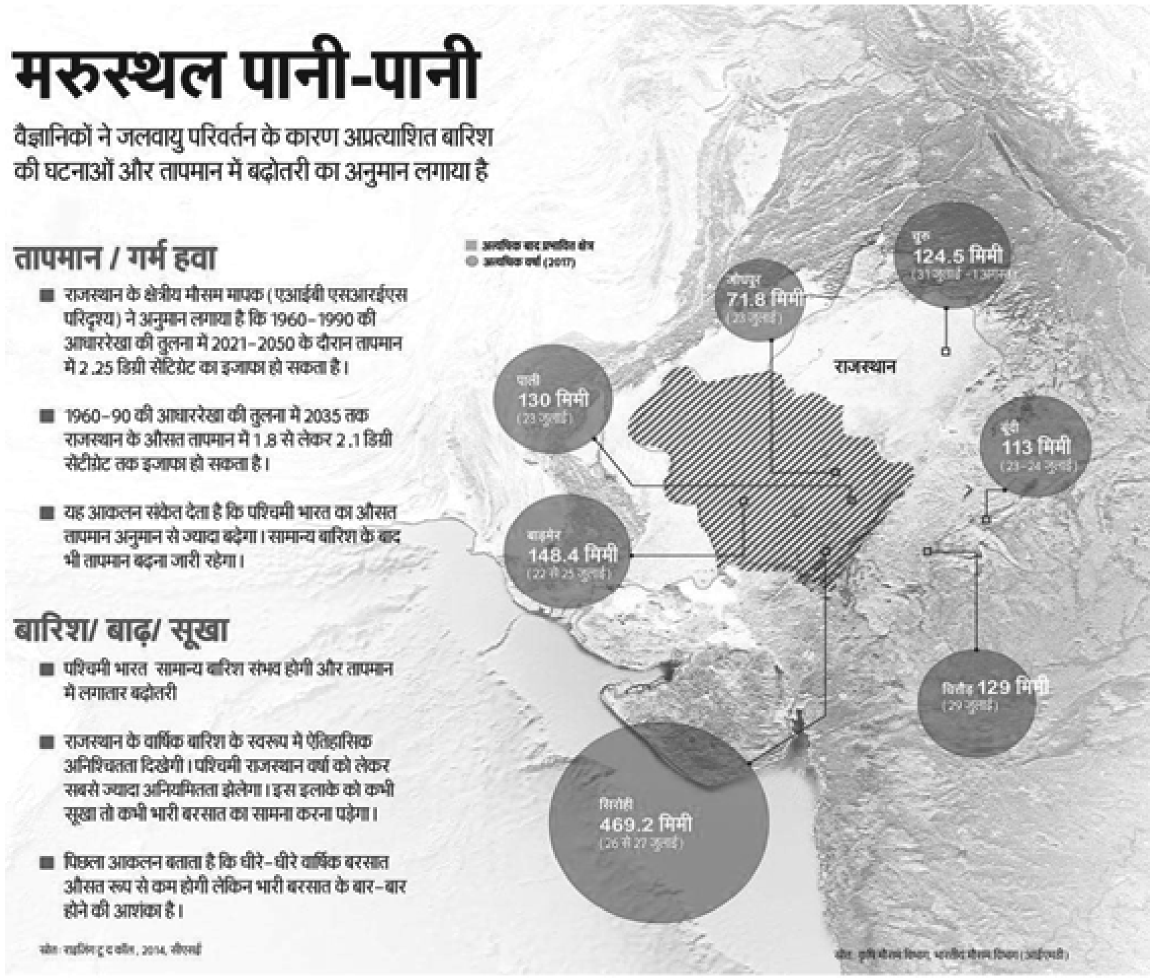

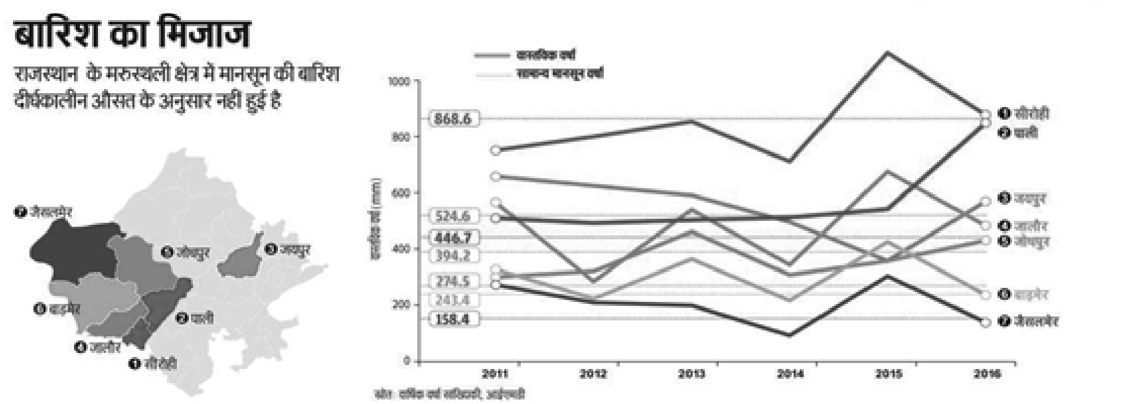

राजस्थान के किसानों के लिए जलवायु परिवर्तन सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती ही नहीं एक वास्तविकता है। राज्य के पश्चिमी भाग में पिछले 2 दशकों से दुर्लभ संसाधनों पर लगातार दबाव बढ़ रहा है और अगर उचित उपाय नहीं किए गए तो गांव की आबादी शहरों की ओर पलायन करने पर मजबूर होगी और इसका परिणाम होगा

शहरों में नई झुग्गियों की संख्या में वृद्धि।

राज्य की जीडीपी में पशुपालन का योगदान 9.16 प्रतिशत है। यही नहीं यह देश में कुल मीथेन उत्सर्जन का लगभग 9.1 फीसदी योगदान करने वाला सबसे बड़ा उत्सर्जक राज्य है। जलवायु परिवर्तन का असर पशुओं के खाने पीने पर सबसे ज्यादा पड़ता है अगर पशुओं को कोई बीमारी है या तापमान को उसमें झेलने की क्षमता नहीं है तो पशु खाना छोड़ देते हैं इसका सीधा असर दूध उत्पादन पर पड़ता है। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान के वरिष्ठ पशु वैज्ञानिक के.के. चक्रवर्ती बताते हैं कि इससे निपटने के लिए देश को स्वदेशी नस्लों को अपनाने की ओर बढ़ना होगा। हमारी स्वदेशी नस्लें विपरीत मौसमी परिस्थितियों को झेलने में अधिक सक्षम होती हैं।[10]

जलवायु परिवर्तन के कारण स्थानीय स्तर पर भूमि उपयोग परिवर्तन भी हो रहा है जिससे खेती योग्य जमीन में कमी अंकित की गई है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि जलवायु परिवर्तन ने पश्चिमी राजस्थान में तापमान व वर्षा को असामान्य व अनियमित बना दिया है जिसका प्रभाव कृषि पर दिखता है। इससे कृषि उपज में तो कमी आई ही है , साथ ही खेती योग्य जमीन में भी ह्रास हुआ है। कृषि उत्पादन में सर्वाधिक प्रभाव गेहूं व सरसों के उत्पादन पर पड़ा है। जलवायु परिवर्तन से भूमि उपयोग परिवर्तन तीव्रता से हुआ है। इसी तरह कृषि उत्पादन घटता रहा तो खाद्य सुरक्षा ही खटाई में पड़ जाएगी।

जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापमान में वृद्धि को नियंत्रित नहीं किया गया तो न केवल जलस्रोत सूख जाएंगे वरन शीतोष्ण व समशीतोष्ण प्रदेशों की भूमि में भी दरारें पड़ जाएंगी और दुनिया की आधी आबादी भूखे रहने को मजबूर हो जाएगी। इस तरह स्पष्ट है जलवायु परिवर्तन से पश्चिमी राजस्थान की कृषि पर भयावह प्रभाव दृष्टिगत होने लगा है। इन प्रभावों को कम करने हेतु सरकार व नागरिकों को मिलकर सार्थक कदम उठाने की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न असामान्य व अनियमित वर्षा ने पश्चिमी राजस्थान की जलवायविक दशाओं को भी असामान्य कर दिया है जिससे बाढ़ व सूखा जैसी स्थितियां प्रबल होने लगी हैं। इन असामयिक व असामान्य दशाओं से निपटने हेतु जमीनी स्तर पर प्रयास करना अति आवश्यक है।

यद्यपि जलवायु परिवर्तन से मुकाबला करने के मामले में राजस्थान बहुत आगे है। इस मामले में देश के अन्य राज्य इतने संवेदनशील नहीं है। राजस्थान में अधिकतर योजनाएं सूखे को लेकर नहीं बनाई गई हैं बल्कि वाटर डेफिसिट को लेकर योजनाएं बनाई गई है।[11] पश्चिमी राजस्थान में पानी की कमी को पूरा करने के लिए ही राजस्थान नहर लाई गई ताकि यहां पर कृषि उत्पादन को नियमित बनाया जा सके और मरुस्थलीकरण में कमी लाई जा सके।

वर्तमान समय में राजस्थान नहर से पानी लेकर किसान कृषि हेतु प्रेरित हुए हैं। अब यह क्षेत्र हरा - भरा होने लगा है जो जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव को कम करने में सहायक सिद्ध हुआ है और होगा।

संदर्भ

1. उद्धृत पचौरी राजेन्द्र, आडिल, मनहर आलेख 'जलवायु परिवर्तन का कृषि की स्थिति पर प्रभाव', देशबन्धु न्यूज, 14 दिसम्बर, 2019
2. सक्सेना, एच.एम., 'राजस्थान का भूगोल', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 6
3. उद्धृत टापर कुलूस 'जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से कृषि पर मंडराता खतरा', भूगोल और आप (पत्रिका) 13 सितम्बर 2017
4. वही
5. www.mausam.ind.gov.in
6. वही
7. डूबता रेगिसतान, डाउन टू अर्थ, 4 अक्टूबर, 2017
8. वही
9. वही
10. थापा, पारुल लक्ष्मी, 'जलवायु परिवर्तन और कृषि संकट : कृषि - पारिस्थितिकी एक उपाय', फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ नई दिल्ली, 2015, पृ. 16
11. शर्मा, अनिल अश्विनी आलेख 'राजस्थान में स्थानीय स्तर पर पहली बार दिखा जलवायु परिवर्तन का असर', डाउन टू अर्थ, 16 मई, 2019

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2021
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

राजा राममोहनराय एवं ब्रह्मसमाज की स्थापना की पृष्ठभूमि

❑ सुश्री मंजू

सूचक शब्दः ब्रह्मसमाज, एकेश्वरवाद, जाति व्यवस्था, धर्मनिरपेक्ष, सार्वभौमवाद।

19वीं शताब्दी में भारतीय समाज की दशा दिशाहीन थी। परन्तु फिर भी यह समय भारतीय समाज के इतिहास में एक निर्माणशील काल रहा था। इस युग में कई महान् व्यक्तियों का जन्म हुआ, जिन्होंने देश में जागृति पैदा की। इन सब महान् व्यक्तियों में राजा राममोहन राय का प्रमुख स्थान है। रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में : ''राजा राममोहन राय उस समय पैदा हुए जब हमारा देश अपने अस्तित्व की सच्चाई से अपना सम्बन्ध खो चुका था और तर्कहीन बोझ से कुचला हुआ संघर्ष कर रहा था।''[1]

राजा राममोहन राय का जन्म, सम्भवतः 1772 ई. में बंगाल के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। राममोहन राय एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो हिन्दू ईश्वरवाद की सर्वोत्कृष्ट परम्पराओं पर आधारित हो। वह समस्त जातियों, धर्म ग्रथों और सभी सम्प्रदाओं को अपने में समाहित कर ले। राजा राममोहन राय ने 1828 को ब्रह्मसमाज की स्थापना की। राममोहन राय का उद्देश्य किसी नये धर्म की स्थापना करना नहीं था। वे तो केवल हिन्दू धर्म को उसके शाश्वत पवित्र रूप में वापस लाना चाहते थे। वास्तव में राजा राममोहन राय को भारत में उस आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक कहा जा सकता है जो उस समय से प्रारम्भ होकर आज तक प्रचलित है। यह निःसन्देह उनकी शैक्षणिक विचारधारा की शक्ति का परिचायक है। जिस उद्देश्य को लेकर ब्रह्म समाज की स्थापना की गई थी वास्तविक रूप से उसका प्रभाव समाज पर पूर्णरूपेण नहीं पड़ सका। राममोहन राय की विचारधारा आज के समाज में अति प्रांसगिक है। परन्तु भारतीय जाति व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उसे उखाड़ पाने के लिए कई सौ वर्ष लगेगें। राजा राम मोहन राय अपने समय के उन कुछ लोगों में से एक थे जिन्होंने आधुनिक युग के महत्व को अनुभव किया। वह जानते थें कि मानव सभ्यता का आदर्श स्वतंत्रता से अलगाव में नहीं है, बल्कि राष्ट्रों के आपसी सहयोग के साथ-साथ व्यक्तियों की अंतर-निर्भरता और भाईचारे में है

राजा राममोहन राय का जन्म, सम्भवतः 1772 ई. में बंगाल के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। राजा राममोहन राय की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। उस समय बंगाल में संभ्रान्त परिवारों में बालक को किसी सार्वजनिक पाठशाला में भेजने से पूर्व कुछ समय घर पर ही शिक्षा दी जाती थी। राजा राममोहन राय बचपन से ही मेधावी और तीव्र स्मरण शक्ति के धनी थे। चूंकि उनके परिवार में मुर्शिदाबाद के राजदरबार में नौकरी करने की परम्परा चली आ रही थी, इसलिए ऐसा करने के योग्य बनने के लिए फारसी की पढ़ाई आवश्यक समझी गई। नौ वर्ष की आयु में उन्हें फारसी और अरबी की शिक्षा लेने के लिए 1780 में पटना भेजा गया। वहां उनका सम्पर्क मुसलमान मौलवियों से हुआ। शीघ्र ही राजा राममोहन राय ने अरबी व फारसी भाषाओं को सीख लिया। उन्होंने फारसी में लिखी कई पुस्तकों और मुसलमानों के धर्मग्रन्थ 'कुरान शरीफ' का भी अध्ययन किया।[2]

ब्रह्म समाज की स्थापना और उद्देश्यः राजा राममोहन राय ने एक ऐसे समाज की स्थापना पर विचार किया जो सभी वर्गों एवं जाति में समाहित हो सके। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दी परसेप्टस ऑफ जीसस' में कुछ इस तरह से कहा भी है हे ईश्वर! तू धर्म को ऐसा बना दे कि यह मनुष्य और मनुष्य के बीच पारम्परिक भेदभाव और वैर विरोध को मिटाने तथा मानव जाति में शांति और एकता पैदा करने में समर्थ हो। भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण एवं आधारभूत तत्व है ''धर्म''। यह धृ धातु से बना धर्म जिसका अर्थ होता है धारण करना या रक्षा करना और संभाले रखना। अंग्रेजी में धर्म को 'रिलीजन' अतीन्द्रिय सत्ता में विश्वास भी कहते हैं। धर्म एक ऐसी सामाजिक अवधारणा है जो परिवर्तन और नियंत्रण दोनों में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह नैतिक कार्यों में आचरण के प्रति श्रद्धा, परिवर्तन व नियंत्रण की दशा में सहायक होता है। धर्म एक ऐसा मार्ग है जो मनुष्य को बुरी प्रवृत्ति

❑ **शोध अध्येत्री, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एम.डी. विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)**

की ओर जाने से रोकता है। यह मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले जाता है। इसी प्रकार धर्म का व्यवहारिक जीवन में उपयोग नहीं होता तो वह व्यर्थ है। सम्पूर्ण संसार में बहुत से धर्म प्रचलित हैं और इनकी उपासना करने की पद्धति भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। सेर्गी टीकारेव ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ रिलीजन' में विश्व के प्रमुख धर्मो की उपासना पद्धति को बताया है। वैसे हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, जैन धर्म, सिक्ख धर्म, शितोधर्म जोरास्ट्रियन धर्म, कन्फ्यूशियस धर्म, हिब्रूधर्म, बहाई धर्म, इस्लाम आदि धर्म संगठित धर्म हैं तथा इनकी उपासना पद्धति भी वर्णित हैं।[3]

भारत एक 'धर्म प्रधान' देश है। वैदिक काल से ही ऋषियों ने सृष्टि में एक ऐसा दर्शन प्रदान किया है जो प्रकृति में निहित है। ऐसे समय में धर्म का उद्देश्य समाज को संतुलित एवं नियंत्रित करना होता है और आपसी भाईचारा तथा शुद्ध आचार विचार होने के कारण ही समाज संतुलित रह सकता है उससे ही समाज में विकास हो सकता है। भारतीय धर्म वेदों से संचालित होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त के अनुसार सभी प्राणियों को मिलजुल कर धरती पर रहना चाहिए। उनका मानना था कि सबको ज्ञानवान बनना चाहिए और कर्तव्य का पालन सभी को समान रूप से करना चाहिए। ईश्वर द्वारा दिया गया प्रकृति रूपी उपहार सबको समान रूप से उपभोग व उपयोग करना चाहिए। वैदिक सहित्य में तप, दान, निष्कपटता, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अवसाद, विनम्रता, सत्संग, परोपकार, दया, संयम आदि गुणों पर बल दिया गया है। यह विश्व के सभी धर्मों में वर्णित है।

अब हम राममोहन के जीवनकाल के एक और महत्वपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यह पहले ही कहा गया है कि जिस वर्ष राममोहन ने अपना कोलकता जीवन आरम्भ किया था उसी वर्ष उन्होंने आत्मीय सभा की स्थापना की थी। इस सभा के माध्यम से राममोहन ने अपने चारों और कई विशिष्ट लोगों का एक छोटा-सा समुदाय बना लिया था। एकेश्वरवादी उपासना का स्वरूप धीरे-धीरे चारो और प्रचारित होने लगा। कुछ लोगों ने राममोहन को विधर्मी, नास्तिक, ईसाई और न जाने क्या-क्या कहा। 1821 में राममोहन की सहायता और प्रेरणा से 'यूनिटेरियन कमेटी' की स्थापना हुई थी। आत्मीय सभा और यूनिटेरियन कमेटी की सभाऐं 1823 तक ठीक-ठाक चलती रहीं। 1826 के आसपास 'आत्मीय सभा' और 'यूनिटेरियन कमेटी' प्रायः एक-दूसरे से मिल सी गई थीं। इसी तरह राममोहन के प्रस्ताव पर कमेटी का नाम बदल कर 'ब्रिटिश इंडियन यूनिटेरियन एसोसिएशन' रख दिया गया। इसका उद्देश्य था- समान विचार वाले एकेश्वरवादी अंग्रेजों और भारतीयों को एक ही धार्मिक मंच पर एक-दूसरे के निकट लाना। इसमें द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर और राममोहन के पुत्र राधाप्रसाद भी थे। इस समय में राममोहन राय दो महान् धार्मिक विचारों के बीच खड़े होकर एक नयी राह ढूंढ रहे थे। उसी समय ऐडम साहब 'यूनिटेरियन कमेटी' को यूनिटेरियन क्रिश्चियन चर्च का रूप देने की जी तोड़ कोशिश कर रहे थे। कुछ हद तक ऐडम साहब और डॉ. टकरमैन को विश्वास हो चला था कि राममोहन ईसाई एकेश्वरवाद के बहुत नजदीक पहुंच चुके हैं।[4]

ऐडम साहब ने राममोहन के लिए लिखा था Rammohan is one of the warmest supporters लेकिन राममोहन ने देखा कि एडम साहब सीधे-सीधे एकेश्वरवाद का नहीं बल्कि ईसाई धर्म के ढाँचे में रहते हुए एकेश्वरवाद के ईसाई संस्करण का ही प्रचार कर रहे थे। राममोहन का मानना था कि उनका एकेश्वरवाद धर्म विशेष के साथ चिंहित नहीं होगा। यह पूर्णतः धर्म निरपेक्ष और तर्कसंगत ब्रह्म ज्ञान पर आधारित होगा। परन्तु धीरे-धीरे राममोहन ऐडम साहब के चर्च से अलग होने लगे। उनको हिन्दू धर्म के अवतारवाद और ईसाई धर्म के देवत्ववाद में कोई विशेष अन्तर नहीं दिख रहा था जबकि शुद्ध एकेश्वरवाद के लिए दोनो ही अग्रहणीय थे। अब राममोहन समझ गए थे कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी-अपनी भाषा और धर्मग्रन्थों के माध्यम से साधना का अपना-अपना पथ निर्माण करना पड़ता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने इतिहास से सम्बन्ध रखता है।[5] इसी प्रकार ब्रह्म समाज धर्म सुधार आन्दोलन का प्रथम कर्तव्य सेवा माना जाता था। जिसे राममोहन राय ने सन् 1818 ई. में शुरू किया था। राममोहन राय वस्तुतः प्रजातंत्रवादी और मानवतावादी थे। वह अपने धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण में इस्लाम व एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा विरोध ईसाई धर्म के आधार शास्त्रीय नीतिपरक शिक्षा और पश्चिम के आधुनिक देशों के उदारवादी बुद्धिवादी सिद्धान्तों से काफी प्रभावित हुए थे।[6] ब्रह्म समाज कोई राजनैतिक आन्दोलन नहीं था।

किन्तु उसके बुद्धिवाद, उसके सार्वभौमवाद, उसके मानवधर्म के विचार तथा उसके पूर्व और पश्चिम के समन्वय के आदर्शों ने भावी राष्ट्रीय आन्दोलन की बौद्धिक नींव तैयार की। ब्रह्म समाज गम्भीर व्यक्तिवादी विरोधी आन्दोलन था। वह पतन की ओर ले जाने वाली और बर्बरतापूर्ण रूढ़ियों के विरूद्ध वैयक्तिक बुद्धि, हृदय और अन्तः करण का घोतक था।[7]

उन्होंने प्राचीन हिन्दू एकेश्वरवाद की जगह बहुदेववादी विकृति की आलोचना की। राममोहन राय ने मूर्ति उपासना को अमानवोचित और गलत कहा और सभी धर्मो और सारी मानवता के लिए एक ईश्वर को सर्वोच्च मानते थे। ब्रह्म समाज में उस समय प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्र सहकर्मठा, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक संस्थाओं और सम्बन्धों के प्रजातंत्रीकरण के सिद्धांतों को घोषित कर भारतीय जनता के लिए एक नए युग की शुरूआत की थी। इसलिए एम.जी. रानाडे के द्वारा 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की गई। इसके धार्मिक और सामाजिक सुधार के कार्यक्रम वैसे ही थे जैसे ब्रह्म समाज के थे। इसके नेता रानाडे इण्डियन नेशनल कांग्रेस और इण्डियन सोशल कान्फ्रेस के भी नेता थे जिनकी पहली सभाएँ क्रमशः 1880 एवं 1885 में हुई थीं।

राममोहन राय ने ईश, केन, कंठ और माण्डूक्य उपनिषदों का अंग्रेजी और बंगला में अनुवाद प्रकाशित किया। इनके द्वारा ग्रंथों का अनुवाद इसलिए किया, क्योंकि वे सोचते थे कि हिन्दू लोग अपने शास्त्रों के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। रामामोहन राय का कहना था कि हिन्दू आध्यात्मिक ज्ञान वेदों में मौजूद है। किन्तु वेदों के ज्ञान को ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत भाषा के गहरे पर्दे के पीछे छिपा रखा था। इस कारण लोगों को वेदान्त आदि का कम ज्ञान था।[8] राममोहन राय एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो हिन्दू ईश्वरवाद की सर्वोत्कृष्ट परम्पराओं पर आधारित हो। वह समस्त जातियों, धर्म ग्रथों और सभी सम्प्रदाओं को अपने में समाहित कर लें।[9] इसी के लिए 20 अगस्त 1828 को राजा राममोहन राय ने कलकता के उत्तरी भाग में एक-एक आस्तिकवादी प्रार्थना समाज को प्रमाणित किया जो वास्तव में इस आन्दोलन का अधिक औपचारिक रूप था। बड़े उत्साह के साथ उन्होंने इस नई योजना के लिए कार्य करना आरम्भ किया। एक वर्ष के अन्दर ही इसके लिए नगर के मध्य भाग में एक प्रार्थना गृह बनाने के लिए पर्याप्त धन एकत्र कर लिया और कुछ समय पश्चात् प्रार्थना गृह निर्मित हो गया। 23 जनवरी 1830 ई. को उसका औपचारिक रूप से ''ब्रह्म समाज'' के नाम से उद्घाटन हुआ।[10] ब्रह्म समाज की प्रकृति धर्मनिरपेक्ष थी। वस्तुतः इसके द्वारा राजा राममोहन राय के सार्वभौमिक प्रार्थना के भव्य आदर्श की पूर्ति हुई। 1828 को ब्रह्मसमाज की स्थापना के बाद उनके शिष्य तारा चन्द्र चक्रवर्ती ब्रह्मसमाज के पहले सचिव थे। तारा चक्रवर्ती के बाद विश्वंम्भर दास सचिव बने, जो गैर ब्राह्मण थे। इसी तरह हर शनिवार को शाम के समय ब्रह्मसमाज की बैठक होती थी। इन बैठकों में दो तेलगू ब्राह्मण बगल के कमरे में पर्दे की आड़ में वेदों का पाठ करते थे तथा गुलाम अब्बास नामक एक मुसलमान वाद्य यंत्र बजाता था।[11]

1829 में जब राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज के लिए स्थाई भवन खरीदा, तो रूढ़िवादी लोग काफी नाराज हो गए। उन्होंने धर्म सभा नामक एक अलग संगठन स्थापित किया जिसके सचिव राधाकान्त देव थे। ब्रह्मसमाज में संवाद चंद्रिका नामक दैनिक पत्र निकालने आरम्भ किये। इन समाचार पत्रों के माध्यम से दोनों समाज एक दूसरे का विरोध करते थे। राममोहन राय की समय-समय पर विरोधियों द्वारा ''गंभीर परिणाम भुगतने की धमकियां भी दी गयीं''। इन परिस्थितियों का सामना करते हुए उन्होंने ब्रह्मसमाज के भवन को 23 जनवरी, 1830 को ट्रस्टियों के हाथ में सौंप दिया। ट्रस्ट के घोषणा पत्र में यह कहा गया कि ''जो भी सृष्टि के निर्माता व पालनकर्ता, एक ईश्वर में विश्वास रखता था, वह उपासना के लिए ब्रह्मसमाज मंदिर में जा सकता था।[12] इस घोषणा पत्र में यह भी स्पष्ट हो गया कि इस समाज में होने वाली पूजा में किसी भी ऐसी सजीव अथवा निर्जीव वस्तु की निन्दा नहीं की जाएगी, जिसकी लोग पूजा या आराधना करते हैं।

भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने के बाद भी इस देश में जाति-पाति का भेदभाव, अस्पृश्यता, सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध आदि कुप्रथाओं का बोलबाला था। पाश्चात्य शिक्षा और आदर्शों से प्रभावित होकर कुछ भारतीयों ने समाज सुधार आन्दोलन को चलाने के लिए निश्चित संस्थाओं को संगठित किया। ब्रह्मसमाज इसी प्रकार की प्रथम संस्था थी। पहले, राजा राममोहन राय और बाद में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं श्री केशवचन्द्र सेन के संरक्षण में ब्रह्म समाज ने समाज

सुधार के आन्दोलन को चलाया। वह वेदों और उपनिषदों पर बहुत विश्वास करते थे और उन्हीं के सिद्धांतों का प्रचार किया जाता था। ब्रह्मसमाज के समाज-सुधारकों ने छुआछूत, सती-प्रथा, बहुपत्नी-विवाह, पर्दा प्रथा, बाल-विवाह आदि का विरोध किया। इसके साथ ही विधवाओं के पुनर्विवाह व स्त्रियों की शिक्षा का समर्थन व उसका प्रचार किया। इसी तरह समाज के सहयोग और प्रयत्नों के फलस्वरूप अर्न्तजातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिला। साथ ही इसके नेताओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की सहायता से जनता में जागृति लाना सरल हुआ।[13]

इस तरह सन् 1821 में राममोहन राय की सहायता एवं प्रेरणा से ''यूनिटेरियन कमेटी' की स्थापना हुई। आत्मीय सभा और कमेटी की सभाएं 1823 तक ठीकठाक चलती रहीं। कुछ वर्ष पश्चात् उन्होंने 'ए ट्रांसलेशन इनटू इंग्लिश ऑफ ए संस्कृत ट्रेक्ट इनक्यूलेटिंग द डिवाइन वरशिप' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। यह पुस्तिका गायत्री मंत्र और वेदों पर आधारित विवेचन था। इसी समय ऐडम साहब के साथ मिलकर उन्होंने बाइबिल के 'सरमन आन द माउन्ट' का संस्कृत अनुवाद प्रारम्भ किया था। राममोहन समझ गए थे कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी भाषा और धर्म ग्रन्थों के माध्यम से साधना का अपना-अपना पथ निर्माण करना पड़ता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने इतिहास से सम्बद्ध है।[14]

इस प्रकार राममोहन राय का उद्देश्य किसी नये धर्म की स्थापना करना नहीं था। वे तो केवल हिन्दू धर्म को उसके शाश्वत पवित्र रूप में वापस लाना चाहते थे। राममोहन राय का विचार था कि कोई भी धर्म त्रुटियों से रहित नहीं है और यह ''मानव का जन्मजात अधिकार है कि वह परम्पराओं से हटकर चले''।[15] विशेषकर यदि जब परम्पराएं ''सीधे अनैतिकता की ओर'' ले जाती हों। उनका मानना था कि हर व्यक्ति को पुरोहित के माध्यम के बिना स्वयं धर्मशास्त्रों का पाठ करना चाहिए। उन्होंने स्त्रियों को भी धार्मिक शिक्षा लेने पर बल दिया और स्त्रियों को गायत्री मंत्र द्वारा पारिवारिक आराधना करने के लिए प्रेरित किया।[16]

ब्रह्म समाज ने सामाजिक सुधारों एवं सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने बाल विवाह का विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन, कन्या तथा वर विक्रय, कन्या वध, सती प्रथा आदि सामाजिक दोषों के विरूद्ध ब्रह्म समाज ने एक प्रबल आन्दोलन खड़ा कर दिया। इसी प्रकार ब्रह्म समाज के नैतिक आन्दोलन के कारण ही 1829 में सती-प्रथा के विरूद्ध कानून पास हो गया। उनके द्वारा हिन्दू जाति में छुआछूत तथा अस्पृश्यता को दूर करने का एक बड़ा प्रयत्न किया और समता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके लाखों लोगों को ईसाई धर्म अपनाने से रोका। स्त्रियों की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने ड्रिंक वाटर वैधन के साथ मिलकर स्त्रियों के लिए वेदान्त कॉलेज तथा अन्य शिक्षाणालयों की स्थापना की। ब्रह्म समाज ने हिन्दू जाति की विभिन्न सामाजिक बुराइयों पर कठोर प्रहार करते हुए उसमें नवचेतना का शंख फूंका।[17]

राजा राममोहन राय एवं अन्य ब्रह्मसमाजी नेताओं के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने भारतीयों में नई चेतना जागृत की और देश को राष्ट्रीयता के विकास पथ पर आगे बढ़ाया। केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा सामाजिक समानता का नया मंत्र फूका और इसका हमारी शिशु राष्ट्रीयता की भावना एवं तरूण बंगाल के नव राजनीतिक जीवन और आकांक्षाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा, अपने गोरे राजनीतिक प्रभुओं की श्रेष्ठता स्वीकार करने की जगह, हमारे शिक्षित देशवासियों में एक नए आत्म विश्वास के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए।[18] पूर्वकालीन अध्ययनों से पता चलता है कि कालान्तर में, ब्रह्म समाज आन्दोलन का स्वरूप, जो प्रारम्भ में एक बिल्कुल आस्तिकवादी संगठन था, स्पष्टतः सामाजिक हो गया। इसके संस्थापक नेता राजा राममोहन राय में तीव्र आकांक्षा थी। उनका कथन था ''मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की श्रेष्ठतम पूजा है।''[19]

निष्कर्ष :- वास्तव में राजा राममोहन राय को भारत में उस आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक कहा जा सकता है जो उस समय से प्रारम्भ होकर आज तक प्रचलित है। यह निःसन्देह उनकी शैक्षणिक विचारधारा की शक्ति का परिचायक है। जिस उद्देश्य को लेकर ब्रह्म समाज की स्थापना की गई थी वास्तविक रूप से उसका प्रभाव समाज पर पूर्णरूपेण नहीं पड़ सका। बंगाल में आज भी सर्वाधिक दुर्गापूजा होती है। इतना ही नहीं एकेश्वरवाद का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन की दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सका। राममोहन राय की विचारधारा आज के समाज में अति प्रांसगिक है। परन्तु भारतीय जाति व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उसे उखाड़ पाने के लिए कई सौ वर्ष लगेंगे। राजा राम मोहन राय अपने

समय के उन कुछ लोगों में से एक थे जिन्होंने आधुनिक युग के महत्व को अनुभव किया। वह जानते थें कि मानव सभ्यता का आदर्श स्वतंत्रता से अलगाव में नहीं है, बल्कि राष्ट्रों के आपसी सहयोग के साथ-साथ व्यक्तियों की अंतर-निर्भरता और भाईचारे में है

संदर्भ

1. Bose, Khila Sadhan, *'The Indian Awakening and Bengal, Firma'*, K. L. Mukhopadhyay, Calcutta, 1960, p. 29.
2. सीमा, 'राजा राममोहन राय', ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1974, पृ0 178।
3. श्रीवास्तव, अजय कुमार, 'राजा राममोहन राय और सामाजिक परिवर्तन', हेराल्ड प्रेस, वाराणसी, 2016, पृ0 102-104।
4. दत्त, कार्तिक चन्द्र, 'राजा राममोहन राय : जीवन और दर्शन', पेपरबैक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1993, पृ0 44।
5. वही
6. आहूजा, रामशरण, 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था', रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1995, पृ0 558।
7. वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा, 1967, पृ0 41।
8. Nag, Kali Das, *'English Works of Raja Rammohun Roy'*, Panini Office Publications, Allahabad, 1906, p. 3.
9. Bal, U.N., *'Raja Rammohun Roy: A Study of His Life, Works and Shots'*, Radha Prakashan, Calcutta, 1993, p.232.
10. शंभशरण, दीक्षित, 'राष्ट्रीयता तथा भारतीय शिक्षा', किताबघर प्रकाशन, जयपुर, 1979, पृ0 25।
11. Chatterjee, R.N., *'Rammohun Roy and Modern India'*, Radha Publication, Calcutta, 1918, p.17.
12. गुप्त, विश्व प्रकाश, मोहनी गुप्त, 'राजा राममोहन राय, व्यक्ति, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1996, पृ0 182।
13. Collet, *'Raja Rammohun Roy and His Life'*, editors Dilip Kumar Vishwas and Prabhat Chandra Ganguly Calcutta, Calcutta, 1914, p. 331.
14. मुखोपाध्याय, 'राममोहन और तत्कालीन समाज और सहित्य (बंगला)', विश्वभारती ग्रंथन विभाग, कलकत्ता, 1972, पृ0 437।
15. Narayan, V.A., Social History of Modern India, Meenakshi Prakashan, Meerut, 1972, p.67.
16. I.bid.
17. अवस्थी, अमरेन्द्र, 'आधुनिक भारतीय सामाजिक राजनीतिक चिन्तन', जयपुर रिसर्च पब्लिकेशन, 1991, पृ0 20।
18. Pal, Vipin Chandra, Memories of My Life Times, NATCH PublishersAA 2004, p. 299.
19. शंभशरण दीक्षित, पूर्वोक्त, पृ. 26-27